# हमारे साहित्य में हास्य रस

कृष्ण कुमार श्रीवास्तव एम. ए.



प्रकाशक—श्री ओम् प्रकाश,
कृष्णकुंज, महाजनी टोला,
फैज़ाबाद ।



मुद्रक :—श्री साधू शरण जी श्रीवास्तव,
प्रोप्राइटर,
अवध प्रिंटिंग प्रेस,
रिकाबगंज फैज़ाबाद

# समर्पण



उद्यान की कलियों को
जो मुस्कराना
चाहती
हैं ।

# मैं

शीश झुकाता हूँ उस भगवान के चरणों में जिसने मुझ जैसे मूढ़ और निकम्मे जीव से यह-तुच्छ ही सही-पुस्तक लिखवाली. बधाई देता हूँ श्री मती 'कोकिल' जी को जो मुझको कुछ लिखने के लिए भड़काने में सफल हुईं, आभारी हूँ उन कवियों और लेखकों का ( किसी लोक में हों ) जिनके नाम और कृतियां इस पुस्तक की शोभा बढ़ाती हैं, कृतज्ञ हूँ श्री बिनय कुमार राय एम. एस. सी. का जिन्होंने हर प्रकार से मेरी सहायता की, धन्यवाद देता हूँ उन परमहंस पाठकों को जो अपना समय तथा पैसा नष्ट करके इसको पढ़ेंगे और थैंक्स देता हूँ उन मित्रों को जिन्होंने मुझे सहायता तथा उत्साह देना चाहा।

कृष्ण कुमार श्रीवास्तव

# कुछ ऊटपटांग

देखिये ! सामने साहित्य सुरसरिता वह रही है। इसके पवित्र तट के भिन्न भिन्न स्थानों से कालिदास, शेक्सपियर और फ़िरदौसी आदि पवित्र जल भर ले गए। इसका प्रवाह यों ही रहता है, कभी कम नहीं होता। यहीं से गोस्वामी तुलसीदास जी तथा महात्मा सूरदास जी अपने सुवर्ण कलश भर लाये जिन की एक एक बूंद से मानव को जीवन दान मिला।

अभी अभी आप के सामने इसी स्थान से अकबर इलाहाबादी अपने पीतल के बंधने में मांज धोकर पानी ले गये। कुछ लोग अभी उधर ही ताक रहे हैं। वह देखिये ! कुछ लोग आपके सामने ही अपने अपने कुल्हड़ लिये खड़े हैं जिनमें से अधिकांश टपक रहे हैं। बहुतेरे तो चुल्लू ही भर कर भागे जा रहे हैं और उनके पीछे उनके साथी प्रसन्न होकर दौड़ रहे हैं। उनकी करतल ध्वनि और डफली के शोर से आकाश गूंज रहा है। वे चिल्ला रहे हैं "तुम महर्षि हो, तुम जह्नु हो, तुम अगस्त हो, तुम इस जल को सुखा सकते हो। तुम को लाख लाख प्रणाम है।" बड़ा हल्ला सा मचा हुआ है। कुछ लोग देखिये उंगली डिबोकर ही लौट रहे हैं। ठीक है इस से भी कदाचित रस का कुछ पता चलही गया होगा। इस भीड़ के सामने तो कुम्भ का मेला भी मात है। यह मेला प्रतिक्षण यों ही बढ़ता जायगा। इसको कबतक देखियेगा ? आइये हम लोग अलग हट कर कुछ अपने काम की बातें करें।

आप से कुछ कहते हुये डर लगता है। कुछ कहूं बुरा तो न मानियेगा ? बात यह है कि मुझे अपने बुजुर्गों और

विशेषकर साहित्य के आचार्यों से एक शिकायत है। शिकायत इन महापुरुषों ने काव्य और साहित्य के साथ बल्कि हम सब के साथ एक बड़ा अन्याय किया है। इन्हों ने रोने धोने (करुणरस) लड़ने झगड़ने (वीररस) और प्रेम और रति आदि के कुत्सित भावोंको बहुत पुचकारा, प्यार किया और मुंह लगाया; परन्तु हर्ष और आनन्द उत्पन्न करने वाले सर्व श्रेष्ठ और पवित्र भाव-हास्य रस-को हंसी में उड़ा दिया। रोने पर आये तो दुःख पूर्ण दृश्य प्रस्तुत करके और मर्सिया लिख कर खुद रोये और सब को रुलारुला कर हलकान कर दिया और इतना शक्तिहीन बना दिया कि लोग बात बात में रोने लगे। पूजा करते हैं तो रोते हैं। ईश्वर का नाम लीजिये तो रो देते हैं। भाई भाई का प्रेम वर्णन कीजिये तो रोते हैं किसी विश्वास पात्र का बलिदान सुनते हैं तो रोते हैं। तात्पर्य यह कि घर में मैदान में, या आजकल सिनेमा हाल में, अर्थात हर जगह इन रोने वालों से नाक में दम है। वीर रस के पीछे पड़ गये तो पढ़ने वालों को एक दूसरे का वैरी बना दिया—सुर असुर में, आर्य अनार्य में, भाई भाई में हिन्दू मुसलमान में, बल्कि आदमियों और जानवरों में लड़ाई छिड़ गई। किसी ने मूंछ पर ताव दिया तो दूसरे ने अपमान समझ कर गर्दन उतार ली। किसी को मिनिस्ट्री नहीं मिली तो उसने फौरन दूसरी पार्टी बनाई और अल्टी मेटम देदिया। रण भेरी बजने लगी और ओटों की लाशें कटकट कर मैदान में गिरने लगीं। प्रलय मच गई।

और शृङ्गार का तो हाल ही मत पूछिये! इस को तो सबने सिर पर चढ़ा लिया। यह सब रसों का राजा है न! जिससे समाज बिगड़ सकता है, जिससे देश शक्तिहीन होसकता है, जिससे राष्ट्र नष्ट हो सकता है, जो जवानों को बुड्ढा और

लड़कों को मरियल बना सकता है वहीरस सबको पसंद आया। उसी विष को अमृत बताया गया। उसी की भूरि भूरि प्रशंसा की गई। नाटक भी लिखे तो सुखांत ( comedy ) और दुखांत ( tragedy ) में कमेडी को ही अधिक प्रोत्साहन दिया गया; क्योंकि उसमें श्रृङ्गार स्वच्छन्द विचरण करता है। गीत भी लिखे तो प्रेम के मतवालों के हाथों में जैसे अफ़ीम घोल कर देदी कि पीनक उतरने न पाये। इसका परिणाम यह हुआ कि बच्चे बूढ़े जवान सभी विह्वल होकर परमानन्द को प्राप्त हो रहे हैं। गाते हैं या कमसे कम सुनते तो हैं ही कि

चुप चुप खड़े हो जरूर कोई बात है।
पहिली मुलाक़ात है ये पहिली मुलाक़ात है।

और आंखें बंद करके समाधि में चले जाते हैं। रोके कौन और किस को? सब अपने २ रंगमें मस्त हैं। ये हैं राजा साहब की करामात। सब जगह से तो राजा साहब बोरिया बंधना संभाल कर कूच कर गये मगर यहां इनका सिक्का जमा हुआ है। इनसे न तो सोशलिस्ट भिड़ते हैं और न कम्यूनिस्ट। महासभा की तो चीज़ ही है उस से शिकायत व्यर्थ होगी।

खैर। यह सब हुआ मगर हंसने से घृणा रही या कमसे कम अरुचि तो अवश्य रही। क्यों साहब, क्या मैं पूछ सकता हूं कि हंसना भी कोई प्रकृति विरुद्ध (unnatural) बात है? यह भी कोई गन्दगी या गर्दन तोड़ बुख़ार है कि आप उसके नाम से बिदकते हैं। जिस रस से बुड्ढे बालक और जवान को समान लाभ हो, जिससे मुर्दों में जान आ जाय और जिन्दों में जवानी पैदा होजाय, जिससे संसार की कठिन से कठिन समस्यायें हंसी हंसी में हल होजायें और जिससे दुनियां के सार और असार जानने का प्रश्न ही जाता रहे उसी अमृत को पीने से यदि आप को घृणा नहीं रही तो उत्सुकता भी नहीं रही! उसको आंखों से

लगाने की कौन कहे हाथ भी नहीं लगाया गया ! यह बात तो थी नही कि हमारे पूर्वज कभी हंसते ही न थे। हंसते तो अवश्य होंगे; क्यों कि वे उस समय भी थे जब मोहर्रम का जन्म भी नहीं हुआ था। इस लिये हंसते तो थेही; मगर रोना तो इस बात का है कि वे इस को बहुत अच्छा नहीं समझते थे। महात्माओं के लिये जो हर समय ईश्वर के ध्यान में लीन रहते थे यह बात चाहे शोभा न भी देती हो; परन्तु मनु की सारी संतान को इस से विरक्त करदेना और गंभीर बनादेना न तो सम्भव ही है और न कोई समझदारी की ही बात। यहां भी दरबारों मे पश्चिमी देशों की भांति विदूषक और बीरबल विराजमान थे जो दरबारी लोगों और सामंतों को हंसाते थे। मगर उनकी बात वहीं पर 'क़हक़हों' में विलीन हो जाती थी। इस प्रकार यदि कहीं कहीं नाटकों में भी चटनी की भांति हास्य आहीगया तो क्या हुआ ? कहना तो यह है कि इस रस को सर्वश्रेष्ट रस क्यों नहीं माना गया ? नहीं माना गया तो परिणाम यह हुआ कि अकबर और बीरबल की कहानियां ऐसी बनाई गईं कि प्रत्येक मनुष्य जानता है मगर किसी पुस्तक में पढ़ता नहीं। और अगर पढ़ता भी है तो लुक छिप कर या अपने मित्रों और समवयस्क लोगों के साथ बाहर कमरे में बैठकर और ताला लगाकर। निरादर का इस से अधिक बुरा परिणाम और हो ही क्या सकता था ? हमारे साहित्य में किसी भी महानुभाव-कवि या लेखक-ने इस समय तक कोई भी हास्यरसका सुन्दर शिष्ट और मनोरंजक ग्रंथ प्रस्तुत नहीं किया। किसी ने कुछ लिखा ही नहीं। एक दो कविताएं यदि लिखी भी गई होंगी तो कदाचित वह असंतोष या क्रोध के आवेश में लिखी गई होंगी न कि हास्य से प्रभावित होकर या प्रभावित करने के लिये। उदाहरण के लिये हिन्दी में बेनी कवि को ले

लीजिये। औरंगजेब ने हथिनी इनाममें दी तो कविजी को बुरा लगा और कहा

तिमिर लंग लह मोल चली बाबर के हलके।
रही हुमायूं संग फेरि अकबर के दल के॥
जहांगीर जस लियो पीठिको भार हटायो।
साहजहां करि न्याव ताहि पुनीमांड चटायो॥
बलरहित भई पौरुष थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर।
औरंगजेब करनी सोई, लैदीनी कविराज कर॥

अब इस को हम ने हास्य रस में मान लिया तो बेनी जी की जान बचगई अच्छा ही हुआ इसी तरह दयाराम के आम देने पर आपन धन्यवाद दिया कि :— . . . . . .

ऐसे आम दीन्हें दयाराम मनमोद करि,
जाके आगे सरसों सुमेरु सी लगत है॥

और हम उसको हास्य समझे बैठे हैं यह हमारा दया है। उर्दू कवि तो साफ़ कह देते थे कि 'भाई! यह चाहे जो कुछ हो मगर हम इसको हजो कहते हैं'। और इसी कारण से सौदा जैसा बिगड़े दिल शायर बात बात में क़लमदान उठाता था। उसने हजो के ढेर लगा दिये। अब यह काम हमारा रह गया कि हम उस को हास्य में लें अथवा बी भत्समें। तात्पर्य यह कि एक तो यों ही किसी ने इस रस की ओर आंख नहीं उठाई और यदि कोई भूले भटके इधर आही गया तोउसको आपने बिदूषक और भांड़ की पदवी से बिभूषित कर दिया, चलिये वे ठंडे हो गये। उनको अपने साथ कोई क्यों बिठाने लगा। दरवाज़े पर आते देखकर किवाड़ बन्द होजाते होंगे। फिर उनके मोती, यदि उनको हम मोती ही मान लें, कंकड़पत्थर से अधि तुच्छ और निकृष्ट न होते तो क्या होते? वे तो जनाब! ऐसी नाली में होते जिसको म्यूनिसिपलिटी भी कभी साफ़ न करती, यद्यपि सफ़ाई

के नाम से तो हर म्यूनिसपलिटी को वसे भी चिढ़ है।

हां, तो मुझे शिकायत है कि भारत वर्ष में या कम से कम हमारे साहित्य में इस रस के लिखने वालों के साथ शिष्ट या उचित व्यवहार नहीं किया गया वरना हमारा साहित्य इतना शुष्क और भक्त मंडली का प्रोग्राम बन कर न रहजाता। सच पूछिए तो संसार ने साहित्य के केवल दो अंग माने हैं, हास्य और गंभीर। और ये दोनों अंग गद्य और पद्य के रूप में प्रस्तुत किये गए हैं। इसको दूसरे शब्दों में यों कह सकते है कि यदि साहित्य एक समुद्र है तो हास्य और गंभीर, गंगा और यमुना की भांति दो पवित्र धाराएं इसमें अपना अमृत भरती है। गद्य और पद्य इनके दोनों किनारे हैं। हास्य में तरंगें उठती हैं, सदा सुखद आनन्दमय और मस्त कर देने वाली गंभीर में तरंगें भी उठती हैं और शान्त भी है। तरंगों से क्रोध भी उत्पन्न होता है, दया भी। कभी रूलाती हैं तो कभी उत्तेजित करती है; परन्तु कभी कभी ऐसा भी जान पड़ता है कि जैसे शहर की मिलों का गंदा पानी भी इस में बह रहा है इस प्रकार हास्य को न केवल 'सिंह भाग' मिलता है, और मिलना चाहिए, बल्कि उसका स्थानभी ऊंचा है; परन्तु जब यहां साहित्य का रस बटने लगा तो हास्य को छोटा सा नवां भाग मिला आचार्यों ने जो चाहा, जिस को चाहा, देदिया। यह है धाँधल।

आपही सोचिये कि यदि रोने वाले–मर्सियागो आदि–बहुत बड़े कवि और शायर हो सकते हैं, जनता उनके सामने सिर झुकाती है और उनके काव्य को सुनकर रो रोकर जलथल सब एक कर देती है, उनका नाम बड़े आदर से लेती है, तो क्या यहां भी मोलियर डिकेंस या शा–की तरह बड़े नाटक कार और उपन्यास लेखक या कवि नहीं पैदा हो सकते थे? हो सकते थे और हो सकते हैं, यदि जमाना उनका मान और उचित आदर करता

आदर करें यहां तो इस समय तक सम्मेलनों में बैठने के लिये कभी उचित स्थान क्या आज्ञा नहीं मिली। नियम तो यही रहा कि कवि सम्मेलन या मुशायरे में, जब पूरा कार्यक्रम समाप्त हो जाता था तो हास्य पढ़ने की आज्ञा प्रदान की जाती थी। अर्थात् जब रोते रोते, या अकड़ते अकड़ते या प्रेम में घुलते घुलते शिथिल और शक्ति हीन हो जाते थे, जब सब उमंगें ठंडी हो जाती थीं, तब इस को संजीवनी समझ कर सेवन कराने की आज्ञा मिलती थी। इसको या तो अछूत समझते थे या घबराते थे कि इसके सामने दूसरे सभी रस दुम दबाकर भाग निकलेंगे इसलिये इसको सभा में घुसने ही न दो। किसी और से किसी प्रकार का प्रोत्साहन न पाकर भी जिसने कुछ लिखा तो वह शरमाते शरमाते—उसको सौ बार प्रणाम। उसका काव्य तो सौतेली माँ के पुत्र की तरह 'अंट शंट' होना ही चाहिये था; क्योंकि कला का प्रदर्शन तो जब होता जब उसको साहित्य का श्रेष्ठ—या प्रतिष्ठित—अंग मानते। इसलिये जो कुछ भी है वही बहुत है। इधर अंग्रेजी सभ्यता और भाषा के प्रभाव से अवश्य कुछ उत्साह मिला तो अकबर के माने बड़े समझे जाने लगे। जब सब लड़के और विद्यार्थी प्रेम के गाने पढ़ सकते हैं, गा सकते हैं और रट सकते हैं तो हास्य की कविताएं क्यों नहीं पढ़ सकते? जिससे और कुछ न सही भोजन तो हज़्म ही हो जायगा और स्वास्थ्य भी सुधर जायगा। मगर दुःख तो यही है कि हमारे साहित्य ने इस रस में कोई बड़ा प्रबंध काव्य प्रस्तुत नहीं किया जिसको सब आनन्द लेकर, शर्माकर नहीं, पढ़ सकें। एक आध कविताएं या कहानियां मिल ही गईं तो क्या हुआ? ऊंट के मुंह को जीरा।

हमारे साहित्याचार्यों ने जो हास्य रस को निम्न श्रेणी

**हास्य की भाषा**

का माना है गया तो कदाचित इसी कारण कि (टुटपुंजिये) कवि कोई गदा, भद्दा या अर्थहीन उपनाम रखकर कवि बनना चाहते होंगे । इस संक्रामक रोग को तो रोकना ही चाहिये था, चाहे दो चार पैदा होने वाले कवियों की हत्या ही क्यों न हो गई हो । इधर थोड़े दिनों से कवियों और लेखकों ने इस रस की ओर कुछ ध्यान दिया है और कुछ लिखाभी है; परन्तु सच पूछिये तो अभी यही निर्णय नहीं हो सका कि इसकी भाषा उर्दू हो या हिन्दी, अवधी हो या ब्रजभाषा, या कुछ और । आधुनिक हिन्दी साहित्य जिस भाषा में लिखा जा रहा है उसको लोग-और गंभीर पुरुष-'खड़ी बोली' कहते हैं । परन्तु इस साहित्य में हास्य रस कुछ उर्दू में, कुछ ब्रजभाषा में, कुछ अवधी में और कुछ उस खिचड़ी भाषा में है जिसमें उर्दू और अंग्रेजी के अधिक शब्द घुसे हुये हैं इस-लिये इस भाषा को आप चाहें तो हिन्दुस्तानी कह सकते हैं । रस कोई भी हो भाषा तो हर रस में वही रहनी चाहिये । कहीं कहीं दो चार शब्द दूसरी भाषा के बेल बूटे का काम कर सकते हैं; परन्तु हर रस की भाषा ही बदल जाय यह सम्भव नहीं । जैसे वीर रस के लिये महाराष्ट्री या राजस्थानी, शृङ्गार रस के लिये ब्रजभाषा या बंगाली और अद्भुत रसके लिये ओड़िया या पंजाबी का प्रयोग करके हम अपने साहित्यका निर्माण नहीं कर सकते । कुछ कवि लोग केवल गवांरू भाषा लिखकर उसे हास्य रस समझलें यह दूसरी बात है । इस लिये यदि आप बुरा न मानें तो मैं कुछ और कहूँ । आज्ञा है ?

अरब देश के एक विद्वान ने मुहम्मद साहेब को पैग़म्बर मानने से इनकार किया और क़ुरान शरीफ़ के जवाब में अपना एक क़ुरान लिखा । लोगों ने कहा 'यह क़ुरान ईश्वर की वाणी नहीं हो सकता । न तो इसमें प्रवाह है न माधुर्य । इस को हम

ईश्वरीय वाणी कैसे मान लें ?' उस क़ाफिर ने उत्तर दिया कि 'इस क़ुरान को भी जब सब लोग ज़बान पर चढ़ा लेंगे, यादकर लेंगे और हर समय पढ़ेंगे तो यह भी मंजकर उतना ही प्रवाह और माधुर्य से पूर्ण हो जायगा जितना कि तुम्हारा। इस पर पहिले ज़बान कुछ अभ्यास तो करे फिर शिकायत करना।' तात्पर्य यह कि वह बिद् चाहे सच्चा हो या झूठा; परन्तु इससे कदापि इनकार नहीं किया जा सकता कि भाषा जितना ही अधिक प्रयोग से मंजती जाती है उतना ही उसमें विशुद्धता और पूर्ण उच्चकोटि की भाषा के सभी गुण-प्रवाह और माधुर्य आदि क्रमशः आजाते हैं। प्रारम्भिक काल में सभी भाषाओं में कुछ न कुछ खुरदरा पन या कुछ न कुछ त्रुटियां अवश्य रहती हैं। धीरे धीरे अवगुण कम होते और गुण बढ़ते जाते हैं। हमारी हिन्दी भाषा-खड़ी बोली-अभी तरुण है। उर्दू के मुक़ाबले में भी छोटी है। इस कारण सम्भव है इसमें अभी किसी कमी का आभास होता हो। साहित्य भी एक बहुत बड़ी गृहस्थी है और इसका संभालना कोई हंसी खेल नहीं। परन्तु यह भी जब थोड़ा सा समय पाकर अधिक प्रयोग में आकर चमकेगी तो सब की आँखें झपक जायेंगी। हम अभी यदि इसी दशा में इसको पूर्ण, उन्नत और सर्व श्रेष्ठ मानलेंगे तो फिर आगे उन्नति की न इच्छा ही रहेगी और न आवश्यकता ही। आप जानते हैं कि उर्दू को १५० वर्ष से भी अधिक लगे तब वह इस योग्य हुई कि ठीक तरह से बोली जा सके। अब उसमें कुछ सफ़ाई भी आगई है और लोच भी-और वह लोच जो व्रजभाषा को छोड़ कर और कहीं मिलेगी भी नहीं। इसलिये हिन्दी को भी कुछ समय तो लगेगा ही।

उर्दू भाषा की नींव खड़ी बोली पर है इस लिये इस भाषा में और उर्दू में बहुत कुछ घरेलू सम्बन्ध है। वे सम्बन्ध

हिन्दी का उर्दू से मेल

क्या हैं उनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नहीं क्योंकि दोनों जुड़वां बहिनें मालूम होती हैं और जब तक लिपि से लीप कर सूरत बदल न दीजिये अन्तर नहीं मालूम होता। इस लिये उन शब्दों या मुहावरों को जो लोगों की जबान पर चढ़ गये हैं हिन्दी में ले लेने से कोई हानि या मानहानि नहीं। हास्य रस के लिये तो मैं इसे अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ। उर्दू भाषा सर्व गुण रहित होकर भी हास्य रस के लिये बहुत उपयुक्त होगई है इसमें मुझे सन्देह नहीं और यदि हम अपनी सब त्रुटियों को संस्कृतके तत्सम शब्दो के प्रयोग तथा क्लिष्ट शब्दां के आडम्बर से ढकने का प्रयत्न भी करें तो इसमें कहां तक सफलता मिलेगी और क्या लाभ होगा निश्चय रूप से नहीं कहा जासकता केवल कठिन शब्दों को एकत्र करने से कोई साहित्य कदाचित बनताभी नहीं। वह तो जैसे राजाओं या मंत्रियोंका सम्मेलन हुआ न कि जनता की सभा। मजा तो जब है कि आधा शब्द आपने कहा और आधा मैंने पहिले ही कह दिया; और यह उसी समय सम्भव है जब बोल चाल के शुद्ध शब्दों का बहिष्कार न किया जाय। अब स्वतन्त्र भारत में आप हिन्दी और उर्दू का झगड़ा तो चला नहीं सकते। अब तो सब हिन्दी ही है। हर बालक और वृद्ध हिन्दी ही पढ़ता है और बोलता है या बोलने का प्रयत्न करता है। तो अपने देश की अब हर वस्तु अपनी है। हां, विदेश की उस चीजको जिसको हमने अपनाया नहीं जिस पर अपनी छाप नहीं लगाई, टिकट कटा सकते हैं। इस प्रकार जब हम आप मिलकर भाषा की उन्नति का प्रयत्न करेंगे तो केवल भाषा-ही को नहीं, देश और राष्ट्र सबको लाभ पहुँचेगा। यहाँ मैं हिन्दुस्तानी के प्रोपेगैंडा की बात नहीं कर रहा हूँ। वह यदि खिचड़ी है तो बीरबल के पास भेज दीजिये, कभी दाल गलेगीही नहीं; परंतु

भाई कम से कम हँसिये तो ऐसी भाषामे जो हम सबकी अपनी भाषा हो। हम उस हंसी का अर्थ न समझ हमारी क़िस्मत, हमारी मूढ़ता। इस लिये जो मुहावरे, लोकोक्तियाँ, उपमायें या कथानक आदि शुद्ध भारतीय हैं उनको उर्दू से अवश्य लेना चाहिये और इस उर्दू-हिन्दी के भेद को मिटाकर उसे हिन्दी में मिला लेना य हड़प कर लेना चाहिये। लोग कहते हैं कि उर्दू की बात बातमें हास्य उत्पन्न होता है; तो हिन्दी में भी यह गुण, यदि इसकी आवश्यकता है, अवश्य पैदा होजायगा और उर्दू यदि केवल फक्कड़ों की भाषा नहीं रही है तो हिन्दी अपनी पवित्रता और शुद्धता भी नहीं खोयेगी और खड़ी बोली में-उर्दू के सत्संग या कुसंग से-लोच पैदा हो जायगी तो वह कमज़ोर नहीं होजाएगी इसका मैं वादा करता हूँ।

साहित्य का यह अंग-हास्य-अभी सच पूछिये तो उर्दू से भी कम से कम ५० वर्ष पीछे है। जो हास्य उर्दू के अवध पंचमें इस शताब्दी के आरम्भमें मिलता था···है, यद्यपि समाज संस्कृति और साहित्यिक रुचि, बहुत आगे निकल गयी है। साहित्य को इन्हीं के अनुसार चलना पड़ता है फिर भला यह लबड़धोंधों कब तक चलेगी? कुछ लोग चिकारा को छोड़कर बेला और खंजड़ी को बदल कर तबला लेरहे हैं। यहाँ मैं अपने साहित्य निर्माताओं-कवियों, लेखकों और सब आचार्यों-की शिकायत नहीं कर रहा हूँ। उन्हों ने बहुत कुछ किया है और कर रहे है, परन्तु अभी जो करना बाक़ी है वह बहुत है। वह सब धीरे धीरे होगा और उसको भी आपही लोग करेंगे। उसको पूरा करने के लिये अब योरुप से तो बुलायेंगे नहीं। अतः इसकी माँग भी आपही को पूरी करनी होगी। ज़रा आँख खोलने दृष्टि कोण बदलने और चेष्टा करने की आवश्यकता है और बस। साहित्य आप पर गर्व करेगा और आप साहित्य पर।

मगर पहिले कुछ कीजिये तो, और आप भाग कर जायेंगे किस राह ? अभी तो बहुत सी राहें ऐसी पड़ी हैं जिनको आपने देखा भी नहीं । पहिले इन सूनी राहों का हाल तो सुन लीजिये । आप कहते होंगे कि यह अच्छा पीछे लग गया । मगर मैं स्वयं इन राहों की ओर संकेत करके चुप हो जाऊँगा । ऐं ! ख़फ़ा हो गये आप ?

सुनिए ! भाषा के सम्बन्ध में गिड़गिड़ा कर मैंने व्यर्थ ही आपका और अपना समय नष्ट किया । भाषा तो स्वयं वहीं बनेगी जो मैं कह चुका हूँ । इसके वेग को तो आप रोक नहीं सकते ! यह आपके बसकी बात ही नहीं । आप बर्फ़ पर केसर बोना भी चाहें तो बेकार । उसके लिये उपयुक्त उर्वरा भूमि भी तो चाहिये । रहा यह कि मैंने ख़ुशामद क्यों की ? तो यह मेरी आदत है, मेरा स्वभाव है । समझे आप ? चलिये आप प्रसन्न तो हुये ।

**प्राचीन साहित्य में हास्य रस**

हमरा देश भारतवर्ष सदैव सेही धर्म प्रधान देश रहा है। इससे मेरा यह अर्थ है कि यहां हर चीज़ और हर काम पर धर्म की छाप रहती है । धर्मानुसार ही सब काम होंगे । इसलिये जब खाने पीने में धर्म घुस गया तो दूध और पानी तक पवित्र, अपवित्र, हिन्दू मुसलमान या छूत अछूत बनगए । फिर बिचारी ललित कलायें बचकर कहां जा सकती थीं । चित्र कला में केवल देवी देवताओं या अवतारों के चित्र हो सकते थे और मूर्तिकला में देवताओं की मूर्तियां होती थीं । जिसका प्रभाव यह पड़ा कि इस समय भी कोई अशिक्षित हिन्दू—कुछ शिक्षित भी—किसी मूर्ति के सामने दंडवत किये या सर टेके बिना नहीं जा सकता चाहे वह मूर्ति किसी राक्षस ही की क्यों न हो । क्योंकि यहां तो स्वभाव बन गया है और श्रद्धा भी है, कि मूर्ति में कोई देवता

ही होंगे । संगीत में केवल ईश्वर वंदना, सन्तों की वाणी और भजन रहते थे । इसी प्रकार साहित्य में भी भक्तों के उपदेश, अवतारों या महापुरुषों के जीवन चरित्र अथवा उनकी लीलायें रहती थीं । भला इन सब में हास्य के लिये स्थान कहाँ ? यह बात नहीं है कि हिन्दू–आर्य–कभी हँसते ही नहीं थे । हँसते थे परन्तु हँसी को साहित्य का एक श्रेष्ठ अँग समझने में कुछ संकोच सा था। यह दूसरी बात है कि कभी कोई सन्त महात्मा अपने आराध्य देव से ठठोल कर बठें । और वह भी इस ढँग से कि वह उचित और शिष्ट हो। भक्त और भगवान के सम्बंध के विरुद्ध न हो। इस मामले में मेरा विचार है कि विचारे शिव जी और उनके सुपुत्र श्री गणेश जी ही बहुत छेड़े गये, क्योंकि इनकी न तो "सोसाइटी" ही अच्छी थी और न सवारी ही। गणेश जी का स्वास्थ्य भी विनोद का मसाला था । नाटकों में विदूषक के लिये स्थान था अवश्य, परन्तु वह आखिर था तो मसखरा ही। तात्पर्य यह कि संस्कृत में हास्य बहुत ही कम था। जो था भी वह केवल श्लेष के सहारे चल रहा था । कहीं पर पार्वती जी और लक्ष्मी जी में बात हो गई या किसी आर्तभक्त ने कुंडी खट खटाई और डरते डरते हँसाने का प्रयत्न किया । यही ढँग ब्रज भाषा में भी रहा । यहाँ भी प्रायः शब्दों के अर्थ उलट पलट कर ही हास्य पैदा करते और आनन्द लेते थे। यह सब धर्म के अंतर्गत था। हिन्दू देवी देवता ( Mythology ) ही इस केन्द्र के परिधि थे। अवधी में गोस्वामी जी ने भी इसी को निबाहा। कहने लगे कि :—

बावरो रावरो नाह भवानी ।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु वेद बड़ाई भानी ॥
निज घर की बरबात बिलोकहु हौ तुम परम सयानी ।
शिव की दई सम्पदा देखत श्री शारदा सिहानी ॥

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुखकी नहीं निशानी।
तिन्ह रंकन को नाक संवारत हौं आयों नकबानी॥
दुखी दीनता दुखियन के दुख याचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहि भीख भली मैं जानी॥
प्रेम प्रशंसा बिनय व्यंगयुत सुनि विधि की बर बानी।
तुलसी मुदित महेश मनहि मन, जगत मातु मुस्कानी॥

पद्माकर ने गंगा जी की स्तुति की तो लिखा कि :—

लोचन असम अंग भसम चिता की लाइ,
तीनों लोक नायक सो कैसे कै ठहरतो।
कहै पद्माकर विलोकि इमि ढंग जाके,
वेदहू पुरान गान कैसे अनुसरतो॥
बाँधे जटा जूट बैठे परवत के कूट माहिं,
महाकाल कूट कहो कैसे कै ठहरतो।
पीवै नित भंगै रहै प्रेतन के संगै ऐसे,
पूछतो को नंगै जो न गंगै सीस धरतो॥

इसी प्रकार 'घासी राम' जी ने शिव जी के
( सेवक मंडली ) से आजिज आकर कहा :—

दोषाकर भाल सो जानत भलाई कहा,
कंठ में द्विजीभ अति कुटिल बखानै कौन।
पाथर की तनया सो सहज ही कठोर अति,
बाहन बरद पर पीर उर जानै कौन॥
'घासी राम सुकवि' मुसाहिब सकल भूत,
बिनती गरीब की तिहारे कान भानै कौन।
तुमहूँ त्रिलोचन जो मूंदि बैठे लोचन,
तो दास दुख मोचनको आस उर आनै कौन

यहाँ ऐसा मालूम हता है। जैसे हँसना चाहते हैं
डरते हैं, कि कहीं डाँट न दें, या किसी सवारी या चेलेके

न करदें । इसी प्रकार हिन्दीमें कुछ ऐसी कवितायें भी हैं जिनमें श्लेष या वक्रोक्ति से हास्य पैदा किया गया है जैसे जगज्जननी श्री राधा जी और चन्द्रावली की हंसी की बातें सुनिये । प्रत्येक प्रश्न को चन्द्रावली कैसे सुन्दर ढंग से बहाना करके टालती है भगवान कृष्ण चन्द्रावली के यहाँ हैं । श्रीराधाजी पूछती हैं कि

हैं री लाल तेरे ? सखी ऐसी निधि पाई कहाँ ?
हैं री घनश्याम ? हैं हैं शीतसर साले हैं ।
हैं री गिरधारी ? हाँ हैं राम दल मांहि कहूँ,
हैं री खगयान ? कहौं हौंसो नाहिं पाले हैं ॥
हैं री सखी कृष्णचन्द्र ? चन्द्र कहूँ कृष्ण होत ?
तब हँसि राधे कही मोर पच्छ वारे हैं ? ।
कृष्ण को दुराय चन्द्रावलि बहराय बोली,
मेरे कैसे आइहैं ? जो तेरे पच्छ वारे हैं ॥

इसी प्रकार कहीं कहीं एक आध कवितायें इस रस की भी मिलती हैं जहाँ अन्य रसोंका कुंड भरा है । यह कोई संतोष जनक बात नहीं थी । हाँ, इधर धीरे धीरे जब व्यक्तिगत स्वतंत्रता ने धर्म के झूठे बंधनों को नहीं माना और उसकी सीमाओं को पार करने में धर्म की हानि नहीं समझी तो चित्रकला में प्राकृतिक दृश्य और जीव जंतुओं के चित्र बल्कि हास्ययुक्त तथा व्यंगात्मक चित्र ( Car toon ) भी खींचे गये और साहित्य में भी व्यक्ति विशेष के अतिरिक्त समाज पर भी, (जिसमें अनेक धर्म और व्यक्ति हैं) व्यंग और हास्य लिखना आरम्भ कर दिया गया; परन्तु यह सब अभी थोड़े ही दिनों से हुआ है । इस लिये यदि हम संस्कृत अथवा ब्रज भाषा की ओर सहायता और सहानुभूति के लिये असहाय की भाँति न देखें तो भी कोई हानि नहीं । यहाँ यह प्रश्न नहीं है कि जिसके पास स्वयं कुछ नहीं

वह दूसरे को क्या देगा। प्रश्न यह है कि आप संस्कृत और ब्रज भाषा से वह वस्तु किस मुँह से माँगेगे जो उसके पास है ही नहीं और जिसको प्राप्त करने की उन्हों ने चेष्टा भी नहीं की वरन् उपेक्षा की दृष्टि से देखा। अतएव यदि धर्म को धक्का न लगे तो हम उर्दू, अंग्रेजी या अन्य भाषाओं-तेमिल तिलंगू, बंगला आदि-से लाभ उठा सकते हैं। गऊमाता के सपूत की सहायता यदि ट्रैक्टर करदे तो इसमें बिदकने वाली कौन सी बात है। ट्रैक्टर से पहले मुलाकात नहीं थी तो सहायता क्या लेते, परन्तु जब संसार ने उसको पैदा करही दिया और आपके पास पहुँचा दिया तो अब सहर्ष उससे भी काम लीजिये और छूत छात की प्राचीन विडम्बना को दूर कीजिये।

मैं मानता हूँ कि काव्य और विशेष कर हास्य के लिये प्रतिभा की आवश्यकता है। प्रतिभा बहुत कुछ कर सकती है और वही मुख्य है; परन्तु एक तो प्रतिभा मोल या किराये पर मिलती नहीं दूसरे ईश्वर ने हर चीज को-प्रतिभा को भी-सीमित कर दिया है। मनुष्य अपने पराक्रम और अभ्यास से, परिश्रम और प्रयत्न से इन सीमाओं में विस्तार पैदा कर सकता है अवश्य। कुएँ के मेंढक और नदी के मेंढक में अवश्य अन्तर रहेगा। मेंढक की प्रतिभा कुएँ को नदी तो नहीं बना सकती। प्रतिभा तो एक बत्ती (टार्च) के समान है जिससे आप अपनी अंधेरी गली में प्रकाश करके इधर उधर बहुत कुछ देख सकते हैं; परन्तु वहां जो कुछ है वही तो दिखाई पड़ेगा। यदि कलकत्ता, बम्बई, बल्कि लंदन और न्यूयार्क की सड़कों पर निकल जाइयेगा तो सम्भव है वहां कुछ जगमगाहट पहले से ही मिले और यदि आप अपने टार्च से कुछ काम ही लेना चाहते हैं तो आपको आपकी गली से अधिक वस्तुयें मिलेंगी और कदाचित

अध्ययन की आवश्यकता

आप को आश्चर्यचकित कर देने वाली और आनन्द देने वाली। प्रतिभा के लिये भी विद्या, लोक निरीक्षण और अभ्यास की आवश्यकता है यद्यपि प्रतिभा इनके बिना भी बहुत कुछ कर सकती है। फिर भी हीरा को खराद पर चढ़ा कर, सुडौल बना-कर ही मूल्य वान मनो मोहक और चमक दार बनाया जाता है वरना वह पत्थर, बल्कि कोयला ही रहे। प्रतिभा तो ईश्वर की देन है जो सबको प्राप्त भी नहीं और अभ्यास और अध्ययन मनुष्य की अपनी चीजें हैं। इन पर उसका वश है और इसलिये बहुत से ऐसे कवि हो गये हैं जिन्होंने केवल इन्हीं के सहारे चलकर बहुत कुछ किया और नाम कमाया। यदि उनमें प्रतिभा भी होती तो उनका काव्य ईश्वर जाने क्या होता। तात्पर्य यह कि प्रतिभा, अभ्यास और अध्ययन के मेल से जो काव्य होगा वह अधिक अच्छा और उच्चकोटि का होगा। दूसरी भाषाओं से लाभ उठाने या उनके अध्ययन से मेरा यह अर्थ कदापि नहीं कि केवल उनके अनुवाद से अपने साहित्य को भर दीजिये। अनु-वाद से हास्य प्रायः पदाभी नहीं होता। आखिर भाषा की भी तो अपनी रुचि होती है वह अनुवाद में कैसे स्थिर रहेगी। परन्तु फिर भी सरलता से जो कुछ मिले ले लेना चाहिये। दूसरी भाषा के कवियों और लेखकों के ढंग में, उनकी शैली में, हास्य और व्यगं हो सकता है। मनोविज्ञान की झलक भिन्न भिन्न रूप से प्रस्तुत करने में हास्य मिल सकता है जिसको हम ले सकते हैं और जिसका रस अनुवाद से भी बिगड़ता नहीं। इसी प्रकार समाज और राजनीति के सम्बन्ध में भी उनके व्यंग या उनका हास्य ले लेने से साहित्य में दोष नहीं आता, वरन् उसकी वृद्धि होती है। यदि ज्ञान और अनुभव की वृद्धि से कुछ डर न हो तो इनको बढ़ने दीजिये। हां, इतना अवश्य कीजिये कि बाहर से जो माल लाइये उस पर अपनी छाप लगा दीजिये। लोग यही

समझ कि वह आप की अपनी चीज़ है । गोस्वामी जी और शेक्सपियर ने—यदि वह कोई जीव था—यह रास्ता आप के लिये खोलही दिया है फिर आप क्यों हिचकिचाते हैं। यह कोई चोरी तो है नहीं। यदि यही होता तो विश्वज्ञान की वृद्धि ही न होती। हां, हिम्मत नहीं पड़ती या परिश्रम नहीं करना चाहते यह दूसरी बात है। परन्तु 'बिन हिम्मत क़िम्मत नहीं, वही चील वही बाज़' समझे ? हिम्मत न करने वाला कायर और परिश्रम न करने वाला निकम्मा होता है। आपको नहीं कहता।

जब मनुष्य भूखा होता है तो उसको सत्तू या चूरा मिल जाय वही मोहन भोग है। नंगे बदन पर लंगोटी ही बहुत है; परन्तु सत्तू या चूरा जब नित्य का भोजन ही नहीं

उर्दू से क्या सिखा

बन सका तो फिर पार्टी या दावत के लिये क्योंकर ठीक होगा—जिनके यहां होता हो वह क्षमा करें—और न लंगोटी ही कोई सभ्यजन की पोशाक बन सकती हैं चाहे आप शरीर भर में तेल लगाकर अकड़ते ही क्या न चलें। मगर फिर भी भूखे पेट और नंगे बदन पर इनका एहसान तो है ही। कुछ काम तो ये करते ही हैं। प्रारम्भिक काल में जब 'अंधेर नगरी' की सैर की तो आँख खुली। फिर 'मार मार कर हकीम बने' तो 'मरदानी औरत ने' 'लंबी दाढ़ी' ली। लोगों ने कहा इससे कुछ काम चल ही जायेगा। कुछ लोगोंने कहा यह'व्यवहार शिष्ट नहीं'। कुछ लोग गवांरू, बेढंगी, अश्लील बातें सुनकर हंसने लगे। आज आप को उन हँसने वालों पर भी हँसी आती होगी। ख़ैर, इसी तरह आगे बढ़े।

स्टेशन पर नवाब साहब मूल्य वान सुन्दर वस्त्र धारण किये हुये ख़रामां ख़रामां टहल रहे थे। कांधे पर एक बड़ा रेशमी रुमाल पड़ा हुआ था। एक महाशय जिनके शरीर पर वस्त्र तो अधिक न थे परन्तु 'शराफ़त' बहुत थी यह देखकर अपनी शरा-

फ़त पर श्रोवेस हुये कि 'ऐसा रूमाल भी मेरे पास नहीं' और उठकर धीरे धीरे नवाब साहब के पीछे पीछे टहलने लगे। जब नवाब साहब पलटे तो आप आगे आगे थे। तीसरे चक्कर में नवाब साहब ने देखा कि आगे आगे टहलने वाले महाशय के कंधे पर एक रेशमी रूमाल बिराजमान है। अपने कंधे पर दृष्टि डाली तो सन्नाटा। पूछते भी तो क्या और किससे? उन महाशय ने थक कर टहलना भी बन्द कर दिया था। मुक़दमा क्या करते? बुद्धू मियां और बुद्धू लाल में बहुत अंतर भी नहीं था। हिन्दी काव्य-हास्य रस-में इसी प्रकार पहले अकबर की कवितायें आईं, सरशार आदि के क़िस्से आये और अवध पंच को हँसी दिल्लगी का रंग आया, और उसके पश्चात धीरे-धीरे हिन्दी ने उर्दू के लिये दरवाज़ा खोल दिया तो अज़ीम बेग आदि की कहानियां भी आ गईं। चूंकि मैं हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाकर अपना पूरा साहित्य समझता हूँ, विशेष कर इस रस में, इसलिये मैं तो इस से प्रसन्न ही हूँ कि इस प्रकार कमी पूरी हो जायगी और वृद्धि होगी। हास्य रस के इतिहास को तो आप अलग पढ़ियेगा। यहां मैं यह अवश्य बताना चाहता हूँ कि कितना और किस प्रकार का काम इसमें हुआ है और क्या बाक़ी है। वह सूनी राहों वाली बात तो रह ही गई न।

हिन्दी में हास्य का गद्य में

भाषा मनुष्य के लिये है और मनुष्य की पैदा की हुई है। प्रत्येक 'सज्जन' व्यक्ति यह चाहता है कि उसका बच्चा बचपन ही से गंभीर और 'मुंशी जी' न बन जाय, कुछ हंसे खेले भी। जब खड़ी बोली बच्चा थी तो द्विवेदी जी † और प्रेमचन्द जी आदि जो उर्दू के कवि और लेखक और अच्छे विद्वान थे उसकी उंगली पकड़कर चलाने लगे। श्री भारतेन्दु

† आचार्य पण्डित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी।

जी, प्रताप नारायण जी मिश्र और बालमुकुन्द जी गुप्त उस के लिये खेलने के लिये कुछ खिलौने लाने लगे। ये सब उर्दू के अच्छे ज्ञाता और पंडित थे। इस प्रकार खड़ी बोली के पालन पोषण में उर्दू कवियों और लेखकों का बहुत कुछ हाथ रहा। मिश्र जी का ढंग यह था कि अपने निबंध और कहानी खड़ी बोली में लिखते और कविताएं प्रायः गवांरू भाषा में जो ब्रज-भाषा और अवधी से कुछ ऊपर की चीजें होतीं। गुप्त जी तो गंभीर पुरुष थे इस कारण हास्य में यह बात-गंभीरता-झलकती रहती। उनकी कविताएं और निबंध कम सही परन्तु वह हर प्रकार से सुन्दर और साहित्यिक हैं। भारतेन्दु जी के बारे में कहना ही क्या! उन्होंने कम लिखा परन्तु अपनी पसन्द की शुद्ध भाषा में शिष्ट हास्य प्रस्तुत किया। फिर जब जी. पी. श्रीवास्तवा जी की तबियत मचली तो उन्होंने मोलियर के कंधे पर बन्दूक रख कर कई फ़ैर किये। जनता ने यह दृश्य देखे तो क़ह-क़हे लगाने आरम्भ कर दिये। कुछ लोगों ने आंख बंद कर ली। फिर भी साहित्य कुछ आगे बढ़ा। उस काल में सभी एक विशेष रंग में रंगे थे। सरशार हों या सज्जाद हुसैन, श्रीवास्तव हों या मिश्र जी सब महफ़िली रंग में डूबे हुये थे। हास्य खुला हुआ निम्न श्रेणी का, बल्कि कहीं कहीं भ.डा होता था; परन्तु वह समाज भी वैसा ही था कि उसको सहर्ष स्वीकार करता था। राजाओं और नवाबों की महफ़िलों के नक्शे सबके दिलों में नमूने की तरह जमे हुये थे, इसलिये सुनने और सुनाने वाले दोनों प्रसन्न थे। किसी को शिकायत न हुई। फिर जब समाज ने ज़रा करवट ली और अंग्रेज़ी भाषा और सभ्यता ने कान में कुछ फूंक दिया तब वे बातें स्वयं ही कम होने लगीं। लिखने वाले भी चौंके। परन्तु अब लिखने वालों के नाम उंगलियों पर गिन लीजिये। श्री अन्नपूर्णा नन्द जी के निबंध और उनकी

कहानियाँ कसटी पर पूरी उतरगी ऐसे ही इने गिने लोग गली के कोने मे कहीं लुके छिपे मिल जायगे . हा, मगर अब उर्दू के कहानी लेखकों की कृतियां भी हिन्दी में जगह पाने लगी। अजीम बेग चगताई, फरहत उल्ला बेग, पितर्स इत्यादि की कहानियां आदर की दृष्टि से देखी जाने लगीं ; क्योंकि उर्दू में-बुरा मानने की बात नहीं-हास्य की सामग्री हिन्दी से प्रायः अच्छी और अधिक है। श्री वास्तव जी की कृतियों के पात्र केवल सरशार और सज्जाद हुसन की औलाद-अहमकुलराजी-, तरहदार लौंडी आदि—के साथ उठ बैठ सकते हैं न कि चोगताई के बच्चों के साथ खेलें। अर्थात् उस समय शुद्ध और शिष्ट साहित्य अधिक नहीं था। इसलिये इनका आना साहित्य के लिये हितकर ही था। इधर अब हिन्दी में भी लोग कुछ कर रहे थे या करना चाहते हैं ; मगर इन चीन की दीवार बनाने वालों के पास सामान भी नहीं। ईश्वर इन की मदद करे !

पद्य में बालमुकुन्द गुप्त जी के बाद कोई उच्च कोटि का कवि दिखाई न पड़ा, तो लोगों ने अकबर को पसन्द किया और प्रोत्साहन भी दिया। ये उर्दू के कवि थे। मगर हम ख। पद्य में ता भाई 'गुण ग्राहक' हैं इसलिये जहां भी जवाहर मिलेगा सर पर बिठायेंगे। अब 'बेढब' आदि कुछ लोगों ने भी यही रंग अपनाया। उसी भाषा में हास्य--किसी श्रेणी का भी सही-लिखने लगे। जनता इसको भी प्रेम से सुनती थी। इसी भीड़ में कुछ लोगों ने भाषा और छन्द दोनों को घायल कर दिया। फिर भी किसी ने कुछ नहीं कहा। परिणाम यह हुआ कि इधर ये लोग उर्दू भाषा का प्रयोग करते थे और उधर 'पुरानी टोपीदार' बंदूकों से ब्रज भाषा में व्यंग निकलता था और इस प्रकार हमारे साहित्य में उर्दू, ब्रज भाषा और खड़ी बोली की धाराओं में हास्य रस बहने लगा। यही ढंग इस

समय भी प्रचलित है। अब अवधी भी जोर पकड़ रही है-राजस्थानी और भोजपुरी में कुछ देर है-और अवधी के कवि अन्य कवियों से दबने वाले भी नहीं, ऊँचे ही निकलेंगे दो चार अंगुल इसका परिणाम क्या होगा यह न तो मैं जानता हूँ और न इसके बारे में 'भविष्य वाणी' लिखने की इच्छा ही है। इतना अवश्य चाहता हूँ कि शुद्ध पवित्र, और शिष्ट भाषा में हास्य का कोई भी स्तर ( Standard ) मानकर सब लोग लिखें। भगवान उनका भला करेंगे।

हास्य के लेखकों ने प्रायः हास्ययुक्त दृश्य प्रस्तुत करके, उपमाओं की सहायता से, या गवाँरू तथा अँग्रेजी शब्दों के प्रयोग से हँसाने का प्रयत्न किया है। यह बात गद्य और पद्य दोनों में मिलती है। गद्य में गुप्त जी का 'शिव शम्भू का चिट्ठा' देखिये और इस प्रकार की बहुत सी रचनायें मिलेंगी। ऐसी कवितायें :—

तुम नाज़ुक मैं मुस्तंडा रसभरी हो तुम मैं डंडा॥
तुम छायावादी की वीणा, मैं टूटा हुआ चिकारा।
तुम होम्योपैथिक की गोली, मैं कड़ू अरक्यात धारा॥
मैं कनकौवा तुम आँधी। तुम ब्रिटिश नीति मैं गाँधी॥

तो लाखों मिल जायेंगी। और ऐसी भी

वह कहें "गुडैम" हम बोलें "हुज़ूर!"।
इससे "ब्यूटीफुल" नजारा कुछ नहीं॥ (बेढब)

कुछ कम नहीं हैं।

साहित्य के पुराने ठेकेदारों और समाज सुधारकों ने नई रोशनी से भड़कना शुरू किया तो हर नई चीज को घृणा की दृष्टि से देखा और उसकी हँसी उड़ाई। 'तितलीदार मोंछ' कर्जन फैशन, सूट बूट और टाई, अँग्रेजी ढंग यहाँ तक कि अँग्रेजी भाषा और शिक्षा को भी नहीं छोड़ा। अशिष्ट और अश्लील

कदाचित इस कारण कर देते होंगे कि हास्य के साथ साथ व्यंग चोटीला और नोकीला रहे । कुछ लोगोंने कहीं कहीं सरकार और समाज की भी चुटकी ली या नेताओं को झंझोड़ा । फिर इधर जब कंट्रोल पैदा हुआ तो उससे जितनी परेशानी पैदा हुई उससे कहीं अधिक कवि पैदा हुये। वे कन्ट्रोल के साथ जाने के लिये सामान ठीक कर रहे हैं । यह कविताएँ बहुत साधारण और प्रायः नीचे स्तर की हैं। उनको कविता कहिये चाहे फिक्रेबाजी। छन्द भंग या भाषा के दोष मिल जाँय तो कविता में हास्य कैसे न बन जाय। यह साहित्य बहुत बढ़ रहा है जैसे :—

खड़े बोतल लिये हम हैं तेरे दर पर ( महीनों से )
अगर जो तेल मिल जाता दुआ करते हुए जाते ॥

इसी प्रकार कुछ लोग अपनी 'गृहलक्ष्मी' से ऊब गये तो उसके रूप आचरण तथा व्यवहार पर हास्य और व्यंग लिखना आरम्भ किया, और खेद है कि प्रायः सीमा के बाहर निकल गये। इस सम्बंध में चोंच जी और गोकुल दास जी व्यास के 'महाकाव्य' पढ़िये और ऐसी जगह रख दीजिये कि सहधर्मिणी जी-यदि पढ़ी हों-न पा सकें। घर की शान्ति भंग करने से क्या लाभ? और विशेष कर आज कल जब कि उससे 'विश्व युद्ध' की सम्भावना हो सकती है । ऐसी एक कविता आपको सुनाये देता हूँ । सुनिये :—

रंग देखिके कोयल जाय छिपी द्युति
भैंस की देखिके लागत फीकी।
हाथी हटे लखि लोचनों की छटा,
मिस्सी किये हैं घनी सुरती की ॥
ऊंट छिपे तब चाल विलोकि के
काग छिपे सुनि बोली सुनीकी।

हुक्का लिये खोपड़ी पे खड़ी भुतनी
सी तनी पत्नी कवि जी की ॥

खड़ी बोली वाले इससे कमज़ोर नहीं लिखते मगर ब्रज भाषा वाले सुधार भी तो चाहते हैं। यदि पत्नी पाउडर आदि से उस बुड्ढे पुराने कलाकार की स्याही का छिपाने और कम करने का प्रयत्न करेगी तो कहेंगे कि चेहरा ऐसा है "मनहुँ धुंवानी भीत पर कलई दई फिराय।" उसे छोड़ेंगे नहीं। जब गंभीर काव्य के लेखक अपनी कृतियाँ धर्म पत्नी के नाम से छपवाते हैं या प्रार्थना करते हैं कि "तुम गा दो मेरा गान अमर हो जाये" तो हास्य रस के लेखकों का यह व्यवहार कहाँ तक उचित है वेही अपने घर में बता सकते हैं।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक अच्छे बुरे ढंग से हास्य और व्यंग लिखा गया है और लिखा जा रहा है। पैरोडी लिखने वालों का टिड्डीदल छापा मार रहा है। प्रत्येक प्रसिद्ध कवि की मूल कविता के दो चार शब्द उलट पलट कर हँसाने का प्रयास किया जा रहा है। यह सब हो रहा है। बहुत कुछ हो चुका है मगर फिर भी बहुत कुछ बाक़ी है अभी।

नाटकों के सम्बंध में भारतेन्दुजी और जी. पी. श्रीवास्तव का नाम आचुका है। श्री नारायण प्रसाद 'बेताब,' आग़ा हश्र काश्मीरी बल्कि राधेश्याम जी ने भी अपने नाटकों में कुछ अंग हास्य के लिये सुरक्षित कर रखा था। इस समय भी हर सिनेमा फ़िल्म मे कुछ न कुछ उल्टा सीधा हास्य, लेखक के योग्यतानुसार रहता है। परन्तु स्वतंत्र, शुद्ध और शिष्ट हास्य का पूरा नाटक कदाचित एक भी नहीं। ऐसे नाटक लिखे जाने की आवश्यकता है, चाहे वे खेले जाने के लिये हों अथवा केवल पढ़े जाने के लिये। इनसे भी अधिक आवश्यकता है उन छोटे

कमी है
१ गद्य में

छोटे हास्यमय रूपक प्रहसन। या एकांकी नाटकों की जिन में अधिक समय भी नहीं लगता और जिनको रेडियो, सिनेमा और प्रत्येक कालिज या क्लब आवश्यकतानुसार काममें ला सकते हैं। इनसे साहित्य का भी पेट भरेगा और लेखक का भी। मेरा अनुमान है कि रेडियो अधिकारीवृन्द, यद्यपि वे स्वयं ही बड़े साहित्यिक और कलाकार होते हैं, अच्छे प्रहसनों को उपेक्षा की दृष्टिसे नहीं देख सकते; और वे प्रहसन Feature & Dramaयदि वास्तवमें सुन्दर और ऊँचे स्तरके होंगे तो उनसे केवल साहित्य की सेवा ही नहीं होगी वरन् समाज की साहित्यिक अभिरुचि के स्तर को ऊँचा उठाने में सहायता भी मिलेगी। इसी भाँति पत्र साहित्य में विजयानन्द जी दूबे के नाम से जो चिट्ठियाँ 'चाँद' में निकलती रहीं मिलती हैं; परन्तु दूसरा कोई लेखक नहीं मिलता जिसने इधर ध्यान दिया हो। किसी के दो चार मिनट के ध्यान को मैं जानता नहीं। इसलिये यह राह तो बिलकुल ही सूनी है। इस पर कुछ लोग चलें तब यह राह बने। लघु निबंध भी बहुत कम हैं। श्री अन्नपूर्णानंद जी ने लिख कर अर्धविराम लगाया अथवा पूर्ण विराम, नहीं कह सकते। इन्होंने-या श्री हरीशंकर शर्मा आदि ने--कभी कभी होली दिवाली में कुछ लिख ही डाला तो क्या हुआ। ऐसे अवसरों पर न तो ठीक तरह से काम ही होता है और न वह पर्याप्त ही होता है। इनकी भी आवश्यकता है। कुछ नये लेखक मैदान में उतर रहे हैं और इधर झुक रहे हैं। उनसे आशा है कि वे व्यंग और हास्य को मंच से लुढ़क कर नाली में गिरने से बचाएँगे और उसको फिरसे साहित्यमंच पर उपयुक्त स्थान दिलाने में समर्थ होंगे।

हिन्दी या उर्दू में हास्यमय और व्यंगपूर्ण 'आलोचनायें–' अर्थात् ऐसी आलोचनायें जिनसे हास्य या व्यंग पैदा हो–मेरी

दृष्टि के नीचे नहीं पड़ीं। या तो वे हैं ही नहीं या यदि हैं तो नहीं के बराबर हैं। इनकी तो बहुत बड़ी आवश्यकता है। आलोचकों को भी चिढ़ाने वाला आलोचक बहुत तगड़ा और मुस्तंडा होना चाहिये, चाहे वह धुरंधर विद्वान और प्रगाढ़ पंडित न भी हो। ऐसे लोग कम मिलेंगे, मगर मिलेंगे तो अवश्य। यह अकाल कब तक चलेगा। इसके लिये भी क्या सरकार पर कोई अभियोग लगाने का विचार है? पत्रों में 'आवश्यकता' छापने से भी कदाचित सफलता न होगी। इसके लिये केवल ऊँचे दर्जे के आलोचक ही प्रार्थना पत्र भेज सकते हैं, नहीं तो भय है कि साहित्यिक क्षेत्र में गालीगलोज से आरम्भ हों और; वहाँ दफा १४४ भी अनशन करके मरजायेगी यह निश्चय है। इसलिये नमूना खराब नहीं होना चाहिये।

उपन्यास और उपन्यास लेखकों की न हिन्दी में कमी रही और न उर्दू में; परन्तु सुन्दर साहित्यिक, सुखद, सरस और सार्थक बहुत कम मिले और केवल शुद्ध हास्य या व्यंग में तो शायद एक भी नहीं। यह कहिये उर्दू हिन्दी दोनों जगहों में प्रेमचन्द जी घुस गये वरना हर जगह राजा साहब-शृङ्गार रस-का ही राज्य रहता। यदि उपन्यास न होते तो अधिक हानि न थी। यहाँ तो छोटी कहानियाँ भी कम हैं। लोगों ने, अनजान या धोखे ही में कुछ लिख डाली हैं जिन पर लिखने वालों को भी गर्व नहीं। एक आध हुई भी तो क्या। एक चना क्या भाड़ फोड़ेगा? हाँ उर्दू में अज़ीम बेग चोगताई, पितर्स और फरहतउल्ला बेग आदि ने कुछ लिखा भी, मगर हिन्दी में सन्नाटा समझिये। श्रीअन्नपूर्णानन्द, तस्लीम लखनवी या और किसी भूले भटके ने एकाध कहानी लिखही दी तो इससे क्या संतोष हो सकता है या साहित्य की प्यास बुझ

सकती है ? यहां तो लोग भूखे बंगाली की तरह 'हाम्य' 'हाम्य' चिल्ला रहे हैं मगर इन शरणार्थियों की ओर कोई देखता भी नहीं। और कोई यह कभी न कहेगा कि जेब खाली है।

हास्य की कविताओं के बारे में कुछ कहना व्यर्थ है क्योंकि बनारस के बाजारों और कानपुर के कारखानों में हर प्रकार की कविताएं मिल सकती हैं, चाहे फुटकल

२ पद्य में लीजिये चाहे थोक में। लेखक की शैली स्वयं लेखक होता है इसलिये जितने कवि होंगे उतनी ही शैली (जैसे जितने मुँह उतनी बातें)। भिन्न भिन्न विषयों पर भिन्न भिन्न प्रकार से लोग लिखेंगे और साहित्य की कमी पूरी हो जायगी। हाँ, इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि अश्लील कवितायें न लिखी जांय। आप कहते होंगे कि "यह शख्स बारबार 'अश्लील' का शब्द रटता है;" परन्तु इसका एक कारण है। मैं समझता हूँ कि कविता में व्यंग्यार्थ से ध्वनि पैदा होती है तब रस पैदा होता है। इस कारण व्यंग्यार्थ मूल है। तो ऐसे शब्द जो अश्लील, भद्दे और निकृष्ट होंगे उनसे कैसी ध्वनि निकलेगी और कौन सा रस होगा कहना कठिन है। यदि व्यंग्य पर ध्यान रखकर कविता लिखी जायगी तो ऐसे शब्दों का आवश्यकता ही न पड़ेगी। 'प्रत्येक कविता में रस है' यह कहना भी तो जबरदस्ती की बात है। जहाँ संकेत से ही काम चलता है वहाँ उस बात को साफ़ खोलकर कहना भी गुण नहीं। कवियों की शैली में इसी में तो अन्तर होता है। वे एक ही बात को अनेक ढंगों से प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिये देखिये। यों कह सकते हैं कि :—

शक्कर पर कंट्रोल, बीबी डाटें हर घड़ी।
मैं हाजी बगलोल, बनियों की गाली सहूँ॥

जिससे शक्कर की कमी की शिकायत हो सकती है इस मे व्यर्थ ही बीबी को बुला लिया। इसको मैं अश्लील समझता हूँ। † बेढब जी ऐसी ही बात को यों कहते हैं कि:–

मीठी वाणी का भला कैसे हो आभास।
शक्कर का मुख में नहीं बेढब कभी निवास॥

तो उससे अच्छा और सुन्दर है, यद्यपि इसको खोल कर न कहते तो भी काम चल सकता था। जैसे कि:—

चाय बरबाद करेगी हमें मालूम न था।
इसमें शक्कर भी पड़ेगी हमें मालूम न था॥

और इससे भी शक्कर के मिलने में जो कठिनाइयां हैं वे कठिनाइयां झेलने वालों के मस्तिक में अवश्य प्रकट हो जायंगी, कुछ दृश्य भी याद आ जायेंगे। जब वाक्य ही 'रसात्मक' न हुये तो कविता क्या रही? तात्पर्य यह कि इस प्रकार लिखने से कुछ शिष्टता तो स्वयं आजायगी। हाँ समाज और जनता इसको पसन्द नहीं करती या नहीं समझती तो यह हमारा दुर्भाग्य है। हम उनको समझाने का प्रयत्न करेंगे तो हास्य रस के आधुनिक 'वीरभद्र' जो कवि सम्मेलनों से उत्पन्न होकर भद्दे उपनामों तथा अश्लील कविताओं से साहित्य-यज्ञ का विध्वंस कर रहे हैं आधे रह जायेंगे—अर्थात् 'भद्र' हो जायेंगे। इसी प्रकार मनोविज्ञान का दिग्दर्शन कराना, मन की उन दशाओं और अवस्थाओं का चित्रण करना जिनको बहुधा हम स्वयं नहीं जान पाते, या मानव प्रवृत्तियों के चित्र खींचना, समाज की कुरीतियों को मीठे व्यंग में लिखना या माया की चंचलता आदि का वर्णन करना आदि सैकड़ों बातें हैं जिन पर कवि लोग लिख रहे हैं और लिखेंगे। परन्तु सबसे बड़ी कमी यह है कि हास्य में अभी कोई महाकाव्य नहीं है। खंड काव्य भी नहीं। जब गंभीर

† यह मैंने लिखा है कोई बुरा न मानेगा।

काव्य में सैकड़ों ग्रंथ हैं, गाथायें हैं, तो हास्य में बिलाकुल शून्य होना गर्व की बात नहीं है। गंभीर कवियों ने सुदामा चरित्र जैसे बहुत से खंड काव्य या प्रबंध काव्य लिखे। आप हास्य में नमूने के लिये ही एक लिख लीजिये। 'चोंच' जी ने चूना घाटी लिखी। वह एक तो पैरोडी है, कोई स्वतंत्र कविता नहीं, और फिर यह कि वह सच पूछिये तो हल्दी और चूना घाटी दोनों से बढ़कर खैरी गढ़ (की थुक्का फजीहत) है। मतलब यह कि कवियों को इधर ध्यान देना चाहिये और इस कमी को अवश्य पूरा करना चाहिये, वरना जिस रस में एक भी प्रबंध या खंड काव्य नहीं, वह रस नीरस नहीं तो क्या है? उस रस के लेखकों और कवियों को हम क्या कहें? कविगण आँखें खोलेंगे तो और सभी त्रुटियां ठीक हो जायेंगी यह अवश्य कह सकते हैं।

समय बहुत होगया और आप कहते होंगे कि इसकी न तो भाषा ही ठीक है न कोई बात ही, फिर भी बकता ही जाता है और क्षमा भी नहीं मांगता। परन्तु क्षमा मांगने

बिदाई

से मिली भी तो क्या? इस लिये इसका तो प्रश्न ही नहीं उठता। रह गई भाषा की बात, सो मामला यह है कि मैं अपनी बातें उन लोगों को भी सुनाना चाहता हूँ जो खुशीसे या मजबूरी से इस भाषा का अमृतपान करना चाहते हैं। फिर मैं कोई पंडित भी तो नहीं कि आप मेरी भाषा को व्याकरण या कोष के कोल्हू में डालकर उसका तेल निकालें। यह भाषा हृदय की भाषा है और हृदय तक पहुँचेगी ऐसी आशा है। अच्छा, अब आप भी चलिए घर में प्रतीक्षा होती होगी और मुझे भी आज्ञा दीजिये।

जय हिन्द ॥



# विषय सूची

| संख्या | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| | पहला फाटक—भाषा की उत्पत्ति | १—४ |
| | दूसरा फाटक—साहित्य, साहित्य और विज्ञान में भेद | ५—७ |
| | तीसरा फाटक—हमारा साहित्य, ललित कलाएँ और साहित्य, साहित्य के रूप, काव्य, रस, रस के भेद, रस दोष | ८—३२ |
| | चौथा फाटक—हास्य रस, हास्य, सामग्री, हास्य और दूसरे रस, सटायर, हास्य पैदा करने के ढंग। हास्य का उचित प्रयोग | ३३—६४ |
| | पांचवा फाटक—हमारे साहित्य में हास्य के रूप, गद्य में, पद्य में, व्यंग और पैरोडी आदि | ६५—८१ |
| | छठा फाटक—हास्य में धोखा | ८२—६३ |
| | सातवाँ फाटक—हिन्दी का इतिहास और हास्यरस का विकास | ६४—२३१ |
| | (क) प्राचीनकाल (गद्य तथा पद्य) | ६४—१०५ |
| | न्दी—१. अमीर खुसरू २. कबीरदास जी ३. सूरदासजी ४. तुलसीदास जी ५. श्रीपति जी ६. अली मुहिब खां 'प्रीतम' ७. बेनी बंदीजन ८. पद्माकर जी ९. गिरधर जी १०. घाघजी | |
| | दू—१. मिर्जा सौदा २. सैयद इंशा ३. मिर्जा ग़ालिब ४. सर सैयद अहमद खाँ ५. डा. नजीरअहमद ६ अवधपंच (सरशार) | १०६—१२१ |

७. जटल, लाल बुझक्कड़ आदि—
(ख) आधुनिक काल (गद्य और पद्य) १२१-१७२
।—१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी २. पं० प्रतापनारायणमिश्र
३. पं० बालकृष्ण भट्ट ४. बाबू बालमुकुन्द गुप्त
५. श्री प्रेमचन्द ६. पं० विजयानन्दजी दूबे
७. श्री जी. पी. श्रीवास्तव ८. श्रीहरिशंकर शर्मा
९. श्री शिवपूजन सहाय १०. श्री अन्नपूर्णानन्दजी
११. श्री यशपाल १२. 'तस्लीम' लखनवी
—१. रशीद अहमद साहब २. श्रीफरहतउल्लाबेग १७३-२०६
३. 'पितर्स' ४. श्री अज़ीमबेग चोग़ताई
५. 'शौकत' थानवी, ६. रमूज़ी, ताज आदि
रा—१. 'अकबर' २. 'ज़रीफ़' २०६-२१३
३. 'बिस्मिल' ४. माचिस, सिगार, शौकआदि
म्मेलन—१. पं० प्रतापनारायण २. नाथूरामशर्मा शंकर' २१३-२३१
३. बा. बालमुकुन्दजी गुप्त ४. पं० बद्रीनाथ जी भट्ट
५. 'बचनेश' जी ६. बेढब ७. चोंच
८. श्रीशारदाप्रसाद भुशुण्डि ९. पं०श्रीनारायण चतुर्वेदी
१० श्रीमहादेवप्रसाद, 'बेधड़क' व्यास आदि
११. अवधी के कवि श्री वंशीधर शुक्ल, देहाती, रमई काका केशव आदि।
।रिशिष्ट—गड़बड़ झाला २३२-२७८
रुबाइयां २३३-२४१
गीत २४२-२७२
हज़लें २७२-२७८
शब्दकोष—



—: रुबाई :—

कपड़े चिथड़े, नाज को भूसा करदे।
चाहे घर में खोद के मिट्टी भरदे॥
अखबार तेरा मुझपे कृपा दृष्टि करे।
मेरे प्यारे मूस मुझे यह वर दे॥१॥

है बुद्धि अगर भैंस तो मैं डंडा हूँ।
दुनियाँ को जलाने के लिए कंडा हूँ॥
कविता सरिता में न मिला खेदजहार।
भगवान! किनारे पे तेरा पंडा हूँ॥२॥

# पहिला फाटक

## भाषा की उत्पत्ति

अकबर इलाहाबादी—ने आगे बढ़ कर कहा :—

डार्विन साहब हक़ीक़त से बहुत ही दूर थे।
'हम न मानेंगे कि बाबा आपके लंगूर थे॥'

सब ने सुना, सभा में हर्षध्वनि हुई और डार्विन साहब अनुपस्थिति में यह प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत हो गया। पर भाई आप इतना तो अवश्य मानेंगे कि यह दुनिया इन्क़-ब पसन्द है परिवर्तनशील है, और प्रगति ही इसका जीवन

है। आप यह तो कह नहीं सकते कि हज़रत या पंडित आदम (या जो भी आदि पुरुष रहा हो) उम्दा शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा पहने हुए हौवा के साथ सिनेमा हाल में विराजमान हो कर बेगमाती उर्दू का आनन्द लेते होंगे, या कुर्ता, धोती और चट्टी पहने हाथ में थला लिए हुए किसी कवि सम्मेलन में छीछा लेदर मचाते हूंगे। यह हाल तो उन्नत अवस्था का है मेरा तो अनुमान है कि मिस्टर या बाबा आदम को अपने हृदय की बातें तथा आवश्यकतायें प्रकट करने में बड़ी कठिनाई रही होगी। सम्भव है ये हव्वा से डरते भी हों, जिसकी वजह से अभी तक लोग हौव्वा को कोई भयानक वस्तु समझते हैं। मगर इससे हमको क्या मतलब ? यह तो उनकी प्राइवेट बात थी। आदम और हौव्वा भी और जानवरों की भाँति रह कर अपना जीवन निर्वाह करते थे या क्या करते थे यह तो मैंने देखा नहीं, परन्तु इतना तो अवश्य कह सकता हूँ कि वे बग़ैर बोले बग़ैर बात-चीत किए ही अपना काम चलाते रहे होंगे।

लोगों का कहना है—और वे ख़ाहमख़ाह झूठ क्यों बोलने लगे—कि मनुष्य और दूसरे और जानवरों में एक विशेष अन्तर है। मनुष्य बोलता है और वे ज़बान रखते हुये भी बेज़बान हैं, बोलते नहीं। शायद इसी कारण मनुष्य ने अपने लिए 'हैवाने नातिक़' का ख़िताब तजवीज़ फ़रमाया, जिसका अर्थ यही हुआ कि "हज़रत ! हैवान तो हम भी हैं मगर हैं तुमसे अच्छे। हम बोलते हैं" इसके अतिरिक्त मनुष्य ने अपने को "अशरफ़ुल मख़्लूक़ात" अर्थात सृष्टि में सर्व श्रेष्ठ मान लिया। यह "अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना" उचित चाहे न भी हो परन्तु बात तो ठीक है। मामला यह है कि अल्लामियां ने धोखे से या जान बूझ कर मनुष्य को सबसे बड़ा एटम बम दे दिया जिसको हम बुद्धि कहते हैं। इसको पाकर मनुष्य ने क्या कुछ

काम भी नहीं किए ? तो कहने का मतलब यह है कि इसी बुद्धि के प्रताप से मनुष्य ने हर जगह सफलता प्राप्त की। हज़रत आदम पहले इशारों और संकेतों द्वारा तथा खाँस-खूँस और 'हूँ हूँ' करके अपने हृदय के भावों को व्यक्त करते होंगे ; फिर जब धीरे धीरे अपनी शक्ति के प्रयोग तथा तपस्यादि गुणों से परिवार को गुणा करते गए होंगे तो बुद्धि की प्रखरता और उसके विकास से ये संकेत पहले से अधिक स्पष्ट होते गए होंगे—जिनमें से अनेक इस समय भी मिलते हैं और फिर 'गोंगाँ' और 'एं एं' की जगह विशेष ध्वनियां और आवाज़ें पैदा हो गई होंगी जिनको लोग शब्द कहने लगे । जिस प्रकार एक नन्हा बच्चा 'हप्पा' तथा 'मम्मा' से आगे बढ़ कर कुछ बोलने लगता है इसी प्रकार हज़ारों वर्षों पश्चात् यही शब्द✽ बढ़ते बढ़ते भाषा के रूप में आ गए होंगे। पहले संज्ञा सर्वनाम और विशेषण आये होंगे फिर क्रिया के बिना सूना देख कर उसको भी बुला लिया होगा । 'माता-पिता' और खाने पीने वाले पदार्थों के नाम पहले आए होंगे फिर उनकी क्रिया भी चल निकली होगी। इसी प्रकार हृदय की बातों, विचारों और भावनाओं को दूसरे लोगों पर प्रकट करने का माध्यम, साधन या ज़रिया पैदा हो गया होगा जिसको भाषा या ज़बान कहते हैं। भाषा की उन्नति मनुष्य की सामुहिक उन्नति से बंधी है।

अब यहां एक झगड़े वाली बात आ गई। संसार में बहुत से धर्म हैं और उनके धर्म-ग्रन्थ स्वयं भगवान या खुदा की भाषा में हैं । इसी कारण यदि किसी एक को 'ईश्वरीय वाणी' और सबसे पुरानी कहदूँ तो दूसरा धर्म अपना डंडा उस समय तक

---

नोट—✽ कुछ आचार्य कहते हैं वाक्य पहले आए ; शब्द तो उनके टुकड़े किए गए हैं॥

नीचे नहीं रक्खेगा जब तक मेरी खोपड़ी से नदी नाले न फूट निकलें । इसी लिए मैं चुप रहना ही उचित समझता हूँ । बस यह समझ लीजिए कि संसार के आरम्भ में जिस जिस कोने में, दूसरों से दूर, जितनी जातियां रही हूंगी उतनी ही भाषायें उत्पन्न हो गई हूंगी । जो जातियां फैलती गईं वे अपनी भाषा को कुछ परिवर्तन के साथ इधर उधर पृथ्वी पर फैलाती गईं । इस प्रकार आर्य्य, मंगोल इत्यादि भाषायें और उनकी भी शाखायें तथा उप शाखायें पदा हो गई होंगी । हिन्दी भी इन्हीं में से एक भाषा है ।

बुद्धि का जितना विकास होता गया उतनी ही मनुष्य की उन्नति होती गई । अब उसको इस बात की आवश्यकता हुई होगी कि वह अपने किसी मित्र, प्रेमी या प्रेमिका को अपनी बातें उससे दूर रह कर भी बता सके या अपने पूर्वजों के तथा भगवान के, आदेशों को सदा के लिये पूर्णतः उसी रूप में रख सके, तो उसको लिखने ( लिपि ) की ईजाद करनी पड़ी होगी । इसमें भी बहुत समय लगा होगा । हमारे पूर्वजों को अँधेरे से प्रकाश को उत्पन्न करने में जो कठिनाई हुई होगी वह शार्टहैन्ड या टेली ग्राफ़ आदि के बनाने वालों को शायद न हुई होगी यद्यपि उनका ढंग भी कदाचित वही रहा होगा । पहिले कुछ चिन्ह बनाए गए होंगे, फिर उनमें समुचित परिवर्तन करके घटाते बढ़ाते इस योग्य बना लिया होगा कि अपनी भाषा को यथा सम्भव लिख सकें । फिर व्याकरण ने भी जन्म लिया होगा कि शुद्ध भाषा बिगड़ने न पाए । इस प्रकार भाषा विज्ञान के आचार्यों के मतानुसार मनुष्य ही ने स्वयं भाषा बनाई जिसको वह बोलता और लिखता है । इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी भी भाषायें हो सकती हैं जो बोली जाती हों परन्तु लिखी न जाती हों । यह सब आवश्यकतानुसार होता रहा है और सभ्यता के वेग के साथ साथ भाषा में भी काँट छाँट और उन्नति होती रही है । जिस भाषा के बोलने

वाले करोड़ों की संख्या में हों वह भला कैसे न लिखी जाती। हाँ पढ़ने वाले अवश्य कम हो सकते हैं; क्योंकि उन चिन्हों अर्थात् अक्षरों का ज्ञान रखने वालेही साक्षर और पढ़े लिखे लोग कहलाते हैं। यहां हमको इससे बहस नहीं कि साक्षर और पढ़े लिखे लोगों में क्या अन्तर है।

—:※※:—

# दूसरा फाटक

—: रुबाई :—

सम्भव न हुआ वेदों का सबको रटना।
ईजाद किया ऋषियों ने 'अक्षर' लिखना॥
गाये गाये जैसे कि हो जाय विवाह।
लिखते लिखते वैसेही साहित्य बना ※॥

जब बोलने वाले मनुष्य ने लिखने वाली तरकीब निकाली कि ईश्वरीय वाणी को लिख ले और उसको स्थायी बना ले (क्योंकि
हाफ़िज़ बन कर ज़बान पर सामान लादे लादे कब तक
साहित्य फिरता) तो उसको लिखने के बाद उसने अपने ऋषियों और
अदब महापुरुषों के आदेशों और उनकी पवित्र वाणी को भी
लिखा। फिर धीरे धीरे वीर गाथायें, रोचक कहानियाँ और घटनायें भी लिखी गईं। इस प्रकार देश या जाति के महापुरुषों के विचार, उनकी भावनायें, तथा उनके उपदेश भिन्न भिन्न प्रकार

---

नोट—※ यह बन्दे की उक्ति है कोई सिद्धान्त नहीं

से लिख लिये गए और यही साहित्य कहलाया। जो भाषायें लिखी नहीं गईं उनका साहित्य नहीं बन सका। इस साहित्य के दो रूप मिलते हैं। एक तो वह जो बोलने वाली भाषा के ढंग में लिखा गया जिसको गद्य कहते हैं और दूसरा वह जिसको अधिक रोचक, सुन्दर, सुरीली और मधुर परन्तु उलट फेर की हुई भाषा में लिखा जिसको पद्य कहते हैं।

जब हम अपने साहित्य पर दृष्टि डालते हैं तो उसमें (१) गद्य में नाटक, कहानियाँ, उपन्यास, लेख, जीवनियां, भाषण इत्यादि पाते हैं और (२) पद्य में गीत, ऐतिहासिक घटनाएं, धार्मिक शिक्षायें, और गाथाएँ आदि मिलती हैं; फिर इस उन्नत काल में गद्य के अन्दर बहुत सी शाखायें हैं जैसे इतिहास, भूगोल दर्शन, विज्ञान इत्यादि। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या यह सब साहित्य के अंग हैं यद्यपि अंग्रेजी भाषा के कुछ जानकारों के मतानुसार आज-कल विज्ञान के बारे में भी ( रेडियो, हवाई-जहाज या बम के बारे में ) जो कुछ विस्तार-पूर्वक समझाकर लिखा जाय साहित्य है परन्तु मैं इस प्रश्न के छकड़े को नहीं खींचना चाहता क्योंकि साहित्य के मर्मज्ञों ने विज्ञान को साहित्य से अलग कर दिया है। मैं उन्हें मिलाने का व्यर्थ प्रयत्न न करूँगा चाहे व्यक्तिगत रूप से साहित्य, विज्ञान तथा दर्शन से मिलता जुलता ही क्यों न रहे। विज्ञान का परिवार भी तो कुछ छोटा नहीं है।

वास्तव में साहित्य[1] किसी सत्य को सिद्ध करने का प्रयत्न

---

नोट—[1] साहित्य के लिये अब 'काव्यकला' का शब्द लिखते हैं तो यह समस्या साफ हो जाता है।

नहीं करता ; वह तो मानव की अपनी भावनाओं और विचारों का प्रदर्शक है। जहाँ लेखक अपना व्यक्तित्व रखता है वह साहित्य है, और जहां वह प्राकृतिक अथवा ईश्वरीय अटल सत्य से अटक जाता है जो उसका अपना नहीं है और जहाँ उसको इस सत्य के प्रकट करने के लिये बहुधा चिन्हों और तर्कों का सहारा लेना पड़ता है वह विज्ञान, दर्शन शास्त्र तथा उनके अन्य भाई बन्धु हैं। साहित्य में भाषा अपने पूर्ण सौन्दर्य और अलंकारों के साथ अठखेलियाँ करती है और इस भाषा का व्यक्तिगत रूप से प्रयोग ही साहित्य है, यद्यपि भाषा सबकी है। भाषा उस दूध के समान है जो सबको प्राप्त है परन्तु साहित्य रसगुल्ला आदि मिठाइयों के समान है जो दूध से बन कर भी किसी कलाकार की कला का परिचय देती है। इसलिए साहित्य विज्ञान से पृथक अवश्य है। हाँ इतिहास की सीमाएँ कब और कहाँ साहित्य से मिल जाती हैं, छू जाती है या अलग हो जाती हैं यह साहित्य-मर्मज्ञ अथवा कवि का हृदय ‡ "सहृदय" ही बता सकता है। पुष्पों के सौन्दर्य से किसका मन प्रसन्न नहीं होता ? परन्तु रसका मर्मज्ञ तो वास्तव में भ्रमर और केवल भ्रमर है ( या नूरजहाँ थी )।

साहित्य और विज्ञान में अन्तर



---

नोट—‡ 'सहृदय' कवि के अतिरिक्त हम सब भी हो सकते हैं

# तीसरा फाटक

## हमारा साहित्य

ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि के साथ साथ पांच इन्द्रियाँ भी (हवास खमसा) दी हैं जिनके द्वारा वह संसार में रह कर, यहाँ के पदार्थों को देखकर, सुनकर, सूँघ कर, चख कर या छू कर आनन्द प्राप्त कर सकता है। मनुष्य ने जब उन्नति की तो अपने करतब भी दिखाये और अपने अनुभवों को सौंदर्य पूर्ण ढंग से व्यक्त करने के लिए वे चीजें पैदा कीं जिनको पढ़े लिखे लोग 'ललित कला' १ की संज्ञा देते हैं। ये कलायें मुख्यतः संगीत, साहित्य, मूर्ति कला और चित्र कला हैं। संगीत कला के लिए सुनने को कान की आवश्यकता है। नृत्य कला संगीत का अंग है जिसके लिए आँखें भी चाहियें। मूर्ति कला और चित्र कला देखने—आँखों से ही आनन्द देती हैं परन्तु साहित्य आँख और कान—एक हो या दोनों—दोनों से संबंध रखता है। ये कलायें जीवन का रस हैं और प्रत्येक प्राणी को उसकी योग्यतानुसार आनंद का अनुभव कराती हैं। यदि कोई मनुष्य ऐसा है जो इनसे वास्तव में अनभिज्ञ है तो मैं केवल श्री भर्तृहरि का यह श्लोक पढ़ कर और अपना सर पीट कर चुप हो जाऊँगा कि :—

ललित कलाएं
(फ़नूने लतीफ़ा)

---

नोट—१ बढ़ई, कुम्हार की सामान्य कला उपयोगी कला है।

साहित्य संगीत कला विहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छ विषाणहीनः †

कलायें तो सभी मनमोहक और आनन्दप्रद हैं और प्रत्येक कलाकार अपनी कला को सर्वश्रेष्ठ मानता है, परन्तु अधिकांश विद्वानों ने साहित्य को ही सर्वोपरि माना है क्योंकि अत्यन्त सूक्ष्म होने के अतिरिक्त इसका आधार ठोस पदार्थ नहीं है; और पाँचो इन्द्रियों को इससे आनन्द का अनुभव होता है । इस प्रकार दूसरी ललित कलाएँ किसी न किसी रूप में इसके अन्दर आ भी जाती हैं । संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध आचार्य भगवान भरत मुनि थे । फिर भामह, उद्भट, दण्डी और मम्मट आदि हुए । इनके अतिरिक्त हिन्दी और उर्दू में भी आचार्यों की कमी नहीं रही जिनका उल्लेख यहाँ अनावश्यक है । हमारा साहित्य इन्हीं के अथक परिश्रम का फल है ।

साहित्य के रूप

साहित्य के दो रूप हैं (१) गद्य और (२) पद्य । इसी दूसरे पद्यांग को काव्य (साधारणतया) कहा जाता है । प्रत्येक भाषा में काव्य का जन्म पहले हुआ है फिर गद्य का । हमारे आचार्यों और ऋषियों ने वेद को ही काव्य का मूल माना है क्योंकि वहाँ ध्वनि गर्भित व्यंग्यात्मक और अलंकारात्मक वर्णन मिलता है । फिर महर्षि बाल्मीक के सामने ही जब व्याध ने कामोन्मत्त क्रौंच पक्षी को मार कर उसके जोड़े से अलग कर दिया तो सहसा उनके क्रन्दन से करुण रस उत्पन्न हुआ और उनके मुँह से यह श्लोक निकल

† जो संगीत, साहित्य और कला से अनभिज्ञ हैं वे साक्षात् पशु हैं जिनके सींग और दुम नाशय हैं ।

गया :— मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीं समाः ।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम् ॥

फ़ारसी आदि अन्य भाषाओं में भी ऐसी ही कुछ आकस्मिक घटनाओं के समय काव्य-शेर-का जन्म हुआ है।

काव्य की परिभाषा करना कठिन है ; इस कारण जिन्हों
काव्य (शेर) ने उसको उदाहरणों द्वारा समझाने और व्याख्या
करने की चेष्टा की है वे अधिक सफल हुए हैं।
संस्कृत में काव्य की प्रसिद्ध परिभाषा

†"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" है:—

जिसमें 'रसात्मकं' शब्द के बहुत विस्तृत अर्थ हैं। इसमें 'भाव' ही को प्रधान माना है। उर्दू कवियों में 'आतश' ने कहा

" बंदिशे अल्फ़ाज़ भी जड़ना नगों से कम नहीं।
शायरी भी काम है आतश मुरस्सा साज़ का ॥ "

जिससे केवल यह पता चला कि काव्य में वाक्यों और शब्दों का कितना महत्व है। परन्तु सफ़ी साहब ने मानो संस्कृत की परिभाषा की पुष्टि करते हुए कहा कि :-

शायरी क्या है ? दिली जज़बात का इज़हार है।
दिल अगर बेकार है तो शायरी बेकार है।

जिसमें हृदय के भावों तथा उद्गारों की महत्ता प्रकट की गई है। अधिकांश आचार्यों का मत भी यही रहा है।

इक़बाल ने कहा—"शायरी जुज़वीस्त अज़ पैग़म्बरी।"

जिसका अर्थ यह हुआ कि कविता ईश्वर की वाणी है।

† वह वाक्य जो अपने में रसान की शक्ति रखता हो काव्य है

यह पैग़म्बरों का अंग है। ऐसा कह कर शायरी को बहुत ऊँचा उठा दिया और पवित्र बना दिया। शायर पैग़म्बर बन गया और उसकी शायरी 'इलहाम'। अरस्तू कहते हैं कि "काव्य किसी सत्य का चित्रण है"। कुछ अरब के कवियों के विचार में 'शायरी वह झूठ है जो पसन्दीदह हो' अर्थात् सुन्दर झूठ शायरी है। इसके विरुद्ध कुछ दूसरे विद्वानों और साहित्यकारों ने '† सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' को काव्य के लक्षण माने हैं जिसमें काव्य का सुन्दर होना ही पर्याप्त नहीं है वरन् उसको सत्य और उपयोगी भी होना चाहिये। किसी ने कहा कि 'काव्य वह है जो हम से रहस्य की बातें कहे और आनन्द दे, हृदय में टीस पैदा करे और उनकी बंद आँखों को खोल दे।' परन्तु इन सब से सरल और सरस परिभाषा उसने की जिसने कहा कि 'काव्य केवल पेट का हल्कापन है।' जब पेट में खलबली मची तो रोक न सके, मब दूसरों के सामने रख दिया या काग़ज़ में बाँध दिया, कह दिया। इस सूत्र में भी यही बहुमत शामिल है कि हृदय की भावनाएँ और उद्गार जब भाषा का वेश पहनकर सहसा (संगीत की किसी पगडंडी से) निकल पड़ते हैं तो काव्य की संज्ञा पाते हैं। जब चातक, मोर, चकोर, मृग और पतंगादि जीव मेघ, चन्द्र नाद और दीपादि से प्रभावित होकर अपनी उमंगों को किसी न किसी प्रकार प्रदर्शित कर ही देते हैं तो फिर मनुष्य कैसे न करता; उसको तो भाषा मिली हुई है जिससे वह मनके भावों को बहुत कुछ व्यक्त कर सकता है। इस प्रकार काव्य में 'भाव' ही प्रधान माना गया है। परन्तु इस मैदान में आतश अकेले नहीं हैं—संस्कृत के आचार्यों ने भी उनका समर्थन किया है और प्रायः भाषा की शुद्धता, सुन्दरता तथा पवित्रता पर ज़ोर दिया है और अलंकृत भाषा को ही सराहा है। अब संक्षेप

† The True, The good, The Beautiful.

में हम यह कह सकते हैं कि काव्य में शब्द और अर्थ ( दोष रहित ) होंगे, अलंकार-सनअतें-भी हों तो अच्छा है। 'दोष रहित भाषा' के अन्दर विचार और उद्गार भी आगये। उर्दू में इसको फसाहत कहते हैं, लेकिन † वज़न और क़ाफ़िया ( छन्द और तुकान्त ) इसमें शामिल नहीं हैं। कदाचित इसी परिभाषा के कारण कुछ ऐसे कवि भी पैदा होगये जिन्होंने 'रबड़ छन्द' इत्यादि के नये आभूषणों से काव्य को सुसज्जित किया और कुछ ने तो केवल 'आँय, बाँय, शाँय' बक कर भी नाम कमाया, या कमाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उर्दू के पुराने कवि उपरोक्त परिभाषा को नैयायिकों की उपज मानेंगे और कहेंगे कि 'नज़्म-पद्य-वह है जो मौज़ूँ-छन्द बद्ध-हो और बिलक़स्द-ससंकल्प-लिखी गई हो। इस व्याख्या ने पद्य को गद्य से अवश्य अलग कर दिया परन्तु 'काव्य' को गद्य से तो पृथक नहीं किया, अर्थात् काव्य छन्द से स्वच्छंद विचरण कर सकता है। इस व्याख्या के समर्थक 'काव्य' को 'पद्य' से अलग नहीं समझते और शायद इसी कारण से जनसाधारण भी पद्य ही को काव्य कहता है जिसके मुख्य अंग होते हैं भाव तथा कल्पना।

काव्य चूंकि किसी भाषा में होता है जिसमें शब्द और उनके अर्थ होते हैं इस लिये उनके अच्छे या बुरे होने पर काव्य भी उत्तम, मध्यम या अधम हो सकता है। आचार्यों ने शब्द के अर्थों की भी श्रेणियाँ मानी हैं। जिस अर्थ के लिये शब्द पैदा हुआ था वह उसका वाच्यार्थ-हक़ीक़ी मानी-कहलाता है। इसके अतिरिक्त जब कोई दूसरे अर्थ पैदा होजाते हैं तो उसको 'व्यंग्यार्थ'-मजाज़ी मानी-कहते हैं। इसी व्यंग्यार्थ की प्रधानता पर उत्तम, कम होने पर मध्यम और

रस (कैफ़)

† Rythm & Rhyme.

बिल्कुल न होने पर अधम काव्य कहलाता है। व्यंग्यार्थ कुछ न कुछ तो हर जगह रहता ही है ; परन्तु कवि का लक्ष्य न होने पर वह व्यंग्यार्थ रहित ही माना जायगा। जब वाच्यार्थ में कोई चमत्कार होता है तो उसको अलंकार–सनअत–कहते हैं और जब व्यंग्यार्थ में चमत्कार होता है तो उसे 'ध्वनि' कहते हैं। यह ध्वनि कई प्रकार की होती है जिसमें से एक 'रस' है। कहा जाता है कि 'स्वर' केवल वेदों में है ; परन्तु यहाँ तो संगीत का तुच्छ से तुच्छ पुजारी हमारे कान फाड़ने में सफल हो रहा है। हाँ तो यह स्वर-लहजा-भी 'अर्थ' पर बहुत प्रभाव डालता है। उदाहरण के लिये यदि हम कहें कि 'आप बड़े शरीफ आदमी हैं' तो स्वर या लहजा बदल देने से आपकी शराफत खतरे में पड़ सकती है।

वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के बीच में एक और श्रेणी मानी गई है जिसको लक्ष्यार्थ कहते हैं। जब शब्द के दूसरे अर्थ किसी संकेत से-इस्तेआरा या मजाजमुरसल से-निकल आते हैं तो ऐसे व्यंग्यार्थ को लक्ष्यार्थ कहते हैं जैसे यह वाक्य लीजिये-सिंह आ रहा है। इसमें सिंह का अर्थ ( १ ) एक हिंसक जंगली पशु, वाच्यार्थ है ( २ ) कोई वीर पुरुष, लाक्ष्यार्थ है ( ३ ) और जब केवल एक विशेष पुरुष माना जायगा-जैसे रणजीत सिंह या शिवाजी-तो यह व्यंग्यार्थ होगा। उर्दू में 'वह' और 'कोई' से सदा माशूक़ ही समझा जाता है। अब संक्षेप में यों कह सकते हैं कि शब्दों से वाक्य बनते हैं और इन्हीं से कविता होती है। वाच्यार्थ केवल शब्दों पर निर्भर है परन्तु व्यंग्यार्थ का केवल शब्द द्वारा कथन नहीं किया जासकता। वह तो पूरे वाक्य में रहता है और बुद्धि से लड़ने झगड़ने पर प्रकट होता है। इसी व्यंग्यार्थ में ध्वनि और रस होते हैं। आप क्षमा करें तो दास अपनी एक कविता के उदाहरण से इसको और स्पष्ट करे।

कविता का एक बंद है -

याद उनकी आरही है ?
उनकी मोटर देखते ही साइकिल मैंने सँभाली।
औ, चला इस वेग से क्रमशः पहुँचा कोतवाली॥

बाल फिर से उग रहे हैं खोपड़ी खुजला रही है।
याद उनकी आ रही है।

इसमें वाच्यार्थ को छोड़िये तो 'सँभाला' का लक्ष्यार्थ यह हुआ कि 'साइकिल पर चढ़कर चलदिये' और अर्थ केवल यह हुआ कि "मोटर देखकर मैंने साइकिल चला दी। क्रमसे कोतवाली पहुँच गया। अब बाल फिर निकल रहे हैं और खोपड़ी में खुजली पैदा होरही है" और बस। यहाँ वाक्यों में कोई संबंध भी नहीं दिखाई देता इस कारण आप असंतोष भी प्रकट कर सकते हैं और बिगड़ भी सकते हैं। परन्तु कुछ सोचने पर यदि कुछ अर्थ निकल आये तो वही व्यंग्यार्थ होगा। आप का क्रोध भी शान्त हो जायगा, यदि आप इस प्रकार सोचें :—

(१) उनकी मोटर—कोई विशेष मोटर होगी। हर मोटर के पीछे क्यों दौड़ने लगे? प्रेमिका की मोटर रही होगी।
(२) 'वेग' ने मोटर तक नहीं, कोतवाली पहुँचा दिया।
(३) कोतवाली प्रायः किसी अभियोग ही में जाते हैं।
(४) वेग के कारण अभियोग लगने से विचार पैदा हुआ कि कोई दुर्घटना हो गई होगी। किसी को लेकर धराशायी हो गये होंगे। तेजरफ्तार जो थे, संभलते कैसे?
(५) क्रमशः गये हैं तो पहले लोग इकट्ठा हुये होंगे। कुछ आनन्द रहा होगा। फिर पहुँचे क्या पहुँचाये गये होंगे।
इत्यादि, इत्यादि।

अब इसके पश्चात् कुछ नहीं है। लेकिन 'बाल फिर से उग रहे हैं' का अर्थ यह निकलता है कि इस विचार के साथ

यहां कोतवाली में कुछ ऐसा सद्व्यवहार हुआ कि जिससे उनको अपना घरबार छोड़ना पड़ा था अब फिर शरणार्थी बनकर लौट रहे हैं। "खोपड़ी खुजला रही है" का यह अर्थ हुआ कि अब सब मामला ठंडा है और वैसी ही कोई 'हरकत' करने के लिये जी तिलमिला रहा है। 'उनकी मोटर' और मेरी 'साइकिल' से एक का उच्च श्रेणी का होना और दूसरे का फटीचर तथा बिगड़े दिल होना सिद्ध ही है।

इस व्यंग्यार्थ से जो ध्वनि पैदा हुई उससे किसी किसी के दिल में गुदगुदी भी पैदा हो सकती है और हँसी भी आ सकती है, सबको न सही ; इस कारण यह आनन्द हास्यरस होगा। साहित्यकारों का कहना है कि सत्य को सुन्दर से सुन्दरतर बनाना ही कला है। यदि कला से केवल मिर्च मसाला और पानी ही मिले और आंख नाक बन्द करके डुबकी लगाने पर भी आलू* का पता न लगे तो कोई भी रसहा ऐसी कला प्रशंसनीय नहीं है। ऐसी कला कला नहीं कलाबाजी है।

आचार्यों का मत है कि मानव हृदय में नौ प्रकार के स्थायी भाव—मुस्तक़िल जज़बात—होते हैं अर्थात्—(१) रति (प्रेम) (२) हास (हंसी) (३) शोक (ग़म) (४) क्रोध (गुस्सा) (५) उत्साह (जोश) (६) भय (ख़ौफ़) (७) जुगुप्सा (नफ़रत) (८) विस्मय (ताअज्जुब) और (९) निर्वेद (तर्क दुनिया)। जब कोई मनुष्य सुन्दर काव्य

रस के भेद

---

* यहां कथानक देना है कि—सुनते हैं एक बारात में भोजन परोसते समय एक बाराती ने जनाती साहब को बुलाकर कहा "ज़रा मेरी चुंदिया तो पकड़ लीजिए" जब वह भौचक्के से होकर कारण पूछने लगे तो उन्होंने कहा 'कुछ नहीं कर डुबकी लगाकर आलू ढूंढना चाहता हूँ तरकारी में मिल नहीं रहा है' रस अधिक था जनाब

को पढ़ता, सुनता अथवा अभिनय देखता है तो उस के हृदय में एक विशेष स्फूर्ति और अनिर्वचनीय लोकोत्तर आनन्द–कैफ– उत्पन्न होता है। इसी को रस कहते हैं। नौ स्थायी भावों से नौ रसों की उत्पत्ति होती है। (१) रति से श्रृङ्गार (२) हास से हास्य (३) शोक से करुणा (४) क्रोध से रौद्र (५) उत्साह से वीर (६) भय से भयानक (७) जुगुप्सा से बीभत्स (८) आश्चर्य से अद्भुत (९) और निर्वेद से शान्तरस पैदा होता है।

ऐसे भाव, जो हृदय में दृश्य या घटना को देख या सुनकर उत्पन्न होते हैं और जिनका संचार हृदय में थोड़ी ही देर के लिये और क्षणिक होता है, संचारी भाव कहलाते हैं। ये भी स्थायी भाव को रस की उच्च भूमि तक पहुँचाने में सहायता करते हैं।

प्रेम से सम्बन्ध रखने वाले और काम वृद्धि करने वाले काव्य को श्रृङ्गार रस का काव्य कहते हैं। हिन्दी में नायिका भेद पर इतना लिखा गया है कि जी ऊब गया होगा और उर्दू में गजलें इसका भण्डार हैं। व्रज-भाषा के कवियों ने अपने को प्रायः नायिका भेद की वेदी पर बलिदान कर दिया है। खड़ी बोली के कवि भी पीछे रहना नहीं चाहते। प्रेम के राग क्या अलापूं ? यदि न सुने हों तो किसी सिनेमाहाल में जाकर जीवन सफल कर लीजिये। सुनियेगा कि—

१ श्रृंगार रस इश्क

अंखियाँ मिलाके, जिया भरमा के चले नहीं जाना।

हाय रामा ! या—

"....जिया बेक़रार है। आजा मेरे बालमा तेरा इंतज़ार है"।

इत्यादि

विकृत आकार, वाणी, वेश और चेष्टादि के देखने, सुनने या विचित्र वचनचातुरी (Wit) से हास्यरस उत्पन्न होता है। दूसरे को हँसता हुआ देखकर भी पैदा हो सकता है। वह काव्य जिसमें ऐसे गुण हों कि यह रस पैदा करे हास्यरस का काव्य कहलायेगा। जैसे—

२हास्य रस (मज़ाह)

१ (उर्दू) गो अक्ल के कन्ने से कटे बैठे हैं।
बुद्धू हैं, खुराफ़ात रटे बैठे हैं॥
उम्मीद भी लेकिन है अजब चीज जनाब।
देखो तो इम्तिहां में डटे बैठे हैं॥

इसमें 'सर्वगुणसम्पन्न' होने पर भी परीक्षाहाल में 'डटे बैठे हैं' से कुछ मुस्कराहट आ सकती है। आशा का अत्याचार तो देखिये।

२ (हिन्दी) चेचक वाला सुन्दर चेहरा देखिये।
वह चन्द्रवदन स्नेह से सनकर निकला।
या सूर्य जिरह कवच पहन कर निकला॥
चेचक चिह्नित चेहरे पै जाऊँ बलिहार।
जिस छलनी से सौन्दर्य भी छन कर निकला॥

इस सौन्दर्य्य से प्रभावित होकर मन्द मुस्कान होठों पर खेल सकती है। इस वर्णन से कुछ हँसी आ सकतीहै, प्रियवर।

किसी प्रकार की चोट, आघात, अनिष्ट अथवा विनाश से करुण रस पैदा होता है। दर्दनाक दृश्य, दुख भरी कहानी या परेशानी से यह रस उत्पन्न होता है। जैसे

३ करुणरस (दर्द)

[१] महात्मा गोखले की मृत्यु पर चकबस्त ने लिखा—
"... तेरे अलम में वह इस तरह जान खोते हैं।
कि जैसे बाप से छुटकर यतीम रोते हैं"

अथवा

थमते थमते थमेंगे आंसू।
रोना है यह हँसी नहीं है॥ [अज्ञात]

७] हिन्दी—सुदामा की दीन दशा का वर्णन है :—

ऐसे बेहाल बेवाइन सें, पग कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महादुख पायो सखा तुम आये इतै न किते दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दशा करुना करिके करुनानिधि रोये।
पानी परात को हाथ लियो नहि नैनन के जल से पग धोये॥
[नरोत्तम]

रौद्र अपमान, अपकार, निन्दा, मानभङ्ग आदि से यह रस (गुस्सा) पैदा होता है। जैसे—

१] उर्दू—बकावली बांदियों पर बिगड़ रही है कि—

नर्गिस तु दिखा किधर गया गुल ?
सौसन तु बता किधर गया गुल ?
सुंबुल मेरा ताजियाना लाना।
शमशाद इन्हें सूली पर चढ़ाना॥ [नसीम]

२] हिन्दी—माखे लषन कुटिल भईं भौंहें।
रदपुट फरकत नयन रिसौंहें॥ और बोले—
तोरउँ छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जो न करउँ प्रभु पद सपथ, कर न धरउँ धनु भाथ॥
[रामायण

वीररस अत्यन्त उत्साह से वीररस का प्रादुर्भाव होता है। यह (बहादुरी) दान, युद्ध और दया की वीरता का वर्णन होता है
जैसे

नज़र लगे न कहीं उनके दस्तो बाज़ू को।
ये लोग क्यों मेरे ज़ख्मे जिगर को देखते हैं ?॥
[ग़ालि

बादशाह के दान की प्रशंसा है-कि—
†ज़मीं हो सब्ज़ जो तेरेसहावे बख़्शिशसे।
तो बूंटी बूंटी से हर ख़ाक की बने अक्सीर॥
[ज़ौक़

क़सीदा और मरसिया इस से भरे पड़े हैं।

हिन्दी। राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राख्यो वेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती, राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो, राख्यो गुन गुनी मैं॥
भूषन सुकवि जीति हद मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तब सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दावि के दिवाल राखी दुनी मैं॥
[भूषन

यहां शिवाजी की वीरता का वर्णन है

यानक रस किसी भयंकर और डरावनी वस्तु या दृश्य देख
(ख़ाफ़) या किसी अपराध करने पर यह रस पैदा हो
है। जैसे—

उर्दू। समरभूमि का दृश्य है कि—
अल्ला रे ज़लज़ला कि लरज़ते थे दस्तोदर।
जंगल में छुपते फिरते थे डर डर के जानवर॥
जिन्नात कांप कांप के कहते थे 'अलहज़र'।

† तेरे दान के बादल जिस भूमि को हरा करें वहां पर मिट्टी
हर बूटी से बने—सोना पैदा हो॥

दुनियाँ में ख़ाक उड़ती है अब जाँय हम किधर ॥
अँधेर है उठी बरकत अब जहान से ।
लो मिलगया ज़मीं का तबक़ आसमान से ॥

हिन्दी । [अनीस]

भरि भुवन घोर कठोर रव, रवि बाज तजि मारग चले
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल विकल विचारहीं ।
कोदण्ड खण्डेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ॥

[रामायण]

यह धनुष टूटने के समय का वर्णन है ।

बीभत्स (ग्लानि) घृणित वस्तु, †रुधिर, आँत आदि के देखने से जो ग्लानि होती है उसी से यह रस उत्पन्न होता है ।

जैसे:—

उर्दू । देवनी का रूप वर्णन—
ज़ंबूरे सियाह ख़ाल उसके ।
बरगद की जटायें बाल उसके ॥

[नसीम]

हिन्दी । इसके उदाहरण अलग देना नहीं चाहता हूँ । उर्दू के कवि माशूक के हाथों में खून लगाकर प्रसन्न होते हैं और उसका सौन्दर्य बढ़ाते हैं इस कारण वहां खून का दृश्य बीभत्स नहीं मानते । चिरकीन को उर्दू और हिन्दी वाले सब जानतेहैं । वे कहते हैं:—

क़ब्ज़ करता है निकलता क्यों नहीं ।
क्या मैं हौव्वा हूँ तुझे खाजाऊँगा ॥

† उर्दू में 'खून बहाना' चूंकि माशूक का काम है इसलिए श्रृंगार में है।

इस को जरा पढ़कर सोचिये तो। यह मैंने बहुत (उनका) गचित्र शेर लिखा है फिरभी वह दृश्य तो सामने आ ही जाता है। जिसको सम्बोधित कर रहे हैं उसका नाम आप जानते ही हैं, मैं लिखकर क्या करता ? यह है वीभत्स ।।

: अद्भुतरस आश्चर्यजनक और विचित्र चीजों के देखने या (हैरत) सुनने से अद्भुतरस पैदा होता है। जैसेः—

उर्दू। वो आयें घर में हमारे खुदा की कुदरत है।
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं।।
[गालिब]

ये किस रश्के मसीहा का मकाँ है।
जमीं याँ की चहारुम आस्माँ है।। [आलश]

हिन्दी। दृष्टि चकचौंध गई देखत सुवर्नमयी,
एक ते सरस एक द्वारिका के भौन हैं।
पूछे बिन कोऊ काहू से न करे बात जहाँ,
देवता से बैठे सब साधि साधि मौन हैं।।
देखत सुदामा धाय पुरजन गहे पाय
'कृपा करि कहो कहां कीने विप्र गौन है।'
'धीरज अधीर के हरन पर पीर के बताओ'
बलवीर के महल यहां कौन हैं।।
[नरोत्तम]

यहां सुदामा की चकराई हुई दशा का वर्णन है।

शान्तरस यह रस तत्वज्ञान, वैराग्य और ईश्वर प्रेम से पैदा (मार्‌िफत) होता है जैसे :—

—उर्दू। जिन्दगी इक हुबाब की सी है।
यह नुमायश सराब कीसी है।। [मीर] या

जब कैफ़ियतें नज़ा में लेटे होंगे। दुनिया से हाथ पांव समेटे होंगे।
तब मौत के चंगुल से बचाने वाले ए अकबर न माँ बाप न बेटे होंगे॥

संसार असार है, ईश्वर ही सत्य है। उसकी याद करो, यह कहा है।

२—हिन्दी। अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहों निर्वान।
जन्म जन्म रति रामपद यहि करदान न आन॥
[तुलसीदासजी]

इसमें केवल ईश्वर भक्ति चाहते हैं।

स्थायी भावों के अतिरिक्त संचारी भाव (वक्ती जज़बात) होते हैं जिन पर भी कविताएँ लिखी जाती हैं। इनकी संख्या बहुत है। इनके लिखने की आवश्यकता भी नहीं।

## रस दोष

रसों का वर्णन करने का यह अर्थ नहीं है कि अब उनके दोष भी लिखे जायं। उर्दू काव्य की नींव चूंकि फ़ारसी और अरबी काव्यों पर रखी गई इस कारण उर्दू में रसों का वर्णन क्या कोई पर्यायवाची शब्द भी नहीं है। फिर रसों के गुण या दोषों का वर्णन कहाँ से होता? परन्तु काव्य हृदय की चीज है इसलिये भाव से सम्बन्ध रखने वाले दोष सभी भाषाओं में समानरूप से विद्यमान होंगे, चाहे उनका वर्णन हो या न हो। सस्कृत साहित्य के आचार्यों ने इस ओर अधिक ध्यान दिया है और दोषों का वर्णन किया है, इसलिये हिन्दी में भी कवियों को चेतावनी देने की आवश्यकता रही। किसी भाषा में 'भाव' के दोष हों और वे दूसरी भाषा में गुण बन जाँय ऐसा भी तो सम्भव नहीं है। इस कारण इसका कुछ उल्लेख कर देना यहाँ अनुचित न होगा। कुछ रस दोष ये हैं—

१ किसी कविता—या शेर—में यदि ऐसे शब्द आ जाते हैं जो 'रस' या 'भाव' के वाचक शब्द होते हैं ( उनका अर्थ देते हैं ) तो ऐसी कविता सदोष मानी जाती है; क्योंकि जब रस का नाम

लेकर अर्थ जानने की कोशिश हुई तो फिर वह कविता ही क्या रही? 'रस' तो कविता के समझने पर स्वयं ही पैदा होता है। उसके कहने और वर्णन करने की आवश्यकता ही कहां है? इस प्रकार की सिफारिश तो बेकार ही है। फिर रस–मस्ती–तो दिल की दशा है जो केवल कह देने से तो नहीं पैदा होगी। वह तो समझने पर रोकने से भी नहीं रुकेगी इसलिये उसका नाम लेना व्यर्थ है। जैसे:—

उर्दू। गये सौ दिल पास होते इश्क में।
कुछ न रखते सबको खो बे इश्क में॥ [अज्ञात]

इसमें जब दिल खोना ही है तो इश्क (रति) का शब्द निरर्थक है। इससे भाव में कमी आ जाती है। क्या दिल इश्क के अलावा भी खोया जाता है? या जैसे:—

अब आओ ज़रा हँस लें हम शैख़ो बरहमन पर।
चुटिया में बंधी दाढ़ी है और कशाकश है॥

इसमें यदि दूसरे मिसरे की दशा पर हंसी न पैदा हुई तो आपकी हँसने की दावत ही क्या कर लेगी? क्या आपके कहने से हम हँसेंगे। ये शब्द हंसी वाले भी भरती के ही हैं और व्यर्थ हैं

हिन्दी। काके उर उपजत न रस, मृगनयनी को चाहि।
विधु मुख–छवि श्रृंगार में, मगन करत नहिं काहि॥
[रसकलस]

इसमें 'रस' और 'श्रृंगार' के शब्दों से दोष आ गया है। इसको यों कह सकते थे।

'काको उर सरसत नहीं' मृगनयनी को चाहि।
विधुमुख–छवि आनन्द में, मगन करत नहि काहि॥

जिससे दोनों शब्द बदल गये। या

नई संचरित रति हिये कुचि कलित बनी निहाल।
नव बाल के ये उरोज युग बाल॥

इसमें भी 'रति' स्थायी भाव और 'लज्जा' संचारी भाव आ गये हैं। और यह दोष है।

२ कविता में एकही स्थान पर विरोधी रसों का वर्णन भी दोष है। बात यह है कि किसी रस का पूर्ण आनंद उसी समय होगा जब वह अकेला होगा।

'एक से जब दो हुये तो लुत्फ़े एकताई नहीं'; फिर यदि विरोधी रस आगये तो दोनों का मजा किरकिरा हो गया। दोनों कमज़ोर हो जायेंगे और कवि का उद्देश्य ही असफल हो जायगा। जैसे

उर्दू। फुटबाल समझते हो जिसे तोंद है उसकी।
मर जायगा तो खेल बिगड़ जायगा सारा॥

इसमें पहले मिसरे की हंसी दूसरे मिसरे में आकर दब जाती है। मरने वाली बात न आती तो अच्छा था, क्यं कि अब इससे करुण रस उत्पन्न होता है और हंसी को सहसा एक धक्का सा लगता है। हां यदि हंसी का उद्देश्य ही न हो तो दूसरी बात है। इसको यों कहते तो अच्छा होता कि—

फुटबाल समझते हो जिसे तोंद है उसकी।
ठोकर से उचकती है कहीं टांग न ले यार॥

यहां हंसी क़ायम रहती है और 'टांग लेना' अपने श्लेष होने का आनन्द भी देता है वह अलग।

हिन्दी। मान करत कित कामिनी है यौवन दिन चार।

में शृंगार के साथ साथ जैसे धमकी भी दे रहे हैं कि 'आख़िर कब तक?' अर्थात जीवन तुच्छ है। और जब 'शांत-रस' आ गया तो शृंगार पर पानी पड़ गया। साधू होकर शृंगार का रस भी लीजिये साथ साथ, यह दूसरी बात है।

३ जब कविता में 'विभाव' और 'अनुभाव' स्पष्टरूप से समझ में नहीं आते तो रस का आनन्द जाता रहता है। यदि

उनका निश्चय होना ही दुस्तर है तो फिर अर्थ ही क्या समझेंगे ? और आनन्द क्या आयेगा खाक ? जैसे:—

उर्दू । सर उनका हुआ है चिकना है रोग़न है चमेली का इस पर ।
होंठों पर अब कंट्रोल नहीं तो हाथ बिचारा मुजरिम है ॥

इसमें पहिले तो यही नहीं मालूम होता कि सिर, होंठ और हाथ एक ही मनुष्य के हैं अथवा सर एक का और होंठ और हाथ दूसरे के । इसको स्पष्ट करना चाहिये था । फिर यह कि सिर के सौन्दर्य में जो आकर्षण था उसी के प्रभाव से होंठों और हाथों की दशाओं में सहसा परिवर्तन हो गया और कोई घटना घटित हो गई यह भी स्पष्ट नहीं । यहाँ 'सर का चमत्कार' विभाव, और होंठों में हँसी का आना और हाथ का गुस्ताख़ हो जाना अनुभाव है । इनका सम्बन्ध प्रकट नहीं है, यद्यपि मसख़रों की समझ को क्या कीजियेगा वे कोई सम्बन्ध न होते हुए भी अर्थ ढूंढ ही लेते हैं ।

हिन्दी । चिंता की चेरी बनी बारि बिमोचत नैन ।
बहा करौं बिचलित बने चूर भयो चित चैन ॥ (रसकलस)

यहाँ यह स्पष्ट नहीं कि यह एक विरहिणी की दशा है अथवा किसी दुखियारी तप्तहृदया रमणी की । यदि विरहिणी है तो यह शृंगार रस है, नहीं तो करुण रस । और इस प्रकार यह शृंगार रस है अथवा करुण, निश्चयरूप से नहीं कहा जा सकता । उर्दू में तो हर प्रकार का अनादर, अपमान या ज़ुल्म माशूक़ की ओर से मानकर समझ लेते हैं कि 'आदम भी हुए ख़ुल्द की तामीर से बाहर' शृंगार रस है; परन्तु हिन्दी में रस अलग अलग हैं इस कारण भेद तो करना ही पड़ेगा प्रियवर !

४ प्रकृति के विरुद्ध वर्णन भी खटकने लगता है और यह बहुत बड़ा दोष है । प्रबंधकाव्य में विशेषकर इससे बचना चाहिये । किसी दोहे—या शेर—में सम्भव है दूसरा अर्थ लगाकर

किसी रस को 'हास्यरस' मान लिया जाय परन्तु प्रबंधकाव्य में यह सम्भव नहीं। चरित्र चित्रण में यह बड़ा दोष माना जायगा जैसे:—

उर्दू। नसीम ने 'गुलज़ारे नसीम' में ताजुलमलूक के चार भाइयों के सम्बन्ध में लिखा कि:—

ख़ालिक़ ने दिये थे चार फ़रज़न्द।
दाना, आक़िल, ज़की, खिरदमंद॥

अर्थात चारों पुत्र उच्चकोटिके बुद्धिमान थे; परन्तु उन्होंने बुद्धिमानी की एक बात भी न की। आदि से अन्त तक वे मूर्खता के पुतले बने रहे। या जैसे:—

हिन्दी। भैंस बजावहि बीन, तानसेन पगुर करै।
पंडित विद्या हीन, करिया अक्षर भैंस सम॥

में तानसेन और भैंस का सम्बन्ध कुछ समझ में नहीं आता। और न निरक्षर मनुष्य को पण्डित ही कह सकते हैं। यह सोरठा कबीरदासजी की उलटबाँसियों की भाँति हो सकता है। या हँसी की सामग्री बन सकता है, क्योंकि यहाँ उल्टी गंगा बह रही है; परन्तु इस प्रकार का वर्णन प्रकृति के विरुद्ध तो है ही। इसको अद्भुत रस में भी नहीं ले जा सकते।

इसी तरह से देवी देवताओं का साधारण स्त्री पुरुष की भाँति वर्णन और ईश्वर का माता पिता की तरह वर्णन दोषयुक्त होगा। ईश्वर माँ या बाप है अवश्य; परन्तु माँ और बाप के साधारण सम्बन्ध से उसका सम्बन्ध अधिक पवित्र, ऊँचा और सूक्ष्म है। वह माँ बाप होते हुये भी न माँ है न बाप। दिव्य अदिव्य का अन्तर तो रखना ही पड़ेगा और इसलिये वैसाही चित्रण भी होना चाहिये। इसी प्रकार वीर पुरुषों का कायर की भाँति वर्णन या साधारण मनुष्य का देवताओं की तरह वर्णन— उमसे कार्य और उसके में अलौ

किक बातें लिखना-भी ठीक नहीं। इसको पढ़कर, सुनकर, या पर्दे पर देखकर आदमी फौरन कह देता है कि "यह तो प्रकृति-विरुद्ध—unnatural—है, स्वाभाविक कदापि नहीं।" जिससे कहानी झूठी प्रतीत होती है और लेखक या नाटककार का प्रयास निष्फल हो जाता है। ऐसी अनुचित बातों का वर्णन रस को भंग कर देता है और रस को सिरके में बदल देता है। स्वर्ग में बुढ़ापे के कष्ट, जाड़े में बर्फ की कुल्फियों का आनन्द, गर्मी में आग तापने की आवश्यकता, या इसी प्रकार और अनुचित, बेढंगी और प्रकृति विरुद्ध बातों का वर्णन रस को बिगाड़ देता है। और यह बड़ा दोष है। मीरहसन ने अपनी मसनवी सेहरुलबयाँ में 'धान और सरसों' को एक ही मैदान में 'लहलहा दिया'। शहर के रहने वाले देहात की बातों को लिखते समय हाथ सँभाले और कान खड़े रखें तभी काम चलेगा वरना सब चौपट हो जायगा।

५ उपरोक्त दोषों के अतिरिक्त कुछ ऐसे दोष भी हैं जिनका सम्बन्ध शब्दों के प्रयोग, उनके अर्थ तथा व्याकरण आदि से है। इनकी संख्या बहुत है और इसलिए इनका वर्णन यहाँ नहीं हो सकेगा। अलंकार दोष भी इन्हीं के अन्तर्गत हैं। शब्द अशुद्ध न हों, अश्लील न हों और उनसे घृणित अर्थ न निकलते हों यह प्रत्येक कवि चाहता है। उसका ध्यान माधुर्य ओज तथा प्रसाद जैसे गुणों को उत्पन्न करने की ओर रहता है। यदि कोई गुण न आ सका तो उसमें उसके प्रयत्न या परिश्रम का दोष नहीं बल्कि यह कमी तो बहुत गहराई में मिलेगी जहाँ से आजीवन वह हटने वाली भी नहीं। इसलिये यदि भूल से या अनजान से ऐसा कोई दोष आ जाय तो वह कवि का दोष न सही कविता का तो है ही, और उससे बचना ही हितकर है। इन दोषों से आनन्द प्राप्त करने में बाधा पड़ती है और इसलिये

यह सब रस दोष ही कहलायेंगे। हाँ, जहाँ रस उत्पन्न ही न होता हो वहाँ दोष देखना भी भूल है। जैसेः—

एकहत्तर बहत्तर तिहत्तर चौहत्तर।
पचहत्तर छिहत्तर सतहत्तर अठहत्तर॥

में कौन रस पैदा हुआ और क्या अर्थ हुआ हम और आप नहीं समझ सकते यद्यपि शेर बहुत साफ है। इसलिये यदि कोई दोष हो, रस, अलंकार या व्याकरण के विचार से, तो रहने दीजिये। कुछ दिनों में सड़कर स्वयं ठीक हो जायगा।

खैर, तो मैं शब्द और अर्थ के दोषों को छोड़कर उस दोष का वर्णन अवश्य करूँगा जो कभी कभी उपमाओं के लिखने में आ जाता है या आ सकता है। किसी चीज की उपमा किसी दूसरी चीज से दे सकते हैं परन्तु इसका यह अर्थ थोड़ा ही है कि उचित अनुचित और शुद्ध अशुद्ध का विचार न रखा जाय। उपमायें भी गलत बेतुकी और बेढंगी हो सकती हैं और यदि वे साधारण और प्रचलित बातों की उपमायें हैं तो यह दोष और भी स्पष्ट और भयंकर हो जाता है।

कभी कभी उपमान में ऐसे गुण मान लिए जाते हैं जो या तो उसमें हैं ही नहीं, या हैं तो; परन्तु प्रसिद्ध नहीं हैं, तो यह दोष आ जाता है। जैसे—

सरो सा सर है आँख पहिया है।
पेट दरिया है और रुख कटहल॥

इसमें सिरकीउपमा सरो से, आँख की पहियासे उचित नहीं। आँख की गोलाई से पहिया का रूपक चाहे ठीक भी हो जाय परन्तु सिर की सरो से उपमा कभी ठीक नहीं हो सकती। इसी तरह पेट को दरिया, यदि समुद्र का अर्थ लें, तो कदाचित कह सकते हैं। इसको यों कह सकते हैं कि:—

नर है कद्दू तो आँख उल्लू है।
पेट है नाँद और मुख कटहल॥

अब कुछ ठीक है। नाँद अगर छोटी चीज़ है तो हौज कह दीजिए कोई हर्ज नहीं। छन्द भंग का भय भी नहीं। इस प्रकार गोल (सुन्दर) आँख और मुहाँसेदार (नुकीले) चेहरे का कुछ ज्ञान हो जाता है।

कवि को यह भी देखना चाहिए कि उपमा उचित भी है या नहीं जैसे

छछूंदर शीश पर रोटी धरे ससुराल जाती है।
पवनसुत जिस तरह आए थे धवलागिरि लिए काँधे॥

में छछूंदर की श्रीहनुमानजी से उपमा देना उचित नहीं श्रीबजरंगबली क्षमा करें।

६ कुछ दोष ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध प्रबन्ध काव्य, नाटक, कथाओं तथा गाथाओं से है। उनमें से कुछ ये हैं।

जब किसी वीर पुरुष या रमणी की कथा लिखी जाती है तो उचित यही है कि उसके गुणों का पूर्णरूप से वर्णन हो। उसके सौन्दर्य, उसकी वीरता, उसके पराक्रम, उसकी सज्जनता अर्थात उसके सभी सद्गुणों का भलीभांति रोचक वर्णन हो और यह इस प्रकार हो कि किसी दूसरे व्यक्ति के गुण उससे बढ़ने न पायें। यदि इसके विरुद्ध दूसरों की बड़ाई लिखी जाती है और प्रधानपुरुष को भुला दिया जाता है तो यह बड़ा दोष है; क्योंकि इस प्रकार प्रधान पुरुष के गुणों का प्रभाव हम पर नहीं पड़ता और वह प्रधान पुरुष उसी भीड़ में गुम हो जाता है। जैसे रामायण में यदि गोस्वामीजी भालू और बन्दरों की सेना और उनकी वीरता का अधिक वर्णन करते और श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी के पराक्रम तथा उनकी अलौकिक और अद्भुत वीरता का वर्णन न करते तो यह दोष : त

इसी प्रकार एक दोष यह भी है कि अनावश्यक बातों का वर्णन हो जिनसे कोई विशेष लाभ नहीं। जिन बातों या जिन वस्तुओं की आवश्यकता ही नहीं पड़ती या जिनका वहाँ कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता उनका वर्णन व्यर्थ ही है, और इसलिये दोष है; क्योंकि ध्यान दूसरी ओर बँट जाता है। इसके उदाहरण आज कल कहानी लेखकों तथा एकांकी नाटक लिखने वालों के यहाँ बहुत मिलेंगे। इस दोष को सफल बनाने का सेहरा इन्ही के सिर है। आपको इस प्रकार का वर्णन बहुत मिल जायगा:—

लाल कोठी का एक चौबीस फीट लम्बा १६।। फीट चौड़ा बड़ा कमरा है। दीवारों पर आठ तस्वीरें लगी हैं। बीच में एक मेज बिछी है जिसपर हरा मेजपोश पड़ा हुआ है। बगल में तीन ऊँची ऊँची कुर्सियाँ रखी हैं। घड़ी की सुई चलते चलते रुक गई है। पौने चार गज पर एक सुफेद बिल्ली बैठी हुई जमाही ले रही है। बाहर मैदान में तीन गधे चर रहे हैं जिनमें दो सफेद हैं और एक काला। शेरबहादुर गाता, गुनगुनाता हुआ आता है और टाँग फैलाकर बीच की कुर्सी पर बैठ जाता है ... इत्यादि। यदि इस वर्णन की आवश्यकता है तो मजबूरी है वरना भाई बिचारे कागज का मुँह काला करने से क्या लाभ?

७ ऐसा भी होता है कि प्रसंग में किसी स्थान पर विशेष रस का वर्णन आ जाता है। वहाँ पर उसका पूर्णरूप से सविस्तार वर्णन उचित है। जो रस जहाँ उचित है वहीं पैदा होता है और इसलिये उसका वहाँ वर्णन आवश्यक है। परन्तु उसके अतिरिक्त दूसरे रस का वर्णन वहाँ न तो अच्छा ही लगेगा न ठीक ही होगा। जैसे समरभूमि में वीररस का और नायक और नायिका के एकान्त स्थान में मिलने पर शृंगार रस का वर्णन उचित मालूम होता है। इसके विरुद्ध यदि रणभूमि में प्रेम

[illegible] या नायक नायिका के इकट्ठा होने के समय शांत रस-भयानक न सही—का वर्णन हो तो या तो गुस्सा आयेगा या हँसी आयेगी। यदि वीर रस और शृङ्गार को मिला भी दें और युद्धभूमि में वीरता के साथ साथ शृङ्गार का वर्णन करदें तो भी दोष आ जायगा क्योंकि वीर रस पैदा होते ही बिचारा मर जायगा और शृङ्गार उसकी जगह ले लेगा और इस लिये न केवल असामयिक होगा बल्कि कोई भी रस पैदा न होगा। दोनों अधूरे रह जायेंगे। यदि उपयुक्त रस का भली भाँति वर्णन न कर के उद्गारों और उमंगों को सींचा न गया तो फिर बाद को "का वर्षा जब कृषी सुखाने"। अनुचित स्थान पर पानी उलीचने से क्या लाभ? कि लोग कहें :—

मूसर चन्द ये मूसरधार बराबर ऊसर पर बरसावें। (पूर्ण)

इस लिये रस का अपने उपयुक्त स्थान पर ही वर्णन होना चाहिये और उस के साथ किसी दूसरे रस का अधिक अनावश्यक मिश्रण भी नहीं होना चाहिये।

८ किसी रस का वर्णन करने के पश्चात जब स्वभावतः दूसरे रस में चले जाते हैं तो फिर उसी दूसरे रस का वर्णन होना चाहिये। फिर पलट कर जब उसी पहिले रस का वर्णन करने लगते हैं तो उसमें उत्तेजना पैदा होती है; परन्तु बार बार पलट पलट कर किसी एक रस को उकसाना, उत्तेजित करना अच्छा नहीं है, चाहे वह शृङ्गार रस हो अथवा करुण रस। जैसे पहिले करुण रस का वर्णन हो फिर बहादुरी का—जिससे उनका सम्बन्ध हो—वर्णन हो, तो फिर करुणरस में लौटने पर करुणा की मात्रा बढ़ जायगी; परन्तु बार बार यही किया जाय तो न केवल रस भङ्ग होने का भय है, वरन् काया भङ्ग होने का भी। उर्दू के मर्सिया लेखकों में कहीं कहीं यह दोष आ गया है

पहिले दुःख और संकट के वर्णन हैं जिनसे करुण रस पैदा होता है फिर उनकी वीरता का उल्लेख है फिर उनकी असहाय दशा का वर्णन है जिमसे करुण रस और भी बढ़ जाता है परन्तु बार बार करुण और वीर रस का वर्णन करके खिचड़ी पकाना उचित नहीं। ऐसा ज्ञात होता है जैसे पहाड़पर ले जाकर फिर जमीन पर पटक दिया हो और यह स्वभाविक भी नहीं। रबड़ को इतना न खींचिये कि टूट जाय। यों भी बात चीत में यदि कोई ऐसा करता है तो बनावट मालूम होती है। बाज स्त्रियों को आपने देखा होगा कि अभी रो रही हैं, कुछ बातचीत करते करते सँभल गईं और हँसने भी लगीं मगर फिर दूसरे आदमी या किसी सम्बन्धी को देख कर फ़ौरन दहाड़ मार कर रोने लगीं और,यह क्रम उनका चलता रहता है। यह आचरण कहाँ तक स्वाभाविक और प्रकृति अनुकूल है वही बतासकती हैं। तात्पर्य यह है कि किसी रस को इस प्रकार उत्तेजना देना और दूसरे रसों के साथ गंडेदार वर्णन करना उचित नहीं है। इसको लोग दोष मानते हैं।

इस प्रकार के और भी दोष हो सकते हैं जिनका वर्णन किसी ने नहीं किया इस लिये मैं ही क्यों लिखूँ। मैं तो जानता भी नहीं।



# चौथा फाटक

## हास्य रस

-:※:※:※:-

हमारे साहित्य के पुराने आचार्यों ने बड़ी आफ़त मचा रखी है। वे कहते हैं कि नौ स्थायी भाव मन में किसी न किसी रूप में रहते अवश्य हैं परन्तु उनके पैदा करने के कारण होने चाहिए। जिन कारणों से ये स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं उनका नाम विभाव रखा गया है। जैसे रति स्थायी भाव है तो उसको पैदा करने के लिए नायक, नायिका, एकान्त, सुन्दर वेष, शीतल समीर, चाँदनी रात, दरिया का किनारा इत्यादि हो सकते हैं। वे विभाव या कारण जिनके मिलने से स्थायी भाव पैदा हो आलम्बन कहलाते हैं जैसे रति स्थायी भाव के लिए नायक और नायिका आलम्बन हैं। और जिनसे केवल उत्तेजना और 'इश्तेआल' हो उनको उद्दीपन विभाव कहते हैं जैसे शीतल वायु और चन्द्रोदय इत्यादि।

इन विभावों के पश्चात् उत्पन्न होने वाले भावों को अनुभाव कहते हैं। जैसे विभावों द्वारा जब रति का स्थायी भाव पैदा हुआ तो वह प्रकट किया जायगा किसी न किसी प्रकार, जिनकी संख्या लिखना कठिन है। अर्थात कटाक्ष द्वारा, संकेतों द्वारा, लज्जा द्वारा अथवा और किसी ढंग से। इनके अतिरिक्त जो भाव किसी क्षण या किसी विशेष अवस्था में प्रकट होकर जल्द ही नष्ट हो जाते हैं और क्षणिक हैं 'संचारीभाव' कहलाते हैं। ये संचारीभाव भी स्थायी भाव की सहायता करते रहते हैं

और सब रसों में संचार करते हैं जैसे चिंता, सुस्ती इत्यादि। इन बातों को मैं 'हास्यरस' के उदाहरण देकर फिर लिखता हूँ।

प्रत्येक मनुष्य के हृदय में ( यदि वह मोहर्रम में न पैदा हुआ हो ) हास का स्थायी भाव मौजूद रहता है। अब यदि कोई आदमी ( या औरत ) ऐसा मिल जाय, दिखाई पड़े या सुनाई पड़े जिसके विकृत आकार, वेष, भूषा या जिसकी निर्लज्जता अथवा रहस्यगर्भित वाक्य से हँसी पैदा हो तो ये सब बातें आलम्बन होंगी और उसकी चेष्टाओं से उद्दीपन होगा। ये आलम्बन और उद्दीपन विभाव कहलायेंगे। अब हास्य का स्थायी भाव उत्पन्न हुआ तो वह कैसे प्रकट होगा ? हँसी होगी, मुँह बनेगा, नाक सिकुड़ेगी, तोंद नीचे ऊपर कूदेगी, होंठ खुल जायेंगे और शायद आँसू भी निकल आयेंगे। ये तमाम 'शरीकाना, हरकतें' अनुभाव कहलाएँगी। इन शरीकाना हरकतों की भी श्रेणियाँ हो सकती हैं। इसलिए जब हँसी चेहरे से मालूम हो, होंठ तक न खुलने पाएँ और आंतरिक आनन्द रहे तो उत्तम हास्य होगा, फिर जब कुछ होंठ खुल जायँ, आवाज भी निकले, नाक सिमटे और होंठ फैले, चेहरे का रङ्ग भी बदले तो मध्यम हास्य होगा और जब मुँह चिर जाय, आँखों से आँसू निकलने लगें, थूक उड़ने लगे, तोंद महराज डण्ड बैठक करने लगें या आदमी ज़मीन पर लोटने लगे तो यह अधम हास्य होगा[*]। तात्पर्य यह है कि हास्य में जितना ही भद्दापन होता जायगा उतना ही वह नीचे गिरता जायगा। यह सब काव्य मर्मज्ञों और साहित्याचार्यों का मत है मेरा नहीं। मैं तो केवल कुछ निवेदन करूँगा, वह सुनिये कृपानिधानः—

मानव हृदय में हास्य का स्थायी भाव उसी प्रकार विद्य-

* हास्य के भेद मुख्यतः ये हैं:—१–स्मित २–हसित ३–विहसित ४–अतिहसित संचालन ५–अपहसित ६ परिहसित

मान है जिस प्रकार प्रेम (रति) का और जिस तरह हम यह नहीं कहते कि "आइए जरा इस समय प्रेम पैदा कर लें" उसी तरह यह भी नहीं कहते कि, "आइए जरा इस समय हास्य पैदा कर लें" ये तो स्थिति या वातावरण के अनुसार स्वयं हृदय हास्य में पैदा हो जाते हैं। सफल विभाव भी स्थायी भाव उत्पन्न कर सकता है चाहे वह रति का भाव हो अथवा हास्य का। हाँ इसमें सन्देह नहीं कि हास्य के मुकाबले रति (इश्क) में स्थिरता अधिक है और शायद इसी कारण शृंगार रस को सब रसों का राजा माना है। इसने बड़े बड़े लँगोटे बाजों, नंगों, मस्मुक्खों को भी खिन्न कर दिया जब उनके पीछे लँगोटी बाँधकर पड़ गया। इसलिए बड़ा जालिम, सबको एक ही लाठी से हाँकने वाला; मगर फिर भी सबसे अधिक सुखद है। यह शृंगार रस भी बँधा हुआ है रूप और सौन्दर्य से इसी का शिकार है। इसी तरह हास्य रस भी कहीं न कहीं किसी से बंधा हुआ है अवश्य।

बात यह है कि ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि तो दे दी मगर उसकी कोई माप नहीं रक्खी। उल्टी, सीधी जिसको जितनी चाही दे दी, स्वतन्त्र जो ठहरे; परन्तु एक मजाक उन्होंने यह किया कि इस माप में चाहे जो अन्तर होता गया हो उन्होंने मनुष्य पर अपनी गलती प्रकट नहीं होने दी और ऐसा कुछ समझा दिया कि प्रत्येक मानव अपने को दूसरे से अधिक बुद्धि-मान ही समझने लगा। इसलिए इसकी बुद्धि के आगे जब किसी दूसरे की बुद्धि की गाड़ी सीधी पटरी से कुछ उतर कर आनन्द से किनारे लेटी रहती है और उसे अपनी इस अवस्था का ज्ञान भी नहीं हो पाता, तो इस मानव को एक प्रकार का हर्ष होता है। वह अपने को जैसे कुछ समझने लगता है और मोह वश हँस देता है। उसका मन उस समय अपनी आन्तरिक क्रूरता को जान भी नहीं पाता और यह काम जल्दी से कर

डालता है। यह है एक साधारण नियम। इस प्रकार जब किसी समाज, राष्ट्र, धर्म, चरित्र, कर्म, विचार इत्यादि के प्रचलित और माने हुए नियमों के विरुद्ध कोई बात देखने, सुनने, पढ़ने या सोचने में आती है तो सहसा हँसी आ जाती है†। ईश्वर ने मनुष्य को यह 'स्थायीभाव' जबरदस्ती दिया होगा ऐसा मेरा अनुमान है, क्योंकि यह दुनियाँ हर समय सबको परेशान ही करती रहती है तो जरा देर हँस खेल कर सूखी, मुरझाई कली को ठंडी हवा का एक झोंका मिल जाय अच्छा ही है। संत और महात्मा लोग बहुधा उन बातों पर नहीं हँसते जिन पर हम सब हँसने लगते हैं; बल्कि उनके लिये वे लोग जिनको आप 'बना-कर' प्रसन्न होते हैं दया के पात्र बन जाते हैं। बुद्धि ऐसे क्रूर काम को ऐसी चालाकी से करती है कि मनुष्य को यह अनुभव ही नहीं होता कि वह कोई अनुचित कार्य कर रहा है या गर्व तथा मोह में फँस रहा है। इसके सोचने का उसे अवसर ही नहीं मिलता; परन्तु संत और महात्मा लोग सब इन्द्रियों को वश में रखते हैं इस कारण वहाँ इसका जोर नहीं चलता। उनकी हँसी भी विकार रहित और कल्याणमय होती है। तात्पर्य यह कि मनुष्य जब ईश्वरीय या मानवीय नियमों के विरुद्ध आचरण देखता है और अपनी बुद्धि के अनुसार उसमें कमी पाता है तो हँस देता है या यों कहिए कि मन में अपने आप हँसी की लहर पैदा हो जाती है। यदि यह कमी जान बूझ कर की जाय तो हँसी को जगह क्रोध भी आ जाता है। नियम विरुद्ध कार्य के लिए गाँव वालों का उदाहरण लीजिए जिनको आप लोग बहुत बुद्धिमान नहीं मानते। उनके समाज में नियम है कि फराँटेदार मोंछ रखनी चाहिए। इस कारण जब

† इसको Instinct समझिये।

कोई शहर का आदमी दाढ़ी, मोंछ सफाचट किए हुए पहुँच जाता है तो वे हँसते हैं। जिनको दूसरा शुबहा होता है वे सहानुभूति प्रकट करते हैं। यही दाढ़ी मोंछ बहुत समय तक हास्यरस का बहाना बनी रही। यही नहीं, मेरा तो अनुमान है कि यदि नकटों की सभा में कोई ऊँची नाक वाला पहुँच जाय तो वह भी बिचारा 'नक्कू' जैसी कोई उपाधि पा जायगा और सबकी हँसी का निशाना बना रहेगा। कोई 'नकटा' या 'पेंचाताना' हमारी कृपा और करुणा का पात्र है न कि हास्य का; मगर इस बिगड़ी बुद्धि का बुरा हो कि हँसाए बगैर नहीं मानती।

सामग्री

जिन बातों से हम हँसते हैं वह दो प्रकार की हो सकती है। एक तो बाह्य—वे बातें जिनको हम साक्षात देखकर हँस पड़ते हैं, और दूसरी आन्तरिक अर्थात वे बातें जिनको हम सुनकर, पढ़कर या सोचकर मस्तिष्क की आँख के सामने दृश्य बनाते हैं और तब हँसते हैं। सोचने पर हँसी का उत्पन्न होना चूँकि अधिक सूक्ष्म है इस कारण उत्तम है। वैसे तो हँसी की कम या ज्यादा मात्रा दोनों जगह रहती है। इस कारण काव्य, या कहिए साहित्य, का हास्य सूक्ष्मतर है साधारण हास्य से। इससे यह भी स्पष्ट है कि साधारण श्रेणी से जितना ही स्तर ऊँचा होगा उतना ही हास्य भी सूक्ष्म और ऊँचा होगा। बुद्धि को समझ कर जितना ही आनन्द आएगा उतनी ही अच्छी हँसी भी होगी। जैसे किसी मनुष्य को एक टाँग में पायजामा और दूसरे में धोती पहने देखकर हँसी आ सकती है और किसी बाबू साहब को पूरे साहबी ठाट में देखकर भी हँसी आ सकती है यदि टाई गलत तरीके से बँधी हो या हैट ही उल्टी लगाए हों। और इन दोनों दशाओं में अन्तर है। जो अँगरेजी सभ्यता की बातों को

नहीं जानता वह नहीं हँस सकता। इसी प्रकार बुद्धि के प्रयोग से या ऊँची विद्वता अथवा ज्ञान के कारण जो हँसी पैदा होगी वह सूक्ष्म और प्रशंसनीय होगी। जनसाधारण की दृष्टि जहाँ नहीं पहुँच सकती वह एक विद्वान और बुद्धिमान मनुष्य के लिए सरल और साधारण बात हो सकती है। जिसको वे समझ भी न पाएँगे, उससे ये समझकर आनन्द उठाएँगे। जिस प्रकार एक पहेली बूझ लेने पर या कोई प्रश्न हल कर लेने पर आनन्द आता है इसी प्रकार हास्य को समझ लेने पर अधिक आनन्द मिलता है। उदाहरण के लिए यह लतीफा देखिए—

प्रोफेसर साहब ने मेज पर पुस्तक रख दी और पुकार कर कहा, "अरे भाई क्यों घर सिर पर उठा लिया क्या बात है?" पत्नी ने आकर कहा, "आपने सुना नहीं। अरे मुन्नी ने दावात की सारी रोशनाई पी ली। हाय अब मैं क्या करूँ?"
प्रोफेसर—"तो कौन आफत आ गई? जब तक पेंसिल से काम चलाओ।"

इसमें कुछ लोग हँसी का सामान ढूँढ़ लेंगे, यद्यपि यह भी सम्भव है कि कुछ लोग प्रोफेसर साहब की तरह दावात की कमी को पेंसिल से पूरी करने को अधिक महत्व दें। लड़की मरे या जीये उनकी बला से। प्रोफेसर साहब तो किताब पढ़ने की धुन में थे क़लम और दावात ही ध्यान में रही; परन्तु आप तो किसी धुन में नहीं हैं। खैर, मतलब यह कि हास्य बुद्धि की श्रेणी के अनुसार ऊँचा, नीचा, सूक्ष्म और साधारण होता है। और उसके स्तर में और रुचि (Taste) में भी अन्तर होता है। इसके अतिरिक्त भाषा के प्रयोग में भी अन्तर हो सकता है, जिससे सुगन्ध अथवा दुर्गंध आ सकती है; ग्राम्य दोष हो सकता है, अश्लील हो सकता है या सुन्दर भी हो सकता है। गांव वाले अपनी भाषा में शरीर के कुछ विशेष अंगों को इतना

कस कर बाँधे रहते हैं कि छोड़ नहीं सकते। उनके मुहावरे और कहावतें भी उन्हीं के चारों ओर घूमते मंडलाते हैं, चक्कर काटते हैं; परन्तु उन्हें कोई दोष नहीं मालूम होता। वे उसको जान भी नहीं पाते, क्योंकि वह तो एक प्रकार से उनका स्वभाव हो गया है। परन्तु पढ़े लिखे लोग उस भाषा को बोलते तक नहीं, लिखने का क्या प्रश्न है? जब व्यवहार ही में नहीं लाते तो फिर भला लिख कैसे सकते हैं? वे या तो साहित्य की सेवा कर सकते हैं या उस भाषा (गँवारू) की और ऐसी भाषा-प्रिय जनता की। अतः जो सभ्यता के कोप से डरते हैं वे ऐसी जनता की सेवा से मुँह मोड़ कर भाग निकलते हैं और उनकी जगह प्रगतिवादी साहित्यिक आ जाते हैं।

हास्य और अन्य रस

हास्य के अतिरिक्त हृदय में और भी स्थायी भाव हैं और उनकी सीमाएँ इधर उधर कहीं न कहीं एक दूसरे से छू जाती हैं। और कभी कभी तो वे एक दूसरे से परस्पर इस प्रकार घुल मिल जाते हैं कि उनका पृथक करना कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में यही कहा जा सकता है कि ये दोनों रस मौजूद हैं, आप एक मान सकते हैं और मैं दूसरा। हास्य रस के साथ यह झगड़ा बहुत है। एक बात और भी है। हास्य मन की दशा पर भी बहुत कुछ निर्भर है। यदि क्रोध, द्वेष या और किसी प्रकार की दुर्बलता में मन फँसा हुआ है तो हास्य भयंकर रूप धारण कर सकता है। ऐसी दशा में हँसी करने वाले 'जिन्दा दिल' कभी कभी 'दाद' की जगह खुजली की दवा (लात घूँसादि) ही पा सकते हैं। हास्य कैसे दूसरे रसों से मिल जाता है इसके बताने की जरूरत ही नहीं। हाँ, वह देखिए सामने ही सड़क पर मौलवी साहब पवित्र काली लम्बी दाढ़ी लगाए साइकिल पर

१ ईश्वर का हाल देखिए।

तेजी से चले आ रहे हैं। आप दोनों हाथ छोड़े हुए साइकिल चला रहे हैं। तीस वर्ष से साइकिल चलाते आ रहे हैं, भला इस कला में निपुण क्यों न हों ? और, हाँडी में क्या होगा ? शायद दही, ये इसके बड़े शौक़ीन हैं। मौलाना खुश बहुत नज़र आते हैं। अरे अरे हाँ हाँ ! अ र र र धम। गिर ही पड़े। मौलाना ने दही को नहीं छोड़ा, गिरने पर भी देखिए उसी हाँडी पर मुँह रक्खे लेटे हैं और दही मुँह के अन्दर बाहर टहल रहा है, इसी को कहते हैं प्रेम। देखिये ये तमाम लौंडे कैसे इकट्ठा हैं ? इनको जैसे कुछ इनाम मिल गया हो, तालियाँ बजा बजा कर खुश हो रहे हैं। चलिए देखिए मौलवी साहेब के चोट आ गई होगी। बेचारे बड़े भले आदमी हैं। लहू लोहान हो गये। राम राम। वह लीजिए बेगम साहिबा घर के अन्दर ही नाखुश हो रही हैं कि, "इस बुढ़ापे में यह कैसा लौंडापन ? चोट न लगेगी तो और क्या होगा ?" बेगम साहिबा की न कहिए। मैंने तो बहुत सी माताओं को ऐसी दशा में अपने सुपुत्रों का सुधार उसी स्थान पर करते देखा है जहाँ पर वे ऐसा दृश्य पैदा कर देते हैं। अब मौलवी साहब से मिलकर क्या कीजिएगा ? वह झाड़ पोंछ कर घर पहुँच गए परन्तु उन्होंने सक्रिय रूप से यह दिखा दिया कि हास्य, करुण और रौद्र कैसे एक ही बात से पैदा हो सकते हैं, यद्यपि इस कार्य में उनका कुछ दही, थोड़ी हल्दी और ज़रा सा चूना अवश्य खर्च हो गया।

मैं कह रहा था कि हास्य की सरहदें कभी कभी (१) करुण रस (२) रौद्र रस (३) शांत रस (४) अद्भुत रस बल्कि (५) बीभत्स रससे भी मिल जाती है। हास्य जितना ही अश्लील होता जायगा बीभत्स के निकट होता जायगा ; चाहे कुछ लोगों को वह आनन्द ही क्यों न देता रहे। ऐसा हास्य साहित्य के लिए शोभा नहीं वरन कलंक होगा और साहित्य को दूषित कर

देगा। ये बातें मैं डरते डरते लिख रहा हूँ क्योंकि आचार्यों और काव्य मर्मज्ञों ने करुण और भयानक रस को हास्य का विरोधी रस कहा है। मगर मैं चूँकि यह मानता हूँ कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में भी मेल हो सकता है इस कारण यह लिखने की धृष्ठता की है। उदाहरण के लिए देखिए:—

( १ ) करुण रस

उर्दू। १ निकलना खुल्द से आदम का सुनते आए थे लेकिन।
बहुत बे आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले॥

[ग़ालिब]

यहाँ अपनी बे आबरूई को बहुत बढ़ाकर करुण रस उत्पन्न किया है, परन्तु यहाँ 'बहुत' के बाद निकलने वाला दृश्य कुछ गुदगुदाता भी है। लड़के देखकर तो हँसते ही कि "कहिए अब क्या इरादा है ?" या

२ मैंने कहा कि बज़्मे नाज़ चाहिए ग़ैर से तिही।
सुन के सितम ज़रीफ़ ने मुझको उठा दिया कि यों॥

इसमें दोनों हास्य और करुण मौजूद हैं।

हिन्दी। सिनेमा के आकाश की जो थीं इक दिन अद्भुत तारा।
कालेज के लड़कों के जीवन का इक मात्र सहारा॥
म्युनिस्पलिटी भी न बुलाएगी अब उनसे नाली।
मैडम ! काल की चाल निराली॥

इसमें भी किसी को हास्य और किसी को करुण और किसी को शांत रस मालूम होगा, कि संसार कुछ है नहीं।

२ बीभत्स रसः—चिरकीन को सब जानते हैं। वे हज़ल कहते थे और माशूक के मलमूत्र की प्रशंसा करना ही अपने जीवन का ध्येय रक्खा। किसी ने कहा, "हज़रत आप माशूक की तारीफ" लिखते हैं कभी कोई क़सीदा वग़ैरह बड़ा काव्य नहीं लिखा उन्होंने तबियत पर जोर देकर हजरत अली की

तारीफ़ में लिखना आरम्भ किया:—

(उर्दू) ज़ोर से हमला किया जब हैदरेकर्रार ने।
पिलपिला कर हग दिया तब लशकरे कुफ़्फ़ार ने॥

लोगों ने कहा, 'बस अब आगे लिखकर क्या कीजियेगा ?' यहाँ 'हमले के ज़ोर' में कमी नहीं है; परन्तु शब्द जो उनकी ज़बान पर चढ़े थे छूट न सके और उन्हीं के अनुकूल विचार भी आए। इस प्रकार का वीभत्स रस हँसी का कारण भी बन सकता है; परन्तु यह हास्य रस यदि उनके मस्तिष्क के बजाय किसी खेत में होता तो अधिक लाभदायक होता।

हिन्दी। बेनी कवि हिन्दी के अच्छे हास्यरस लिखने वाले हुए। बहुत ख्याति प्राप्त की। इनाम भी पाए। एक जगह लिखते हैं (क्षमा कीजिएगा, मैं इसको लिखना नहीं चाहता था परन्तु एक उदाहरण देना ही है)

बार बार लीखें लगीं लाखन जुआँ की जोट,
आँखिन दिठौनिन में कीचर छिपानो है;
कानन कनोई नाक चपटी चुवत रेंट,
कारे कारे दाँतन में कीट लपटानो है॥
मूँड पै मकर जारो दौलत अँधारो लगो,
ओढ़ै मैलवारो फटो बसन पुरानो है।
बोलत ही थूक के फुहारे चलैं फूहरि के,
पाद पाद पीसत पिसानहू उड़ानो है॥

इस वीभत्स में भी हास्य पैदा हो सकता है और है। इसी प्रकार और भी रस हास्य के निकट आजाते हैं और उनको पृथक करना कठिन हो जाता है परन्तु कवि किसी न किसी शब्द या विचार को रखकर एक रस विशेष को प्रधानता दे देता है और उससे वही रस माना जाता है। हाँ यदि इस कार्य में कवि सफल न हुआ तो कविता के उद्देश्य या प्रभाव ही का अन्त हो

जाता है। हास्य और वीभत्स में विशेषकर यह दोस्ती है कि दोनों में केवल आलम्बन का—जो उसका पात्र होता है और जिससे हास्य तथा घृणा उत्पन्न होती है—वर्णन होता है। इस कारण इस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है कि हास्य, वीभत्स में बदल न जाय, वरना सब गुड़ गोबर हो जायगा।

संस्कृत साहित्य ने हास्य रस को, जिसके आठ भाई और हैं, हास के स्थायी भाव से उदित माना है, इसी का अनुकरण हिन्दी में भी हुआ। इधर अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से कुछ काव्यकार सटायर अर्थात व्यंग शब्द का प्रयोग भी करने लगे। व्यंग चाहे सटायर का उलटा, सीधा, अधूरा, अनुवाद ही हो; परन्तु इसी अर्थ का द्योतक है (न कि किसी अलंकार आदि का) और हास्य के लिये प्रयोग में आता है। हम परम्परा अनुसार चाहे सटायर (व्यंग) को हास्य रस के अन्तर्गत न मानें; परन्तु विचार कर देखें तो वह भी हास्य रस का ही अंग प्रतीत होता है। इसमें सन्देह नहीं कि विकार रहित हास्य(Humour) व्यंग (Satire) से अवश्य भिन्न है; परन्तु हास के साथ साथ यदि किसी को छेड़ने या बनाने की भावना भी पाई जाय, तो भी रहेगा तो वह हास्य ही। हास्य, मेरी या आपकी उस भावना से जो उस समय छिपी सी रहती है, शृंगार या वीभत्स तो कहा नहीं जा सकता। हाँ आप मानना नहीं चाहते तो ज्यादा से ज्यादा यही कह देंगे कि यह हास कोई स्थायी भाव नहीं है, संचारी होगा, या हास है हास्यरस नहीं है। और चूंकि काव्य को आपने रसों में विभाजित कर रखा है इसलिये इस (व्यंग) को बाहर फेंक कर आप अपनी विजय पर प्रसन्न भी हो सकते हैं। परन्तु इस भेद से मुझे कोई दुख न होगा जब तक हास, हास है और हँसी, हँसी है। मेरा, और कुछ और लोगों का भी,

सटायर (व्यंग) [तंज़]

विचार है कि हर सर्वश्रेष्ठ व्यंग में सुन्दर, ललित, हास्य अवश्य होता है और हर सर्वश्रेष्ठ हास्य में विनोदपूर्ण व्यंग।† यह दूसरी बात है कि व्यंग किस इच्छा या ध्येय से किया गया है। जब तक हास उत्पन्न होता है वह व्यंग भी हास ही है। तो सुलहनामा के लिये मैं यह कह सकता हूँ कि आप व्यंग को हास्य के अन्तर्गत न मानिये न सही, उसके साथ तो मानियेगा ही हास का बेटा न मानिये, चलिये उसका भाई मान लीजिए। घर के बाहर तो आप अब उसे निकाल ही नहीं सकते। इसलिये अब व्यंग के बारे में कुछ लिखना भी आवश्यक जान पड़ता है, विशेषकर इसलिए कि यह शब्द विदेशी न सही विदेशी का अनुवाद तो है ही।

सटायर का जन्म स्टेज पर—दृश्य काव्य से हुआ। जूलियस स्केलिगर Julius Scaliger और हेंसियस Heinsius के मतानुसार रोमन्स ने यूनान से इसे प्राप्त किया; परन्तु रिगलशियस Regaltius और केसावन Casaubon जैसे आलोचक कहते हैं कि नहीं यह स्वयं रोमन्स की उपज है। हम और आप इस झगड़े में क्यों पड़ें। आनन्दोत्सवों में जब हर्ष और विनोद अपनी सीमाएँ पार करने लगते हैं तो वे हँसी, दिल्लगी, फक्कड़पन 'कबीर' आदि के रास्ते ही से निकलते हैं। यह हर शहर और देश में होता है और यूनान में भी होता होगा। तो सटायर चाहे सटीरस—एक प्रकार का भिन्न भिन्न अवयव वाला जंतु—से सम्बन्ध रखता हो, चाहे उस देवता से जिसका हिन्दी बदन (मुँह) आदमी का और उर्दू बदन बकरे का था, और चाहे उस चंगेर से जिसको वे Satura Laux कहते थे और जिसमें नये साल की नानाप्रकार की पैदावारें, फल फूल आदि देवताओं को भेंट की जाती थीं; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सटायर ऐसी ही

† देखिये गोस्वामी तुलसीदासजी की कवितायें।

कुछ स्थिति, हँसी मसखरी और फक्कड़पन के मेल से पैदा हुआ है। होरेस Horace और कोन्टीलियनQuintiean का दावा है कि यूनानियों ने सटायर हमसे लिया है, मगर हम डिग्री देने वाले कौन होते हैं ?

प्रारम्भिक काल में इन रंगरलियों, हँसी दिल्लगी, फक्कड़बाज़ी आदि को जो पद्य में होने लगी थीं 'नकलों' में प्रस्तुत करते थे। फिर लिवो ऐन्ड्रानिकस Livous Andronicus ने सर्वप्रथमबार इसको कुछ शुद्ध और शिष्ट बनाकर दृश्य काव्य का पद देकर नाटक के रूप में सामने रखा। यह यूनानी गुलाम था जिसको रोम में उसके मालिक ने स्वतन्त्र नागरिक बना दिया था। इसने अपनी कुशाग्र बुद्धि तथा प्रतिभा से यूनानी साहित्य तथा नाटक की विशेषताओं को यहाँ चमकाया। अतएव रोम में जब फक्कड़पन, असभ्यता, खेल तमाशा, गाली गलौज आदि साधारण कविता से उन्नति करके कुछ शुद्ध, साफ और समाज के योग्य हुये तो नक़ल और विनोदपूर्ण नाटक बने और फिर ऐन्ड्रोनिकस के हाथों इन्हें दृश्य काव्य का स्थायी रूप दिया गया। अब इनियसEnniusने उसको शिष्ट और सुन्दर साहित्य का पद दिया और यह श्रव्य काव्य भी बन गया अर्थात देखने के अतिरिक्त पढ़ने के काम में भी आने लगा। इस प्रकार इनियस को पहिला व्यंग लेखक कह सकते हैं। परन्तु लूसीलियस Lucilius इसका भाँजा इससे भी अधिक प्रतिभाशाली हुआ और होरेस आदि उसी को यह पदवी देते हैं। इन्हीं दिनों वारू Varro भी एक प्रकार का व्यंग था जो चल बसा। यह गद्य में भी था। होरेस, जोवनिल और परसीयस, जो प्रसिद्ध और धुरंधर व्यंग लेखक माने जाते हैं, इसी लूसीलियस के अनुयायी समझे जा सकते हैं। होरेस के यहाँ समाज की उन तमाम कुरीतियों पर व्यंग है जो यूनानियों की बेढङ्गी नक़ल या उनके प्रभाव से है

गयी थीं जैसे अकबर† के यहाँ मिलता है। यहाँ चंगेर वाला नानाप्रकार का सामान है। परसीयस सत्य का पुजारी है और उसके व्यङ्ग में एक प्रकार की पवित्रता है। वह अपना आलम्बन केवल एक ही व्यक्ति और एक ही विषय को बनाता है जिसके प्रभाव से सुधार भी संभव है। अंग्रेजी कलाकारों ने इसी का अनुकरण भी किया। फ्रांस के ब्वायलों Boileau ने भी इसी को अपनाया जोविनल के यहाँ उत्तेजना, वक्रता और तूफ़ान है।

इतने झगड़े के बाद हम यह कह सकते हैं कि सटायर व्यङ्ग साहित्य का वह अङ्ग है जिसमें हास्यपूर्ण दशा या घटना (जिससे घृणा या हास के भाव उत्पन्न होते हों) का चित्रण विनोदपूर्ण और हास्ययुक्त ढङ्ग से किया जाता है; अर्थात हास्य और विनोद के अतिरिक्त साहित्य की श्रेणी तक ले जाना उसके लिये आवश्यक हो गया, नहीं तो व्यङ्ग केवल गाली गलौज (जैसे सौदा की व्यक्तिगत हजो) रह जायगा। अरबी में इसी को हजो (या तंज़, हज़ल, मुज़हकात, तज़हीक, मज़म्मत आदि) कहते हैं; परन्तु ये सब शब्द भी सटायर के पूर्णतः पर्यायवाची नहीं कहा जा सकते। यों तो यूनान और रोम के भी प्राचीन सटायर प्रायः काव्य नहीं थे, परन्तु अंग्रेजी में उसको यह पद प्राप्त है। अरब में हजों के लिये नियम थे कि (१) केवल उन्हीं वस्तुओं तथा बातों पर हों जो स्वतः ऐसी घृणित और तिरस्कार के योग्य हों (२) अपने पूर्वजों पर कदापि न हो और (३) सत्य व स्वाभाविक हो कि जल्द समझ में आ जाय और प्रभाव पड़े इस प्रकार वास्तव में व्यङ्ग के लिये रुचिकर और "टोपी चुस्त होना" भी आवश्यक प्रतिबन्ध है।

इंग्लैण्ड में होरेस का अनुकरण चासर ने किया और

† अंग्रेजी नक़ल पर इनका व्यंग पढ़िये।

जे वनिल का लैंगलैंड ने। चासर के रङ्ग में लिखने वाले एडी-सन, स्विफ्ट, थैकरे, टेनिसन आदि हुये और लैंगलैंड के ढंग पर टामस नेशन, ड्राइडन, पोप, जान्सन, ब्राउनिंग आदि। स्काटलैंड में विलियम डंबार और सर डेविडलैंडज़ हुये। फिर लाज, हाल, टामसडिकर, मार्सटन हुये। डिफो, स्टील, एडीसन, पोप आदि ने भी नाम कमाया। आप गोल्ड स्मिथ, शेरीडन, मूर और बाइरन को भी ले सकते हैं। इन सब पर फ्रांस के ख्यालों का प्रभाव है। फिर डिकिंस और डग्लस जिराल्ड आये। अमेरिका में भी वाशिंगटन इरविंग, पोलिडिंग, होम्स, डडले आदि प्रसिद्ध हुए। धीरे धीरे व्यंग बहुत मँज गया और उसका कडुवापन भी कुछ कम होने लगा। इधर कोलिंस, आर्थरलाक, फ्रेडरिक, लूकर, गिल्वर्ट, वाल्टर्स स्मिथ आदि ने व्यंग को अधिक सँवारा और सुन्दर बनाया। ओस्कर वाइल्ड, चेस्टरटन और शा ने भी इसमें योग दिया। इस समय भी गर्डिनर, आउडहाउस आदि सुन्दर हास्य और व्यंग लिखते हैं।

इस प्रकार व्यंग धीरे धीरे कटाक्ष और फक्कड़बाजी से उठकर पद्य फिर काव्य और साहित्य बन गया। तो मैं व्यंग को सटायर के अर्थ में प्रयोग करने और उसको हास्यरस के साथ, बल्कि अन्तर्गत, बहने देने की आज्ञा पा जाऊँगा ऐसी आशा करना चाहता हूँ। व्यंग के साथ साथ हजो भी आ जाय यह दूसरी बात है।

काव्य चूँकि कवियों तथा काव्यकारों की चीज़ है, उनकी कृति है, इसलिये कवियों के बारे में भी आचार्यों का मत दे देना अनुचित न होगा। वे कहते हैं कि कवि में (१) प्रतिभा होनी चाहिये, जिसको शक्ति भी कह सकते हैं। यह ईश्वर की देन है और इसी कारण से लोग कहते हैं कि "कवि पैदा होता है, बनता नहीं

कवि के गुण

प्रतिभा से कोई भी व्यक्ति, शिक्षित अथवा अशिक्षित कवि हो सकता है। अनपढ़ कवि प्रत्येक भाषा में मिलेंगे। नानक लखनवी ने मुड़िया लिपि ही में ग़ज़लें और मर्सिए लिख डाले और भाषा शुद्ध टकसाली उर्दू है। (२) निपुणता होनी चाहिये अर्थात कवि के लिये संसार का तजुरबा, लोक निरीक्षण, पठन पाठन, अध्ययन आदि आवश्यक हैं क्योंकि छन्द, कोष, काव्यपरम्परा, व्याकरण आदि का ज्ञान ही काव्य को ऊपर उठाता है। इतिहास का अध्ययन भी उसकी सहायता कर सकता है। और (३) अभ्यास हो जिससे काव्य में धीरे धीरे परिपक्वता आ जाय। इसी से बुद्धि में प्रखरता और भाषा में सरलता, सरसता, प्रवाह और माधुर्य पैदा हो जाता है जो काव्य को ललित कला बना देता है। प्रारम्भिक त्रुटियाँ और दोष इसी से दूर होते हैं। तो अभ्यास तो मुख्य है भाईजान!

इन गुणों से सम्पन्न, मगर निर्विकार, जीव हास्यरस का कवि बनकर जब लेखनी उठायेगा तो काव्य में जगमगाहट और पाठकों तथा श्रोताओं के हृदय-हौज़ में हर्ष और आनन्द की लहरें उठने लगेंगी। हास्यरस में लिखने के लिये कदाचित कोई नियम नहीं है। कवि ही स्वयं समझ सकता है कि किस प्रकार वह सुन्दर डाली सजाकर समाज को पेश करे। यदि उसको आनन्द आता है तो दूसरों को भी उसकी कविता से अवश्य आनन्द आयेगा। मानव हृदय में अमीर ग़रीब या पढ़े लिखे और अनपढ़ का अन्तर तो है नहीं। हाँ कविता समझ में आनी चाहिये। तो कविता केवल कवि की रुचि के अनुसार ही ही होगी, वह चाहे अच्छी हो चाहे बुरी; परन्तु उसका प्रभाव समाज तथा राष्ट्र पर अवश्य पड़ेगा, यह कहने की धृष्टता मैं करूँगा।

मैं अब इस चर्खे को न चलाऊँगा कि "जनाब काव्य

का काम मन को भरमाना है। काव्य का सम्बन्ध बुद्धि से नहीं
बल्कि हृदय से है।"; परन्तु इतना अवश्य
हास का उचित प्रयोग कहूँगा कि काव्य का प्रभाव सुनने वालों
और पढ़ने वालों पर पड़ता जरूर है।
अनपढ़ और मूढ़ भी इससे वंचित नहीं रहते। इसके प्रमाण के लिये उदाहरण देने की आवश्यकता भी नहीं। सुनते हैं कि अरब में आशा एक प्रसिद्ध कवि था। मेले को जा रहा था। रास्ते में एक ग़रीब बुढ़िया के यहाँ ठहरा। उसने बड़ी आव-भगत की। चलते समय बुढ़िया ने अपनी बड़ी बड़ी लड़कियों की-जिनका ब्याह नहीं हुआ था-भी चर्चा की। आशा ने कहा 'उनकी फ़िक्र न करो उनका इन्तजाम हो गया है। मेले में जब आशा ने अपने क़सीदे में उस 'शरीफ़ बुढ़िया" का नाम लिया तो सैकड़ों रईस लोग "पैग़ाम ले लेकर दौड़े और उन सब लड़-कियों की शादियाँ मुफ़्त ही में बड़े बड़े अमीर घरानों में होगईं। इसी प्रकार लोग कहते हैं कि "मसनवी जहरे इश्क" पढ़ते पढ़ते जब कुछ उत्तर भारत के वीर बौखलाने लगे तो सरकार ने कुछ दिनों के लिये इस पुस्तक को ज़ब्त करलिया था। संस्कृत तथा हिन्दी के कवि, चारण और भाट भी किसी से पीछे नहीं रहे। इन्हों ने राजाओं को अमर बना दिया। जिस राजा को, जिस सेना को बल्कि जिस प्रदेश को जिधर लेजाना चाहते थे नाक पकड़ कर ले जाते थे। लड़ाई में झोंक देते थे या कीर्ति अमर करने के लिये ललकारते थे। कड़खैत का तो इस प्रकार एक पेशा ही पैदा हो गया था जो युद्ध के समय सदा बड़ा काम करते थे। अरब में रजज़ख़ानी का महत्व था। यहाँ चन्द बरदाई और भूषण आदि ने नाम और दौलत दोनों ख़ूब कमाये। उर्दू के कवियों ने नवाबों को कैसा रसिक बना दिया था कहने की आवश्यकता नहीं। तात्पर्य यह कि जनसाधारण पर बल्कि हर

प्रकार के लोगों पर, कविता का प्रभाव पड़ता है और इस लिये काव्य से सुधार या प्रोपगैंड़े का काम भी लिया जा सकता है। लिया भी गया है। हिन्दू समाज इसीसे रीतियों या कुरीतियों के बन्धन में जकड़ा पड़ा है। आज कल सिनेमा साहित्य देखिये। यहाँ साहित्य की टाँग ही तोड़ी गई है फिर भी प्रभाव प्रत्यक्ष है, अच्छा है या बुरा कहने का समय नहीं।

अब विचार यह उठता है कि पहले यह तो ते करलीजिये कि कवि अपने लिये-स्वान्तः सुखाय-कविता लिखता है कि दूसरों के लिये। यदि कवि केवल अपने लियेही लिखता है तो प्रभाव और समाज दोनों को गोली मार दीजिये और कवि जी को अकेले गुनगुनाते हुये ( जिसको हम सुन नहीं सकते ) टहलने दीजिये, मगर यह बात है नहीं। यदि कवि केवल अपने लिये ही लिखता तो हम लोगों का सड़क पर चलना क्यों मुश्किल हो जाता। कवि और शायर जब तक अपना कलाम सुना नहीं देते आगे बढ़नेही नहीं देते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो ख़ाहमख़ाह कान खोले और आँखे फाड़े घूमते हैं कि कुछ रस मिल जाय। इनके इस स्वभाव का उत्तरदाइत्व भी तो इन्हीं कवियों पर है। साफ़ बात तो यह है कि स्वान्तः सुखाय न तो किसी ने अब तक कविता लिखी और न कोई लिखता है। जिन कवियों का संबंध राज दरबारों से रहा है वे तो यह डींग मारही नहीं सकते। 'शाहनामा' महाकाव्य भी अपने लिये फ़िरदौसी ने नहीं लिखा था, हाँ गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'रामचरित मानस' में अपनी ख़ाकसारी से यह धोका अवश्य पैदा कर दिया; मगर जनाब यही बात थी तो महाकाव्य लिखने की आवश्यकता ही क्या थी? दोहावली या बरवै रामायण काफ़ी थी। फिर दुष्टों (दुष्टसमालोचकों ) से घबराने और उनकी वंदना करने की क्या जरूरत थी पढ़ने वालों को आशीर्वाद पर आशीर्वाद क्यों देते हैं? ख़ैर,

इनको तो छोड़ ही दीजिये। ये तो अपने को कवि ही कब मानते हैं। दूसरे लोगों ने कुछ न सही तो ख्याति प्राप्त के लिये ही या परलोक बनाने के लिये ही या मानव को सन्मार्ग पर लाने के लिये ही काव्य का निर्माण किया और समाज को प्रभावित किया। 'दास' जी लिखते हैं कि (कविता करके)

एकै लहैं तप पुंजन के फल ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाईं।
एकैं लहैं बहु संपति केसव भूषन ज्यों बरबीर बड़ाईं॥
एकन कौं जसही सो प्रयोजन है रसखानि रहीम की नाईं।
दास कवित्तन की चर्चा बुधिवंत न कौं सुख दै सब ठाँईं॥

जिससे प्रकट है कि लिखने वालों ने सब अपने ही लिये नहीं लिखा बल्कि दूसरों के लिये भी। हाँ प्रयोजन अवश्य जुदा जुदा रहा। इससे यह स्पष्ट है कि हास्य भी-यदि वह काव्यका अंग है-हँसने हँसाने के अतिरिक्त किसी अच्छे या बुरे प्रयोजन के लिये प्रयोग में आ सकता है। इसके प्रभाव से तो आप इन्कार करही नहीं सकते।

हास्य लिखने लिखाने का प्रयोजन हँसने हँसाने के अतिरिक्त क्या होना चाहिये इस पर विचार करने के पहले जरा पं० रामचन्द्र शुक्ल की बातें भी सुन लीजिये। वे लिखते हैं:—

"हास्य के आलम्बन से विनोद तो होता ही है, उसके प्रति कोई न कोई और भाव भी—जैसे, राग, द्वेष, घृणा, उपेक्षा विरक्ति—साथ साथ लगा रहता है। हास्य रस के जो भारतीय आलंबन ऊपर बताए गए हैं वे सब इस ढंग से सामने लाए जाते हैं कि उनके प्रति द्वेष, घृणा इत्यादि न उत्पन्न होकर एक प्रकार का राग या प्रेम ही उत्पन्न होता है। यह व्यवस्था हमारे रस सिद्धान्त के अनुसार है। स्थायी भावों में आधे सुखात्मक हैं और आधे दुःखात्मक। हास्य आनन्दात्मक भाव है। ए. ही

आश्रय में, एक ही आलंबन के प्रति, आनान्दात्मक और दुःखात्मक भावों की एक साथ स्थिति नहीं हो सकती। हास्यरस में आश्रय के रूप में किसी पात्र की अपेक्षा नहीं होती, श्रोता या पाठक ही आश्रय रहता है। अतः रसकी दृष्टि से हास्य में द्वेष और घृणा नामक दुःखात्मक भावों की गुञ्जाइश नहीं। हास्य के साथ जो दूसरा भाव आ सकता है वह संचारी के रूप में ही। द्वेश या घृणा का भाव जहाँ रहेगा वहाँ हास की प्रधानता नहीं रहेगी, वह 'उपहास' हो जायगा। उसमें हास का सच्चा स्वरूप रहेगा ही नहीं। उसमें तो हास को द्वेष का व्यंजक या उसका आच्छादक मात्र समझना चाहिए।

जो बात हमारे यहाँ की रस व्यवस्था के भीतर स्वतः सिद्ध है वही योरप में इधर आकर एक आधुनिक सिद्धान्त के रूप में यों कही गई है कि 'उत्कृष्ट हास वही है जिसमें आलंबन के प्रति एक प्रकार का प्रेम भाव उत्पन्न हो अर्थात् वह प्रिय लगे'। यहाँ तक तो बात बहुत ठीक रही। पर योरप में नूतन सिद्धांत प्रवर्तक बनने के लिए उत्सुक रहने वाले चुप कब रह सकते हैं। वे दो क़दम आगे बढ़ कर आधुनिक 'मनुष्यतावाद' या 'भूतदयावाद' का स्वर ऊँचा करते हुए बोले "उत्कृष्ट हास वह है जिसमें आलबन के प्रति दया या करुणा उत्पन्न हो।" कहने की आवश्यकता नहीं कि यह होली-मुहर्रम सर्वथा अस्वाभाविक अवैज्ञानिक और रस विरुद्ध है। दया या करुणा दुःखात्मक भाव है, हास आनंदात्मक। दोनों की एक साथ स्थिति बात ही बात है। यदि हास के साथ एकही आश्रय में किसी और भाव का सामंजस्य होसकता है तो प्रेम या भक्ति का ही।"

मुझे शुक्ल जी के विरोध में कुछ कहना नहीं है। हाँ, इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि हास्य से-जिसका एक प्रमुख अंग व्यंग है-सुधार का भी काम लिया है व्यंग

द्वारा हम उन लोगों के विरुद्ध जो समाज को बदनाम कर रहे हैं और जो समाज का खून चूस रहे हैं और जो समाज को अवनति की ओर ढकेल रहे हैं, चीख पुकार-मचा सकते हैं, और घृणा उत्पन्न कर सकते हैं। हम समाज को ठीक रास्ते की ओर संकेत कर सकते हैं। राजनीति, साहित्य, रस्म रिवाज, आचरण या ऐसीही सैकड़ों बातों में हम शकर चढ़ी हुई गोलियाँ खिलाकर हँसते खेलते सुधार कर सकते हैं यदि उसकी आवश्यकता है। बच्चे को खेल खेल में, हँसा हँसा कर अक्षर ज्ञान करा देना, पढ़ा देना और पहाड़े याद करा देना यदि अच्छा है तो हास भी एक अच्छा साधन बन सकता है उन अच्छे कामों के लिए जिनसे कुरीतियाँ और त्रुटियाँ दूर हो सकती हैं और राष्ट्र को लाभ पहुँच सकता है। यदि राग या दया या करुणा उत्पन्न करके हास द्वारा कुछ सुधार होजाय तो अच्छा ही है; परन्तु यदि सीधी उँगलियों से घी न निकले तो फिर मजबूरी है। द्वेष और घृणा ही उत्पन्न करके काम चलाइये, चाहे हास 'उपहास' ही क्यों न बन जाय।

यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे आधुनिक काल के कुछ कवि अपने प्रभाव पूर्ण काव्य से समाज को और साहित्य को लाभ के बदले हानि पहुँचा रहे हैं। मैं कहता हूँ भाई साहब अगर आपकी ( या मेरी भी ) बीबी कुरूपा और बद सूरत है तो उसकी हँसी उड़ाने से वह सुन्दर तो हो नहीं सकती। हाँ घर में बलवा अवश्य रहेगा और अशांति के लिये पुलीस को दौड़ना पड़ेगा। तो इससे क्या लाभ होगा ? या यदि आप अपनी पत्नी से अस्वाभाविक, अशिष्ट और घृणित हँसी मजाक करके या उसकी जूतियाँ खाकर जनता को प्रसन्न करना चाहते हैं तो भी क्या शेर मारलेंगे। इससे तो आचरण, कम से कम लड़के और लड़कियों के बिगड़ने ही की अधिक सम्भावना है यह बात त

सत्य भी हो तो न कहिये। या राशन का सिद्धांत चाहे गलत ही हो, आपके व्यंग से यदि प्रभावित होकर सरकार कल इसे तोड़ दे तो जनाब दस बीस लाख योधा बिना युद्ध किये ही शरीर त्याग देंगे। इस लिये इसके पीछे भी हाथ धोकर पड़ना बहुत ठीक नहीं, फिर आपका उद्देश्य तो यह भी है कि हर वस्तु पर अपनी सरकार का प्रबन्ध रहे(Nationalised) हो आप समाज से चोर बाजारी, बेईमानी, धोखाबाजी, छुआछूत दूसरों के अव गुण ढूँढने का स्वभाव, काम चोरी और रिश्वत आदि दुर्गुणों को दूर करना तो पसन्द नहीं करते; मगर सरकार बल्कि उसके हर कर्मचारी के विरुद्ध (नाम लेले कर भी) तूफान उठा रहे हैं। सब काम सरकार ही क्यों नहीं करती यही आपका शिकायत है, यद्यपि इससे भी अपनी पुरानी गुलामी की आदत झलकती है। कहने का मतलब यह है कि अभी इस ओर ध्यान कम दिया गया है और हास को केवल हास के लिये ही लिखा गया है। सुधार का क्षेत्र खाली है इसमें अभी काम की बहुत गुञ्जाइश है। हम अपने कवियों से यह आशा कर सकते हैं कि वे लाभदायक सुखद हास लिख कर सुधार भी करते रहेंगे। काव्य को प्रोपगंडा की वेदी पर बलिदान करना कदापि उचित नहीं जैसा कुछ लेखक इस समय कर रहे हैं; क्योंकि यह अस्वाभाविक होजाता है। प्रचार के लिये गोस्वामी जी का अनुकरण करने की आवश्यकता है। 'मानस' में 'भक्ति प्रचार' की चेष्टा हर जगह छिपी है, यह है उनका ढंग। सामयिक सुधार का काव्य उद्देश्य की पूर्ति हो जाने पर मिट जायगा यह दूसरी बात है। व्यंग साधारणतया अमर है भी नहीं।

हास कैसे लिखना चाहिये यह तो मैं जानता नहीं और न इसके नियमों का मुझे ज्ञान है। मैं नियम बना भी नहीं सकता। हाँ, मैं आपकीइतनी सेवा अवश्य कर सकता हूँ कि

कवियों ने प्रायः जिन तरीकों और ढंगों से हास्य रस की कवि
ताएँ लिखी हैं उनका कुछ उल्लेख करदूँ ।

## काव्य में हास्य पैदा करने के ढंग

कुछ दृश्य और घटनायें ऐसी होती हैं कि यदि वे दृष्टि-
१ आलम्बन गोचर हों तो सहसा हँसी आ जाती है । इस
लिये जब कविताओं में उनका वर्णन होता है तो वह दृश्य
आखों के सामने आ जाते हैं और हास्य रस उत्पन्न हो
जाता है । जैसे :—

कुतिया के भय से भाग चला सेना को लेकर भिल्ल प्रबल
खम्बे पे चढ़ा है एकाकी अब इसको हिलाकर क्या होगा ?

एक भिल्ल (बन्दर) को उपरोक्त दशा में खंभा हिलाते देख
कर हँसी उत्पन्न हो सकती है इसलिये इस वर्णन से भी हँसी
आ सकती है ।

प्रत्येक शब्द में कोई न कोई अच्छा या बुरा, मधुर या
कडुआ स्वर होता है । इनमें से कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो नये,
२ शब्द अनोखे और हास्य प्रद भी हो सकते हैं । जैसे कौवे की
"पवित्रऔर सुन्दर बोली" कोयल की कूक से अलग है । इसी
प्रकार कुछ शब्द भी अपने प्रयोग से नया मजा देते हैं । जैसे :—

मिट चला संघर्ष से छोटे बड़े का भेद भाव ।
युद्ध से पतलून का ढीला सुथन्ना हो गया ॥

यद्यपि सुथन्ना भी एक प्रकार का पायजामा है परन्तु यहाँ
पर इसके प्रयोग से कुछ हँसी आ सकती है । मुहावरा भी है ।
इसी प्रकार हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों या बे जोड़ उर्दू के शब्दों
के प्रयोग से हास्य रस पैदा किया जा सकता है । अकबर इला-
हाबादी ने यह काम बड़ी सफलता से किया है । उन्होंने कुछ
शब्द ऐसे बनाये भी, जिनके कुछ विशेष अर्थ लिये हैं जैसे बुद्ध

शेख़, मोलवी, मिस, बाबू इत्यादि जिनका अलग महत्व है।

साहित्य में गँवारू भाषा के शब्द भी यदि अश्लील न हों अपने प्रयोग से हँसाते हैं, और गँवारू भाषा की कवितायें भी हास्य का अंग बनजाती हैं, यदि उनमें हास्य की कुछ सामग्री है। पं० प्रतापनारायण मिश्र की कविताएँ प्रायः इसी रंग में हैं।

३ श्लेष और वक्रोक्ति (एहाम व लजाइल) — कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके एक से अधिक अर्थ हो सकते हैं। ऐसा शब्द जब वाक्य में अगल बगल के शब्दों से मिलता है तो एक से अधिक अर्थ उस वाक्य के हो सकते हैं और कवि की कला यह होती है कि वह ऐसे शब्दों के प्रयोग से हँसी वाले सुन्दर अर्थ भी पैदा कर देता है। अंग्रेजी में विट Wit का अर्थ ही यह होता है कि वह अपने चातुर्य से शब्दों के अर्थों में उलट फेर से आनन्द पैदा करे।

उर्दू का एक शेर है :—

फटी जूतियों को निकलवा रहे हैं।
हुआ चाहती है मरम्मत किसी की॥

यहाँ 'मरम्मत' के शब्द से पूरा अर्थ ही बदल जाता है। जूतियों की 'मरम्त' होगी अथवा 'किसी की'। इस से हास्य रस पैदा हो सकता है। या जैसे:—

नेम ( Name ) पूछा और फ़रमाया कि वेट ( Wait )।
मैंने फ़ौरन कहदिया "कुल तीन मन"॥

में वेट का आनन्द लीजिये।

४ तुकान्त (क़ाफ़िया) — शब्दों के अनोखे प्रयोग से या अनोखे शब्दों के प्रयोग से हँसी आ सकती है परन्तु तुकान्त में ऐसे शब्द जब आजाते हैं तो अधिक आनन्द देते हैं।

तुक चाहे कविता के लिये कोई आवश्यक चीज़ न हो परन्तु कानों को कुछ भले अवश्य लगते हैं अब यदि शब्द भी

हँसाने वाले मिल जाँय तो अधिक आनन्द क्यों न आये ? कवि सम्मेलन के बीच ही से कुछ पंडित-सूरत लोग भागने लगे तो यह कविता बन गई कि :—

बैठे थे फुलस्टाप से कामा निकले।
हम समझे चचा जान हैं मामा निकले॥
भ्रम था कि हैं साहित्य सुधा के प्रेमी।
धोती में थे लेकिन पाजामा निकले॥

इस में 'कामा', 'मामा' और 'पाजामा' कुछ अधिक आनन्द देते हैं।

**५ उपमायें और रूपक (तशबीह और इस्तआरा)**

किसी बात को अधिक सुन्दर ( या और कुछ ) बनाने, स्पष्ट करने और प्रभाव डालने के लिये उपमायें प्रयोग में लाई जाती हैं। उपमायें पूरा दृश्य आंखों के सामने उपस्थित कर देती हैं, इस लिये यदि वह हास्य पैदा करने वाली हों तो और मजा आ जाता है। जैसे :—

मैले सड़ियल नोटों की गड्डी हूँगी।
कविता मेरी इस बार फिसड्डी होगी॥
अब काव्यकला लान में प्यारे मित्रो !
टेनिस की जगह समझो कबड्डी हूँगी॥

कवि ने अपनी कविता को "सड़ियल नोटों की गड्डी"; और अच्छी कविता को 'टेनिस', अपनी कविता को 'कबड्डी', और काव्य को टेनिस का लान बताया है जिससे शायद कुछ हँसी आ जाय। यह उपमायें शुद्ध भी हो सकती हैं और गवाँरू और अश्लील भी। कवि जिनका प्रयोग चाहे करे परन्तु हास्य भी वैसाही होगा। रूपक में और भी आनन्द आता है। जसे:—

है दिल के बक्स में प्रेम भरा तो इसका दिखावा कौन करे ?
वे बक्स चुराये बैठे हैं चोरी का दावा कौन करे ?

इसमें दिल को बक्स माना है इत्यादि।

जब किसी बेढंगी बात को बढ़ाकर कहा जाता है तो लोग यों ही मुस्कराने लगते हैं, और इसमें यदि उपमा की ६ अतिशयोक्ति की सहायता मिल जाती है तो रसमें वृद्धि हो जाती (मुबालग़ा) है यद्यपि उपमा की सहायता कोई आवश्यक बात नहीं है। जसे :—

प्रेम वह पीयूष है मीठी हुई हर एक वस्तु।
मुँह पे जो डंडा जमाया उसने गन्ना होगया॥

यहाँ 'जमाने' पर श्लेष है। अब यह देखिये कि भला डंडा भी कभी गन्ना हो सकता है। "उन" के हाथ की तासीर है इसको क्या कीजिये गा जनाब!

परोडी Parody और व्यंग Satire यूनान, रोम और इङ्गलैंड होते हुए यहाँ पहुँचे। सटायर का टूटा फूटा अनुवाद ७ पैरोडी व्यंग है। पैरडी शब्द तो अंग्रेजी का है परन्तु हिन्दी (परिवृत्ति) और उर्दू में भी इसका प्रयोग होने लगा है। जब किसी की ग़ज़ल या कविता के कुछ शब्द अदल बदल कर यों पढ़ते हैं कि हास्य पैदा हो जाता है तो इसको परोडी कहते हैं। दूसरे की कविता के कुछ ही शब्द लेकर उसके आधार पर भी ऐसी कविता लिखी जा सकती है। जैसे इक़बाल का मशहूर शेर है :—

कभी ए हक़ीक़ते मुन्तज़र नज़र आ लिबासे मजाज़ में।
कि हज़ारों सजदे तड़प रहे हैं मेरी जबीने नयाज़ में॥

इसमें दूसरे मिसरे को यों लिख सकते हैं कि—

कि हज़ारों थान तड़प रहे हैं पड़े दूकाने बज़ाज़ में॥

जिससे कपड़े के कन्ट्रोल और होडिंग पर भी अच्छा व्यंग हो जाता है। या जैसे :—

दोहा—मेरी भव बाधा हरो, हे राधा व्रज राज।
भूख नहीं कंट्रोल में, मिलता नहीं अनाज॥ इत्यादि

इसी प्रकार बहुत मिलेंगी ; परन्तु अच्छी पैरोडी कदाचित वही होगी जिसको मूल कविता न सुनने पर भी स्वतंत्र रूप से पढ़ें तो भी आनंद आये। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति से बल्कि हर एक कवि से भी यह आशा रखना कि उसने सबकी रचनायें पढ़ रक्खी हैं उचित नहीं।

बेतुकी बातों, खराब नियमों, भद्दे कामों या बेढंगी चीज़ों की प्रशंसा करने पर हँसी आती है। सुधार के लिये यह एक अच्छा साधन भी है परन्तु यह साधारण हास्य से अधिक व्यंग तीक्ष्ण होता है। किसी हृदयको चोट भी आसकती है इस तेज़ ) कारण समझ बूझ कर इसे तरकश से निकालना चाहिये: क्योंकि जब कोई रोने लगा तो हँसी का मज़ा कहाँ रहा ? जैसे :-

शेर—माना कि निकट सम्बन्धी हैं शुभ कामभी है अपने घरमें।
राशन के ज़माने में लेकिन घर भर का बुलावा कौन करे॥

या

(रुबाई) सूरज सुबहो शाम किया करता है।
भापू अपना काम किया करता है॥
मुल्ला, मुर्ग, चीखते चिल्लाते हैं।
बंदा मगर आराम किया करता है॥

यहाँ पर राशन के कारण निकट संबन्धियों को भूल जाना और दिन चढ़े तक सोते रहने की तारीफ़ की गई है।

हर एक काल में कोई न कोई खास रँग, किसी विशेष बात का ज़ोर रहता है। उनके बारे में कविता अच्छी मालूम होती है। जैसे जब स्वदेशी का ज़ोर था तो

६ वातावरण (माहौल) विदेशी कपड़ों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। उनकी हँसी भी उड़ाई जाती थी। समयानुकूल बातें जल्दी समझ में भी आती हैं। समय की लहर में बहने से यदि आनन्द मिले तो उसके विरुद्ध जाने

का प्रयत्न करना बुद्धिमानी भी नहीं, परन्तु यह बातें थोड़े दिन की होती हैं स्थायी नहीं और इस कारण ऐसा काव्य भी स्थाई नहीं हो सकता । 'दिल्ली चलो' वाले कवि अब कहाँ चले गये या कहाँ जायेंगे हम लोग नहीं कह सकते । मगर इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि ऐसी कवितायें होनीही नहीं चाहिये। अवश्य होनी चाहिये; परन्तु उचित मात्रा में। जैसे कन्ट्रोल पर हास्य लिखा गया, बहुत अच्छा; मगर इतना लिखने से क्या लाभ कि रोने लगे मगर कन्ट्रोल मौजूद और अगर टूट गया तो कविता गायब और कवि जी चुप । हाँ तो कन्ट्रोल पर यह शेर ( पैराडी भी है ) लिखा गया है जिसमें शक्कर मिलने की कठिनाइयों की ओर संकेत है।

शेर—चाय बरबाद करेगी हमें मालूम न था।
इसमें शक्कर भी पड़ेगी हमें मालूम न था ॥

जिसको शक्करका अकाल न मालूमहो वह इसका आनंद भी न ले सकेगा। इसी प्रकार वोट, चुनाव आदि पर भी कवितायें लिखी गई हैं।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि जिन बातों का वर्णन हो उनमें स्वयं कोई हँसाने वाला गुण नहीं है परन्तु कवि अपने नये, विशेष ढंग से लिख कर उसे प्रस्तुत करे और

१० शैली (तर्ज) उनमें जान डाल दे। यह लुत्फे अदा, यह कहने का ढंग बड़े महत्व की चीज है । यह हर कवि का अपना अलग होता है और इसीसे कवि का स्थान नियत किया जाता है। अच्छा कवि साधारण बातों को भी इस ढंग से कहता है कि वह बोलने लगती हैं । उनमें जादू पैदा हो जाता है और वे सुनने वालों के दिल में स्थान कर लेती हैं। लिखने के लिये सामान सबके पास बराबर है । प्रकृति सामने है, भाषा भी है, परन्तु सब लोग एक ही ढंग से लिखते नहीं

सब की कविताओं में एकसा आनन्द और रस नहीं मिलता। कोई मधुर और कोई फीकी होती है। हास्य में भी साधारण बात को हास्य के भिन्न भिन्न ढंगों से लिख सकते हैं; परन्तु तासीर में कमी बेशी अवश्य रहेगी। जैसे ईश्वर वन्दना और प्रार्थना कोई हँसी की वस्तु नहीं परन्तु जब इस प्रकार की जाय कि :—

रुबाई—हम पर भी कृपा दृष्टि जो नंदनन्द करें।
मन की सूखी घास शकरक़न्द करें॥
उद्‌गारों के टट्टू जो फिरें मन माने।
कविता कांजी हौस् में हम बन्द करें॥

या किसी व्यथित हृदय की चीख पुकार को यों लिखें:—

शेर—गए तार बीणा के जब टूट, उसने
बजाया चिकारा सवेरे सवेरे॥

तो शायद कुछ हँसी आ सकती है। इसी प्रकार अकबर को नये ढंग की पढ़ाई पसन्द न आई तो बोले :—

शेर—हम ऐसी कुल किताबें क़ाबिले ज़ब्ती समझते हैं।
कि जिनको पढ़के लड़के बाप को ख़ब्ती समझते हैं॥

प्रत्येक नाटककार तथा उपन्यास और कहानी लेखक यह प्रयास करता है कि उसके पात्रों का चरित्र चित्रण शुद्ध, स्वाभाविक और पूर्ण हो, जिससे पाठक या दर्शक के चित्त पर उसका समुचित प्रभाव पड़े और तीर अपने निशाने पर बैठे। यहाँ भी कलाकार इस प्रकार फ़ोटो खींचता है कि आवश्यक और सुन्दर प्रभाव डालने वाली बातें आजाँय और अनावश्यक बातें छूट जाँय। हास्य रसमें इसपर अधिक विचार करने की ज़रूरत है कि कौन सी बात लिखी जाय और किसको छोड़ दिया जाय; क्योंकि इसमें केवल एक शब्द या एक संकेत

११ चरित्र चित्रण (किरदारनिगारी)

ही पूरी कविता को दूषित कर सकता है और उसे अशिष्ट, अश्लील और गन्दा बना सकता है। जैसे प्रेमिका के उदासीन भाव, लापरवाही और छेड़छाड़ में आनन्द लेने की प्रकृति को इस प्रकार लिखा है कि :—

रुबाई—हर बात को बकवास समझते हैं वो।
होली बारह मास समझते है वो॥
उनके ठंगे पर है मेरा प्रेमालाप।
मुझको तो उपन्यास समझते हैं वो॥

सब से उत्तम, सुखद, सूक्ष्म और पूर्ण हास्य उस समय होता है जब कवि अपनी रचना में मानव प्रवृत्तियों (विचारों) का अनोखा पन, उन का सहसा उलट फेर, उनकी स्वाभाविक गति, उनकी चंचलता और भोलेपन को अपने रोचक ढंग से लेखनी बद्ध करता है।

१२ मनोविज्ञान की झाँकी
(नफ़सियाती पहलू)

इसमें कवि को तो सोचना पड़ता ही है पाठकों और श्रोताओं को भी मस्तिष्क से काम लिये बगैर आनंद नहीं आता। किस दशा में मनुष्य के दिमाग़ और विचार की क्या हालत होगी हम सब सोच कर समझ सकते हैं, और जब कवि इसका दिग्दर्शन कराता है तो बहुत आनंद आता है। इसको यदि रहस्यवाद के ढंग से लिखा जाय तो छोटे बड़े अपने अपने स्थान पर जुदा जुदा तरीके से मजा ले सकते हैं। इसके लिखने के लिये कोई नियम तो हो नहीं सकते, केवल प्रतिभा और मन-टट्टू की भिन्न भिन्न चालों की डाक्टरी (क्योंकि सईसी इल्म दरियाव है भैया) ही यह फोटो खींचने में समर्थ हो सकती है। उदाहरण के लिये देखिये कि एक 'अक्कड़खाँ' युवक शादी हो जाने पर जब 'पालतू' हो जाता है तो वह विचारा क्या विचार करता है कि पहले मैं क्या था, फिर क्या हो गया। पहिले तो :—

रुबाई–बोला जो कोई ऐंठ के मैं तन बैठा।
ऊँची देखी नाक तो बस 'हन बैठा'॥
लेकिन जब से लक्ष्मी जी घर आईं।
तब से भाई मैं उल्लू बन बैठा॥

इसमें लक्ष्मी जी, उल्लू और 'बन' ऐसे शब्द हैं कि नैकट्य के कारण भले लगते हैं; परन्तु उसकी दीन (या आनंदप्रद) दशा पर भी तो सोचिये कि कहाँ मुँह जोर थे, किसी लगाम की परवाह नहीं करते थे, और कहाँ अब हर समय सवारी में हाज़िर रहना है और उछल कूद की बहुत गुञ्जाइश नहीं।

इसी प्रकार संसार में फँसा रहने वाला प्राणी चाहता है कि अब ईश्वर की याद में जी लगावे, कुछ उसका भी ध्यान करे। आख़िर उस बनाने वाले का भी कुछ हक़ है ही। उसको कब तक भूले रहोगे? इसका इस तरह लिखा है कि एक 'बिगड़े दिल सुपुत्र' एक पैसेवाली 'बुजुर्ग' मिस से पैंग बढ़ा रहे हैं, और उनका एक मित्र इस प्रकार समझा रहा है और डाँट रहा है कि–

किस से प्रीति लगाई? बौड़म! किससे प्रीति लगाई।

(१) बुढ़िया पर क्या लट्टू होना?
क्या मुँह बाये रोना धोना?
कितनों ही को जला चुकी है
यह दुनियाँ हरजाई। बौड़म–किससे प्रीति लगाई॥

(२) डर से योगी जंगल जायें
राजे महराजे थर्रायें
राम मूता को धर पटके
यह वो तारा बाई। बौड़म–किससे प्रीति लगाई।

(३) माना माया का लालच है।
कुछ आनन्द भी है यह सच है॥
मगर कसे इसने छकड़ा है?

मुस्लिम हो कि इसाई। बौड़म—किससे प्रीति लगाई ?

(४) कान पकड़ उठ बठ मानले।
आँख खोल लम्बी न तान ले॥
पिता के चरणों पड़कर अब भी
क्षमा माँग ले भाई। बौड़म—किससे प्रीति लगाई ?

इसमें कुछ शब्द भी बच्चों को बहलाने वाले आ गये हैं। जैसे— (१) बन्द में 'जला चुकी'
(२) बन्द में 'जंगल जाय' और रामभूतो'
(३) बन्द में 'माया' और 'छोड़ा' और
(४) बन्द में "कान पकड़ उठ बैठ" को एक साथ और अलग अलग पढ़िये तो भिन्न भिन्न अर्थ पैदा हो सकते हैं। इससे बच्चों को अपना अर्थ समझ कर आनन्द मिलेगा और समझदार लोग अपने अच्छे अर्थ लगाकर मजा ले सकते हैं और चेतावनी समझ कर उसका लाभ उठा सकते हैं।

अब मैं अपने टेले को यहीं रोकता हूं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि इनके सिवा और कोई तरीके नहीं है जिनमें हास्य लिखा जाता हो। अवश्य होंगे। यह तो मैंने केवल उदाहरणार्थ लिखे हैं।



# पाँचवाँ फाटक

-:❀:❀:❀:-

हास्य सभी ललित कलाओं में विद्यमान है। साहित्य ने कुछ इसका ठेका थोड़ाही लेलिया है; परन्तु साहित्य में हास्य अधिक सुन्दर और स्थायी है। इसमें विभिन्नता और विस्तार है। मूर्तिकला में भी कोई मूर्ति देख कर हँसी आ सकती है। लखनऊ वाले खिलौने बनाने में निपुण हैं। उनके कोई कोई खिलौने सुन्दर होने के साथ साथ हँसी भी उपजाते हैं जैसे 'बुड्ढा' जिसकी गर्दन हिलती है और उसका जोड़ा। या बाजा बजाने वालों की पार्टी वगैरा। यह सब छोटे पैमाने पर मूर्तिकला के अच्छे नमूने हैं। इसी तरह संगीत में बेतुका या बेसुरा या गर्दभ स्वर गाना सुन कर, या गायक के चेहरे की बिगड़ी आकृति देख कर, या नाट्य करने वाले की बेतुकी उछल कूद से हँसी आ सकती है जो बहुत क्षणिक है। चित्रकला भी कुछ ऐसे दृश्य प्रस्तुत कर सकती है कि हास्य को उत्तेजित करें। परन्तु साहित्यके हास्य का स्तर फिर भी ऊँचा ही है। चित्रकला की एक शाखा आप 'कार्टून' मानते हैं परन्तु कार्टून भी जब भाषा की सहायता लेता है अधिक सरल हो जाता है और चित्त पर चित्र खींचता है। वैसे सम्भव है समझ में भी न आये और कुछ असर भी न डाले। इसके अतिरिक्त कार्टून के लिये भी बहुधा साहित्य की सामग्री चाहिये वरना वह भूखों मर जायगा या मरियल रहेगा। कार्टून तो हमेशा पत्र और पत्रिकाओं में निकलतेही रहते हैं इस लिये इनके बारे में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

साहित्य के दो अंग हैं, (गद्य और पद्य) इस लिये हास्य भी इन दोनों में मौजूद है। मैं कह चुका हूँ कि केवल भाषा स्वयं साहित्य नहीं है। इसका साधारण अर्थ यह लीजिये कि हर एक बात जो हम बोलते हैं या लिखते हैं साहित्य नहीं है। बहुत सी बातें जो हम लिखते या बोलते हैं चाहे वह साहित्यका बिगड़ा हुआ रूपही क्यों न हो साहित्य नहीं बन सकतीं जब तक कि साहित्य उनको अपना न ले। इसको यों समझिये किहास्य का बहुत सा मसाला जो समाजके लिये शुद्ध औरशिष्ट नहीं है अश्लील और गंदा है लिखा नहीं जाता; क्योंकि सभ्य समाज उसको अपनाता नहीं वसे चाहे एकान्तमें या अपनी गोष्ठीमें लोग उससे आनंद होक्यों न लेते हों। लिखनेमें तो वही बातें आती हैं जिन को हम हर जगह हर समाज में निस्संकोच और निर्भीक होकर पढ़ सकें और समाज को लाभ हो। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी बहुत सी पुस्तकें हैं जो सभ्यता को ठेंगा दिखा कर रौंद रही हैं; परन्तु वे या तो चोरी चोरी छपती और बिकती हैं या कम से कम अच्छा साहित्य नहीं मानी जातीं। ऐसी पुस्तकें अंग्रेजीमें भी हैं और अब हिन्दी और उर्दू में भी मिलेंगी। परन्तु सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् को बिलकुल उपेक्षा की दृष्टि से भी नहीं देखा जा सकता। और यदि ऐसा साहित्य कभी बन भी जाय तो वह शिष्ट और सुन्दर नहीं माना जायगा। उसमें कम से कम ग्राम्य दोष तो मानेंगे ही।

अब मैं हास्य का साहित्य के इन दोनों अंगों में अलग अलग ढूँढ कर लिख रहा हूँ।

## हमारे साहित्य में हास्यरस के रूप

### क—( गद्य में )

हमारे साहित्य में हास्य रस गद्य में भी है और पद्य में भी गद्य में वह भिन्न भिन्न शाखाओं में भिन्न भिन्न रूप में

मिलता है। उसको एक एक करके देखिये :—

नाटक सच पूछिये तो गद्य और पद्य का एक मिश्रित रूप है। कुछ लोगों ने पद्य ही में नाटक लिखे हैं (नौटंकी को जाने दीजिये) और वह प्रचलित भी हुये; परन्तु नाटक

१ नाटक वस्तुतः गद्य की चीज़ है और वहीं वह स्वाभाविक और अधिक सुन्दर रूप में मिलता है। नाटकों में संस्कृत से लेकर अभीतक जितने अच्छे लिखे गये कुछ अंश हास्य के लिये अवश्य रक्खा गया। शकुन्तला आदि में भी विदूषक के लिये स्थान है। हिन्दी में हास्य में ही पूरे नाटक प्रहसन लिखे गये हैं और अच्छे हैं। हँसी भी आती है और समाज का सुधार भी होता है, और नाटक सुधार का एक अच्छा साधन है भी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की "अंधेर नगरी" जिसका कुछ भाग यहाँ उद्धृत करेंगे अच्छा नाटक है। श्री जी, पी श्रीवास्तव ने मोलियर से प्रभावित होकर बहुत से नाटक; 'मरदानी औरत' 'मार मार कर हकीम' आदि लिखे जो प्रसिद्ध हैं और बहुत दिनों तक खेले भी गये। नाटकों में चूंकि बहुत समय लगता था और जनता रात का इतना समय नष्ट नहीं कर सकती; इस कारण छोटे नाटक जिनमें केवल एकही अंक होता है (एकाङ्की नाटक) पहले अंग्रेज़ी में फिर हिन्दी उर्दू में भी पैदा हुये। इसमें "अश्क" उग्र, भगवती चरण वर्मा और यशपाल आदि ने (जहाँ वे किसी पार्टी के लिये नहीं लिखते) कुछ अच्छा काम किया है। कालेजों और पाठशालाओं में इस प्रकार के नाटक खेलने के लिये अधिक सुविधा रहती है। इसमें समय कम लगता है और विद्यार्थियों का समय कम नष्ट होता है। प्राचीन काल में-विशेष कर नवाबी काल में-नकलों का बहुत रवाज था जो महफ़िलों में नाच रङ्ग के बीच में या स्वतन्त्र रूप से प्रहसन के ढंग में की जाती थीं परन्तु इनका

कोई प्रामाणिक साहित्य नहीं मिलता । लखनऊ के भाँड अभी मुर्दा घसीट रहे हैं अवश्य ।

अब आज कल बड़ी बड़ी कहानियों के लिखने की प्रथा उठ गई है । केवल छोटी छोटी कहानियाँ लिखी जाती हैं । तोता मैना का जमाना खत्म हो गया । श्री

२ कहानी जी. पी. श्रीवास्तव की 'लम्बी दाढ़ी' और 'पितर्स' चोगताई, फ़रहतउल्ला बेग आदि की कहानियाँ लिखी गईं जो मनोरंजन भी करती हैं और सुधार भी । इनके भी कुछ अंश यहाँ मिलेंगे । इस प्रकार की कहानियों में उर्दू वाले प्रायः अधिक सफल हुये हैं और हिन्दी में श्री अन्नपूर्णानन्द जी । कहानियों के अलावा उपन्यास भी लिखे गये । उर्दू में फसाना आजाद एक बहुत बड़ा ग्रन्थ है जिसमें 'लघुलेख' भी बहुत से मिलेंगे; परन्तु उसको उपन्यास ही कहेंगे ।

३ उपन्यास उस समय जब 'सरशार' ने यह पुस्तक लिखी लखनऊ में इस रंग की बड़ी धूम थी और "पंच" में ऐसे बहुत लेख निकलते थे । सम्पादक सज्जाद हुसेन थे । इन्हों ने भी कई उपन्यास लिखे जैसे 'तरहदार लौंडी' 'अहमक़ुल लजी' वग़ैरह । इनमें उस काल के समाज का चित्रण है जो अब शायद बहुत पसंद न किया जाय ।

हिन्दी में इस प्रकार के निबंध कम हैं । कभी कभी पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं* श्रीअन्नपूर्णानन्द और हरिशंकरशर्माने कुछ लिखे हैं वह पर्याप्तनहीं हैं । पत्र साहित्यमें श्रीविजयानन्द जी की "दूबेजी की चिठ्ठी" कुछ समय

४ लघु लेख और पत्र साहित्य तक 'चाँद' को चमकाती रहीं । अब शायद टिकट के दाम बढ़ जाने के कारण लोग कम लिखते हैं

यह विशेष कर उर्दू की चीज है मगर दिमाग, रखने वाले जिन्दा दिल, जिनको भाषा पर अधिकार हो इससे कैसे अलग रह सकते हैं। हिन्दी में भी आगई।

२ फिक्रे बाजी यह एक प्रकार का व्यंग है जो एक ही दो वाक्यों में अपना काम कर जाता है। विद्वानों का व्यंग अच्छा होगा दूसरों के व्यंग से। 'अवध पंच' में इसका बड़ा जोर रहा। अब आज कल पत्रों में 'फुलझड़ी' या 'तरंग' कह कर ऐसी फिक्रेबाजी बहुत रहती है। जैसे आपका कोई मित्र चोरबाजारी से खूब धन इकट्ठा कर रहा हो तो आप उससे कह सकते हैं कि "कहिये आज कल तो पौबारह हैं" यह सुन कर मुस्करा देगा। हाँ, यदि पचा न सका कि "यह अभियोग लगाते हैं" और बुरा मान गया, तो चाहे न भी कहे उसके चेहरे से यह मालूम होगा कि कह रहा है "तुम्हारे बाप का क्या लेलिया" यह उसकी सभ्यता पर निर्भर है, कि हँस कर टाल दे या कोई उग्र रूप धारण करे। सरकार और सरकारी कर्मचारियों पर इस प्रकार की फिक्रेबाजी जनता को प्रिय होती है, इस लिये अधिक होती भी है। और कभी कभी उससे सुधार भी हो जाता है और देश या रा... को लाभ भी होता है।

यह भी उर्दू ही की ईजाद है। यह बहुत क्षणिक है, इस कारण फिक्रेबाजी और फब्ती दोनों अपना स्वतंत्र साहित्य नहीं बनासकती। दूसरों की महफिल में घुस कर आनंद

६ फब्ती पैदा करती हैं। फब्ती केवल हँसाने वाली उपमा है जिसका हँसाने के अतिरिक्त न कोई ध्येय है न अर्थ। जैसे किसी की खिचड़ीदार मूँछ को देख कर कह देना कि "गिलहरी निगल गये हैं दुम बाकी रह गई है" फब्ती होगी। मनोरंजनके लिये बच्चे बूढ़े सभी इस प्रकारकी फब्ती कहते हैं। असह्य कम होती हैं इसकारण बुढ़की ना भी कम रहता

है। इस हँसी में संत महात्मा भी भाग ले सकते हैं। किसी की सफाचट दाढ़ी और खोपड़ी पर लम्बी चोटियाँ देख कर कोई संत ही "नारद जी पधार रहे हैं" कह दे तो बुरा मानने वाली बात न होगी।

छोटे-छोटे किस्से कहानी जिन में शब्द के दूसरे अर्थ लेकर या बात में बात पैदा करके (wit) हास्य का रूप दिया गया हो या केवल सवाल जवाब या और कोई साधारण हास्य पैदा किया गया हो चुटकुले कहलाते हैं। इन्हीं को उर्दू में लतीफे भी कहते हैं क्योंकि यह सूक्ष्म चीज हैं और आनन्द देते हैं। यदि अर्थ में कोई बारीकी या किसी विचार में कोई अनोखापन या भोलापन आ जाता है तो अच्छा मालूम होता है। अंग्रेजी के लतीफे प्रायः अच्छे और उच्च कोटि के होते हैं। हिन्दी में अकबर और बीरबल के नाम से घृणित से घृणित चुटकुले कहे जाते हैं जिनमें से कुछ तो इस योग्य भी नहीं कि लिखे जा सकें। विद्वानों को तो ऐसे लतीफों में आनंद आयेगा जो मनोविज्ञान का निरीक्षण करायें या शब्द और अर्थ के समन्वय में कोई सुन्दर युक्ति या विलक्षणता दिखायें। उर्दू में ग़ालिबके बहुत से लतीफे मशहूर हैं उनको फिर लिखूँगा। यहाँ पर कुछ दूसरे लतीफे आपके मनोरंजन के लिये लिख रहा हूँ।

७ चुटकुले (लतीफ़े)

१ एक इंस्पेक्टर साहेब किसी पाठशाला का निरीक्षण करते हुये जब दसवीं कक्षा में पहुँचे तो विद्यार्थियों से बोले "तुम लोग कोई प्रश्न करना चाहो तो मुझसे कर सकते हो" एक लड़का झट खड़ा हो गया। इंस्पेक्टर साहब ने कहा "हाँ हाँ कहो, क्या पूछते हो ?" लड़के ने कहा "आप यहाँ से कब जाइयेगा ?"

२ एक बच्चे ने अपनी माँ से पूछा, "अम्मा ! क्या स्याही

बहुत मँहगी आती है ?" माँ ने कहा "नहीं बेटा !" बच्चे ने कहा "तो फिर आप धोती पर स्याही गिरजाने से क्यों रंजीदा हैं ?"

३ एक देहाती को मोटर पर चढ़ने का बड़ा शौक़ था शहर पहुँच कर किराये की बस पर सवार हुआ। वह उसकी चाल पर बहुत प्रसन्न था और प्रशंसा कर रहा था कि सहसा मोटर सड़क के किनारे एक पेड़ से टकरा गई और रुक गई। देहाती को चोट तो लगी नहीं इस कारण झट उतर कर मोटर ड्राइवर से हँसते हुये पूछा "चाल तो बड़ी मतवाली है मगर जहाँ पेड़ नहीं होते वहाँ कैसे रोकते हो ?"

४ पुलिसमैन (ड्राइवर से) तुम्हारे पास लाइसेंस है ?

ड्राइवर–जी हाँ, मेरी जेब में है।

पुलिसमैन—अच्छी बात है। जाओ देखने की जरूरत नहीं। अगर न होता तो मैं अवश्य देखता, समझे।

५ मिस साहबा नाच के हाल से क्रोध में भरी हुई निकलीं और अपनी माँ से बोलीं "अम्माँ ; अब आज से मुझे मर्द पर बिल्कुल विश्वास नहीं रहा" माँ ने कहा क्या बात है ? ख़ैरियत तो है ?" उन्हों ने उत्तर दिया "हाल में मैं जब किसी युवक के साथ नाचती हूँ तो देखती हूँ कि मेरा मँगेतर किसी न किसी युवती के साथ नाच रहा है। भला इनका कोई क्या विश्वास करे ?"

इन सब के अतिरिक्त अमीर खुसरो नें उर्दू में अनमिल ढकोसले, दोसोख़ने (सहसोखने भी) आदि कहेथे वह भी मिलते हैं इन में से अनमिल और ढकोसला तो केवल

= ढकोसलादि ढकोसलाही रह गये, परन्तु दोसोख़ने जरूर बच्चों के खेल में क़ायम रहे और पहेली के साथ साथ चलते रहे। अब वे भी कमजोर पड़ गये हैं दोसोखने

का अर्थ केवल यह है कि ऐसे दो वाक्य जिनका उत्तर एक ही हो जैसे :—

१ जूता क्यों न पहना, संबोसा क्यों न खाया

( तला न था )

२ अनार क्यों न चक्खा, वज़ीर क्यों न रक्खा

( दाना न था )

इसी प्रकार सेहसोख़ने भी होते हैं।

इनमें चूंकि पहेलियों की भाँति कुछ सोचना पड़ता है इस कारण हँसी के साथ साथ सफल होने पर मजा भी आता है। परन्तु इनके बनाने वाले भी नहीं है, इस लिये ये अपनी मौत मर रहे हैं। पहेलियाँ अभी तक जीवित हैं और बनती जा रही हैं चाहे वह खुसरो की तरह अच्छी न भी हों। बच्चों को पहेलियों में बहुत आनन्द आता है।

अनमिल कई बेमेल वाक्यों को इकट्ठा करना है जिनका अर्थ निकालना कठिन है। अब इसको कोई जानता भी नहीं जैसे :—

बी मेहतरानी खाना पकाओगी कि संगाही सा रहूँ। ऐसे उदाहरण ढूढ़ने की जरूरत ही नहीं। जब तक आप इस पुस्तक को पढ़ रहे हैं अनमिल की क्या कमी। ढकोसला है कई बे जोड़ और बे मेल बातों को मिला कर एक ही में कह देना। 'आजाद' ने लिखा है कि अमीर ख़ुसरू एक बार दरबार जाते थे रास्ते में प्यास लगी। कुयें पर चार पनिहारिनें पानी भर रही थीं उनसे पानी माँगा। एक ने कहा 'अरे यह वही ख़ुसरू है जिसकी पहेलियाँ बूझती हो। शायर है "अब सबने जिद की कि कुछ बनाकर सुनादो। ख़ुसरू ने कहा "अरे भाई किस चीज पर सुनादूँ?" एक ने 'खीर' का नाम लिया, दूसरी ने चर्खे का, तीसरी ने कुत्ते का और चौथी

ने ढोल का। खुसरो ने कहा सुनो :—

खीर पकाई जतन से, चर्खा दिया जला।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा ॥
ला पानी पिला ॥

यह है ढकोसला जो पद्य में होना चाहिये था मगर जब उसका केवल मक़बरा ही बनाना है तो कहीं भी लिख दिया जाय कुछ हर्ज नहीं। इनके पश्चात अब हास्य जिन रूपों में पद्य में मिलता है सुनिये।

## ख— पद्य में हास्य रस

—❀❀❀❀—

अमीर खुसरो के बारे में लिख चुका हूँ कि इन्हों ने पहेलियाँ बनाई। ये फ़ारसी के बहुत बड़े कवि थे। भारत में इतना बड़ा फ़ारसी का कवि शायद नहीं हुआ। यह बड़ी कुशाग्र और प्रखर बुद्धि के मनुष्य थे। 'ख़ालिक़ बारी' के यही लेखक माने जाते हैं। भारत में ग़ज़ल का प्रचार यहाँ की भाषा में सर्व प्रथम कदाचित इन्हीं ने किया अर्थात उर्दू का बीज इन्हों ने बो दिया जो बड़ा वृक्ष होकर अब पानी माँग रहा है. ख़ुसरो ने कुछ मिसरे फ़ारसी के और कुछ यहाँ की भाषा के लिखे जिस से अर्थ अच्छा निकलता है और उर्दू की जड़ भी पड़ती है; मगर खिचड़ी होने के कारण हास्य का सामान भी एकत्रित हो जाता है। उनकी ग़ज़ल के दो शेर यह हैं :—

१ ज़ेहाले मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल
दुराय नैना बनाय बतियाँ।
कि ताबे हिज्राँ न दारम ए जाँ
न लेहु काहे लगाय छतियाँ।

२ शबाने हिज्राँ दराज चूं ज़ुल्फ
व रोजे वस्लत चो उम्र कोतह।
सखी पिया को जो मैं न देखूं
तो कैसे काटूं अँधेरी रतियाँ॥
इत्यादि॥

पहेली को बुझौवल भी कहते हैं। इसमें किसी चीज के संकेत द्वारा प्रकट करते हैं और उसका नाम पूछते हैं। मुकरनी भी इसी प्रकार की एक पहेली है परन्तु उसमें उत्तर (मुकर कर कि यह नहीं यह है) दे दिया जाता है बच्चों को ये चीजें बहुत पसन्द हैं। यह यों तो कोई हास्य की चीज नहीं, क्योंकि प्रश्न के रूप में है; परन्तु इसकी भाषा और संकेत हास्य प्रद और अनोखे ढंग के होते हैं। इस कारण हास्य के अन्तरगत समझ सकते हैं। इसके उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है फिर भी मनोरञ्जन के लिये एक दो लिख देता हूँ।

१ पहेली

पहेली १ बीसों का सर काट लिया, ना मारा नाख़ून किया॥
(नाख़ून काटने वाली 'नहनी'
'नाख़ून किया' कह भी दिया है)

२ फ़ारसी बोली आई ना, तुर्की सोची पाई ना।
हिन्दी बोलते आरसी आय, मुँह देखो जो इसे बताय
(शीशा है जो हर मिसरे में है)

३ तर बरसे एक तिरिया उतरी, उसने बहुत रिझाया।
बाप का उसके नाम जो पूछा 'आधा' नाम बताया॥
आधा नाम पिता पर प्यारा बूझ पहेली मोरी।
अमीर ख़ुसरू यों कहें अपने नाम 'नबोली'॥
(निबौली है)

अमीर ख़ुसरो की पहेलियों के अतिरिक्त आज कल

सैकड़ों अच्छी और बुरी पहेलियाँ प्रचलित हैं।

मुकरनी १ सगरी रैन मोहि संग जागा।
भोर भई तब बिछुड़न लागा॥
उसके बिछुड़े फाटत हिया।
ए सखी साजन नासखी, दिया॥

२ वह आवे तब शादी होय।
उस बिन दूजा और न कोय॥
मीठे लागें वाके बोल।
ए सखी साजन, ना सखी ढोल॥

३ सर्व सलोना सबगुन नीका,
वा बिन सब जग लागे फीका।
वाके सर पर होवे कौन,
ए सखी साजन नासखी, लौन॥

मुकरनियों में तीन मिसरों तक आनंद रहता है। चौथे में उसका उत्तर रहता है। एक सखी पूछती है तो दूसरी झट से 'साजन' कह देती है। तो वह मुकर कर उसको ठीक उत्तर दे देती है। इसमें पहेलियों वाला वह अन्दाज़ कि "साफ़ छिपते भी नहीं सामने आते भी नहीं" नहीं रहता है इस वजह से वह आकर्षण और गुदगुदी नहीं है। पहेली और मुकरनी चूंकि खेल की चीज़ है इस कारण साहित्य का कोई मुख्य अंग नहीं बन सकती; और फिर यह खेल भी बच्चों तक सीमित है। मगर इसमें संदेह नहीं कि यह हमारे साहित्य के दूसरे स्थान पर चटनी है जिसको पूर्णतः भुलाया भी नहीं जासकता है।

हजो- मद्ह अर्थात प्रशंसा के विरुद्ध है और किसी

की बुराई और अवगुण वर्णन करने के लिये लिखते हैं। यह क़सीदा-किसी की तारीफ़ करना-का एक अंग है।

१ हजो फ़ारसी और उर्दू के पुराने कवि जब किसी से असंतुष्ट होते थे तो चाहे वह राजा, बादशाह, कीड़ा मकोड़ा, जानदार या बेजान, कुछ भी हो उसकी बुराई में कविता लिखते थे जिसको हजो कहते थे। इसमें हँसी का सामान भी बहुत आजाता था; परन्तु कवि लोग ऐसी हास्य की कविताओं को-संस्कृत और हिन्दी में भी-अच्छे और ऊँचे साहित्य की पदवी नहीं देते थे जैसे शरीफ़ और विद्वानों और पंडितों में किसी मसखरे और विदूषक को बहुत ऊँचा स्थान नहीं मिलता था। आज कल का मामला दूसरा है। 'चार्ली चेप्लिन' को बड़े बड़े शरीफ़ और "पंडित" लोग ख़ाहमख़ाह सलाम करते और आशीर्वाद देते फिरते हैं। उर्दू में सब से पहिले सौदा ने इसमें कविताएं लिखीं और उस समय से अंग्रेजों के दौरदौरा तक यही हास्य का मुख्य रूप बनी रही। हजो केवल 'प्रबंध काव्य' के रूप में लिखी जाती है। फुटकर बंद नहीं हैं। आगे चल कर जब अंग्रेज़ी का प्रभाव पड़ा तो उर्दू ने भी रंग बदला और इस में आप जानते हैं उर्दू गिरगिट से भी दो चार मील आगे है। अब उर्दू में भी वही सब बातें हैं जो धीरे धीरे हिन्दी के "हास्यावतार" गण हिन्दी में प्रस्तुत करते हैं। दोनों में अशिष्टता और अश्लीलता की सड़क पर दौड़ में कौन आगे है इसका निर्णय आप स्वयं करेंगे। 'सौदा' और 'इंशा' की हजो आगे मिलेंगी इस कारण यहाँ नहीं दे रहा हूँ।

ग़ज़ल में प्रेम, प्रेमी और प्रेमिका की प्रशंसा की जाती है। इस कठिन मार्ग को दुस्तर बताया जाता है और प्रेमी की दुर्दशा का वर्णन होता है। अरन्तु अधिकांश प्रेमिका अर्थात्

२ ग़ज़ल माशूक़-जिससे अगाध प्रेम हो के रूप, सौन्दर्य उसकी

उदासीनता और निर्दयताका वर्णन होताहै। हज़ल, ग़ज़लकी उल्टी हुई सूरत है। जैसे हज्व क़सीदा की है। ग़ज़ल में भी चूंकि माशूक़ से हटकर कुछ और बातें करलेते हैं इस लिये हज़ल में भी यह गुञ्जाइश है। बहुधा 'माशूक़' की हँसी और "खिल्ली" उड़ाई जाती है या आशिक़ की; परन्तु और दूसरे विषय भी छू लिये जाते हैं। इस प्रकार हज़ल भी व्यंग का एक रूप है यद्यपि इसकी परिधि कुछ छोटी और सीमित है। जैसे यह दो तीन शेर देखिये :—

१ अगर हुस्न है तो जवानी नहीं है।
तो है पायजामा मियानी नहीं है॥
२ बहुत खोदने पर भी मुँह से न बोला।
जो देखा तो हुक्के में पानी नहीं है॥
३ अगर हाथ धोये तो अंधेर होगा।
अरे तेल है तेल, पानी नहीं॥

इत्यादि।

अकबर, ज़रीफ़ आदि ने बहुत हज़लें लिखी हैं।

होली में आपने देखा होगा कि भले चंगे सुन्दर और रूपवान आदमियों (औरतों के बारे में मैं न लिखूँगा) की क्या सूरत बन जाती है। पाउडर और रंग से हुलिया

४ व्यंग और पैरोडी। बदल जाती है और ऐसी कि पहिचानना कठिन हो जाता है। उनको इस बदली और बिगड़ी हुई दशा में देख कर हँसी भी आती है। उनको चाहे न आती हो जो स्वयं इस रंग में रंगे रहते हैं। खैर। इसी तरह से अच्छी भली कविता को जब किसी रंग में इस प्रकार रंग देते हैं कि उसका असली रूप छिप जाता है और बाहरी रूप हँसने योग्य हो जाता है तो यही बदला हुआ रूप पैरोडी कहलाता है। जब कवि अपनी या दूसरे की कविता (और शायद इसी में

मशा भी है ) के कुछ शब्द बदल कर उसके असली अर्थ को बिगाड़ कर कोई हास्यप्रद अर्थ पैदा करता है तो वह परोडी होती है। इस प्रकार पेरोडी के लिये 'मूल कविता' की अर्थात आधार की आवश्यकता है। यह सम्पूर्णतया स्वतंत्र नहीं हो सकती। परोडी गद्य और पद्य दोनों में हो सकती है। एक शेर में, बन्द में, कविता में हर जगह चाहे छोटी हो चाहे बड़ी पेरोडी हो सकती है।

व्यंग हँसी हँसी में चोट करने को कहते हैं और यह शब्दों में, वाक्य में और पूरी कविताओं में हर जगह मिल सकता है। पूरी कविता व्यंगमें लिखी जाती है तो उसका प्रभाव जनता पर, समाज पर और सरकार पर पड़ सकता है और उससे कुछ लाभ भी हो सकता है। सुधार के लिये यह अच्छा साधन है परन्तु अधिक तीक्ष्ण होने पर उलटा प्रभाव भी डाल सकता है। व्यंग पेरोडी के अन्दर भी मिल सकता है और काव्य के प्रत्येक रूप दोहा, चौपाई, घनाक्षरी सवैया, गीत, गजल, क़सीदा, मसैया आदि में विराजमान है। व्यंग ही वास्तव में हास्य है। व्यंग साधारण हास्यसे ज़रा ज्यादा चटीला और सारगर्भित होता है और इससे किसी किसी के हृदय पर चोट भी लग सकती है और घाव भी हो सकता है। इस कारण सुनने और पढ़ने वालों को ज़रा दिल संभाल कर, खुशमिज़ाज बन कर या परमहंस बन कर सुनना और पढ़ना चाहिये और क्षमा की दो एक कोड़ी जेब में रहे तो अच्छा ही है! जो चीज चुभेगी नहीं वह सुधार क्या करेगी? अरे भैया "कड़वी औषध बिनु पिये मिटे न तनकी पीर"। होम्यो पैथी वाली बात न चलाइये। सुनते हैं एक दफ़ा नवाब सआदत यारखाँ ने एक दिन दरबार में जब लोगों ने बादशाह के आला और पाक खानदान का ज़िक्र किया फ़रमाया "तो भई इस तरह गोया हम भी

"नजीबुल तरफैन" है।" जिसका अर्थ है दोनों तरफ से ख़ालिस और पाक। सय्यद इंशा के मुँह से निकल गया "जी हुज़ूर बल्कि अंजब।" नवाब साहब उस वक्त से बिगड़े तो अन्त तक ख़ुश न हुये और इंशा की मिट्टी पलीद हो गई। इंशा बिचारे ने तारीफ़ की थी और 'नजीब' को 'अंजब' कह दिया जिसका अर्थ हुआ बहुत ही ख़ालिस (शुद्ध) और पाक परन्तु इंशा का दुर्भाग्य था कि वह ऐसा शब्द कह गये जिसके उलटे अर्थ भी होते थे और नवाब साहब चूंकि हरम के पेट से थे (ब्याहता से नहीं) इस कारण उन्हों ने उसको व्यंग समझा और दिल में आग लग गई। इंशा ने हँसी की बातें करके लाख टालना चाहा मगर तीर निकल चुका था। सर पकड़ कर रह गये।

मैं व्यंग और पैरोडी के उदाहरण यहाँ नहीं लिखना चाहता; क्योंकि आगे कवियों की कृतियाँ मिलेंगी-परन्तु एक बहुत पुरानी प्रचलित कहानी लिख रहा हूँ जिससे पैरोडी और दूसरी कविताओं में अन्तर मालूम हो जायगा।

एक कवि ने टहलते टहलते एक मिसरा मौज़ूं किया और झपट कर अपने कवि मित्र से बोले "यार! मिसरा बहुत चुभता हुआ निकल गया है; मगर गिरह नहीं लग रही है।" मित्र ने पूछा "ज़रा इरशाद हो, मैं भी सुनूं।" फ़रमाया "दर्द पैदा हो गया याँ हाथ में वाँ पाँव में।" मित्र ने सोच समझ कर मिसरा लगाया "रात भर तबला बजाया और वह नाचा किये। दर्द पैदा हो गया याँ हाथ में वाँ पाँव में॥" मिसरा तो लग गया मगर उनके विचार से उम्दा नहीं था। बन्दिश चुस्त थी, मतलब साफ़ था मगर फिर भी वह हँसते हुये रो रहे थे कि "मेरे मिसरे को तुमने नापाक कर दिया।" वह बिचारे प्रेम का कोई विचित्र चित्र खींचना चाहते होंगे, दर्द और टीस पैदा करना चाहते होंगे कि यहाँ सब पर पानी फिर गया और बात हँसी में उड़ गई

अब इसमें यह देखिये कि एक शेर में दो हिस्सेदार हैं। यदि यही पूरा शेर किसी एक का होता तो हास्य था परन्तु यह हास्य दूसरे ने मूल कविता पर बढ़ा कर पैदा किया इस कारण पैरोडी का हास्य हुआ। इसमें प्रेमीकी सेवा का मज़ाक़भी उड़ाया है कि आप आशिक़ क्या तबलची हैं इस कारण व्यंग भी है। इस प्रकार साधारण हास्य, पैरोडी और व्यंग में अन्तर स्पष्ट है। व्यंग मौक़ा पाकर पहुँच ही जाता है चाहे किसी को कुछ बुराही क्यों न लगे। बुरा लगना तो नहीं चाहिये—

जिन्दगी जिन्दादिली का है नाम।
मुर्दा दिल खाक जिया करते है॥

उर्दू शायरी में रेख़ती का भी जन्म हुआ; मगर यह बहुत जल्द ही मर भी गई। सैय्यद इंशा और रंगीन ने बेग-माती उर्दू में औरतों के भाव और उन्हीं के विचार रेख़ती व्यक्त करते हुये कुछ ग़ज़लें लिखीं। उर्दू शायरी-रेख़ता में मर्दों के उद्‌गार और उनकी ही भाषा लिखी जाती थी चाहे कोई स्त्री ही कवि क्यों न हो! इस कारण जब इस प्रकार की 'ज़नानी' शायरी आई तो उसका नाम भी स्त्रीलिंग रेख़ता से रेख़ती हो गया। जैसे रंगी का शेर है:—

कोई घरकी रंगीं के तहक़ीक़ करलो।
यहाँ से है कै पैसे डोली? कहारो!॥

इंशा—मरदुवा मुझ से कहे है चलो आराम करें।
जिनको आराम वो समझे है वो आराम हो नौज॥

जानसाहब—जाके ससुराल में दुलहा से सनम ख़ानम तुम,
पहिले ही रोज न कर बैठियो इक़रार कहीं?

चूंकि यह शाखा पुरानी नियमित शायरी के विरुद्ध आ गई और इसमें एक विशेष प्रकार की नवीनता भी थी; इस कारण हास्य का मसाला बन गई वरना ब्रज भाषा के काव्य से

बहुत दूर भी नहीं थी और इसमें उन्नति भी हो सकती थी। मगर यहाँ दोनों को एक साथ यानी रेख़्ता और रेख़्ती को स्थान देना सम्भव नहीं, इस कारण ज्योंही नई सभ्यता का इंजेक्शन लगा इसने मुस्कराते हुये संसार त्याग दिया। दो एक मातम करने वाले थे वह भी चल दिये। इनमें से 'जान' साहब प्रसिद्ध हुये जिनका दीवान भी है। सुनते हैं कविता पढ़ते समय उनको दुपट्टा वग़ैरह की आवश्यकता पड़ती थी और सुनने वाले अपने हाथ क़ाबू में नहीं रख पाते थे, वे या तो सर पर होते थे या सीने पर। भगवान की माया! वह भी एक समय था।

इनके अतिरिक्त और भी किसी रूप में हास्य होगा परन्तु इस शोक पूर्ण वातावरण में आगे लिखने को जी नहीं चाहता।



# छठा फाटक

## हास्यरस में धोखा

---

सूत जी बोले हे "भोले भक्तो ! अब मैं तुम को एक महत्वपूर्ण घटना सुनाता हूँ कान लगा कर सुनो । कलियुग में एक उर्दू के शायर हजरत इमाम हुसैन की प्रशंसा लिखने बैठे। उन्हों ने एक मिसरा यह लिखा "गंजे नबी का गौहरे यकता हुसैन है। अर्थात् हुसैन नबी के भंडार का अद्वितीय हीरा है। उनके विचार से यह मिसरा चूंकि बहुत सुन्दर था उन्हों ने अपने एक कवि मित्र को भी सुनाया और दाद चाही। मित्र ने चौंक कर कहा 'भाई' यह 'गंज' का शब्द बदल दो तो मिसरा बहुत लाजवाब होजाय। कवि जी ने कहा "अच्छा सुनिये।"

बहरे नबी का गौहरेयकता हुसेन है।

कहिये अब कैसा हुआ ? मित्र ने कहा " यार ठीक तो यह भी नहीं है ज़रा और कोशिश करो।" कवि जी ने जोर लगाया तो कहा

"काने नबी का गौहरे यकता हुसैन है"

और मित्र का मुँह तकने लगे कि वाह वाह निकले। मित्र ने कहा "अमाँ ! जिस चीज को हम हटाना चाहते हैं उसको तुम बढ़ाते ही जाते हो। मैं जानता हूँ कि 'गंज,' 'कान' और 'बहर' अच्छे लफ्ज़ हैं। एक ही वज्न में भी हैं। माने भी उम्दा निकलते हैं मगर इसको सुन कर कोई क्या कहेगा ? पढने में सम्भव है इसकी ओर ध्यान न जाय पर मियाँ तुमको

ख़ुदा ने दिमाग़ नहीं दिया न सही कान तो दिये हैं। सुनते नहीं हो ईज़ाफ़त † क्या आफ़त ढारही है ?" कवि जी ने कान पकड़ और गिड़गिड़ा कर ख़ुदा और रसूलसे क्षमा माँगी। दुआ क़ुबूल हुई या नहीं इसकी अभी तक मुझे कोई सूचना नहीं मिली।

कवियों-बड़े बड़े धुरन्धर कवियों-से इस प्रकार की त्रुटियाँ अनजान में हो जाती हैं। जब प्रशंसात्मक कवितायें इस हालत में अपना रंग बदल देती हैं तो हास्यमय कवितायें क्या चोला बदलेंगी कहा नहीं जा सकता। इस कारण हास्य लिखने वालों को कदाचित अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। इस प्रकार के दोष बहुत जगह मिल सकते हैं जैसे मतिराम ने लिखा 'मति राम हरी चुरियां खनकी' जिसमें 'मति' अलग है या 'मतिराम' एक है आपही जान सकते हैं। एक साहब ने लिखा।

१ 'मैं बाहर चलूँगा प खाना तो खालूँ'

इसमें ईश्वर जाने बीच में वह कहाँ पर 'कामा' लगायेंगे ? तात्पर्य यह कि इस प्रकार के दोष आ सकते है इस लिये साव-धान रहना ही उचित है, विशेष कर हास्य में, क्योंकि इसको लोग ज़बान पर चढ़ा लेते हैं इस लिये ज्यादा गंदगी न आजाय तभी ठीक होगा। हास्य के ढीले लबादे के अन्दर बहुत कुछ छिप सकता है फिर भी यदि छिपाने के लिये कम ही सामान हो तो ठीक है, ज्यादा होगा तो बाहर झाँकने लगेगा।

२ कविता में एक गुण माना जाता है जिसको 'प्रसाद' गुण कहते हैं जिसका अर्थ यह है कि कविता ऐसे सुन्दर, सरल और सरस शब्दों में होनी चाहिये कि वह सुनते ही दिल में उतर

---

† इज़ाफ़त हिन्दी में सम्बन्ध कारक है 'जैसे देवी जी की दया,' परन्तु का, की, के आदि के बिना भी काम चलता है जैसे साहित्य-सुमन या राम-कृपा आदि।

जाय। उसके अर्थ समझने में कठिनाई न हो। यह एक बड़े धोखे वाली बात है। इस वजह से कि यदि सरलता के विचार से ऐसे शब्द लिखे गये जो बोलचाल में तो आते हैं; परन्तु बहुत घिस गये हैं या केवल बोलने ही में आते हैं और साहित्य उन्हें अपनाने के लिये तैयार नहीं है तो ग्राम्य दोष आजाने का भय रहता है और हास्य में विशेष कर इस पर विचार करने की आवश्यकता है। प्रयत्न यह होना चाहिये कि प्रवाह हो, शब्द सरल हों, अर्थ समझने में कठिनाई न हो, और हास्य भी हो। ऐसा सफल प्रयत्न अवश्य प्रशंसनीय होगा। जैसे अकबर ने माया के साम्राज्य में दुर्बल जीव को फंसा देख कर कहा :-

मजहब ने पुकारा ऐ लोगो अल्लाह नहीं तो कुछ भी नहीं
अकबर ने कहा यह क़ौल ग़लत तनख़्वाह नहीं तो कुछ भी नहीं

अर्थात् यहाँ सब पैसे के लिये मर रहे हैं ईश्वर को कौन याद करता है?

हास्य में शब्दों के अनोखे प्रयोग से या अनोखे शब्दों के प्रयोग से आनन्द आता है पर यदि शब्द ऐसे हुये कि उनको सुनतेही उगालदान उठाने की जरूरत पड़े, या जिनको सभ्य समाज में पढ़ते झिझक पैदा हो, तो उनसे दूर ही रहना अच्छा है ऐसा मेरा विचार है। सुनते हैं पुराने समय में दो बड़े कवियों में चल गई थी। उन्हों ने एक दूसरे का उपहास करने के लिये जो भाषा लिखी थी वह अब पुस्तकों में पूरी लिखी हुई नहीं मिलती। मिर्ज़ा जानजानाँ ने शाह मुबारक आबरू पर जिनकी आँख की कुछ जायदाद क़ुर्क़ हो चुकी थी यह चोट की :—

आबरू की आँख में इक गाँठ है।
आबरू सब शायरों की ... है॥

आबरू ने भी वैसी ही भाषा में उत्तर दिया

क्या करूँ उसके लिखे को कोर मेरी चश्म है।
आबरू जगमें रहे तो जान जाना · · · · है॥

आबरू के यहाँ कुछ कविता भी है मगर अकेले में पढ़ने वाली। जब लिख न सके तो पढ़ेंगे क्या?

अतः इसका ध्यान रखने की बहुत ज़रूरत है कि बाज़ारी भद्दे और अश्लील शब्दों का प्रयोग न हो, चाहे हास्य न हो न सही।

मिर्ज़ा ग़ालिब की एक ग़ज़ल है जिसका मतलब यह है

१ दिले नादाँ तुझे हुआ क्या है?
आख़िर इस दर्द की दवा क्या है?

मैंने इस ज़मीन में खोद खाद की तो यों लिखा :—

१ हाय बुद्धू तुझे हुआ क्या है?
उस हरामी ने कुछ कहा क्या है?

२ उनके चेहरे से उठ गया परदा।
कोयला क्या है और तवा क्या है॥

फिर मेरे दिल ने मुझे धिक्कारा और लानत भेजी कि "अबे तुझे हुआ क्या है? जो ऐसी कविता लिखता है। तुझे कोई हास्य का अवतार लेना नहीं, तो अकारणही क्यों साहित्य को गंदा कर रहा है? ग़ज़ल हो चुकी थी मगर मैंने ग़ल्ती मान ली और कान पकड़े कि क्षमा कीजिये सरकार।" यदि कविता गाली गलौज में बदल जाय तो फिर कविता की आवश्यकता ही क्या है? यह साधनता प्रायः कमज़ोर ही पड़ता है। मिर्ज़ा सौदा की 'हज़ो' भी अधिकांश गाली गलौज के अधिक निकट है मगर फिर भी बड़े शायर हैं इसका कुछ ध्यान रहता ही है। जैसे एक लड़की से बिगड़ गये तो लिखा :—

लड़की वह जो लड़कियों में खेले
न कि लड़कों में जाके डंड पेले

तात्पर्य यह कि कवि को इस मामले में सावधानी से काम लेना चाहिये क्योंकि यहाँ बहुत बड़ा धोखा है। यदि शब्द बहुत अश्लील न हों और उनके सरल अर्थ अच्छे निकलते हों, और कठिन दूसरे अर्थ किसी गंदे दृश्य की ओर संकेत करते हों तो कुछ क्षम्य अवश्य है। वरना भाई ऐसे शब्दों को दूर ही से सलाम-दंडवत-करना चाहिये।

३ यदि शब्द बहुत अश्लील न हों तो उनके अर्थ प्रायः असह्य नहीं होते फिर भी इसका विचार रखना चाहिये कि कविता सभ्यता से गिरी हुई बातों (Bad-taste) का दिग्दर्शन तो नहीं करा रही है अथवा उनकी ओर संकेत तो नहीं कर रही है। इससे बचना भी आवश्यक है। यद्यपि ऐसी कविता उस कविता से जिसके शब्द भी अश्लील हैं अवश्य अच्छी है। फिर भी यदि शब्द और अर्थ दोनों ही अच्छे हों तो क्या हर्ज है? यदि कवि कुछ अधिक परिश्रम से कविता में लालित्य पैदा कर सकता है, अच्छे शब्दों के प्रयोग से सुन्दर अर्थ और हास्य पैदा कर सकता है तो उसको साहित्य की सेवा के विचार में यह कष्ट सहन करना चाहिये। यह मैं जानता हूँ कि अच्छे शब्दों के आडम्बर में गन्दगी छिपाई जा सकती है मगर यह प्रयत्न भी प्रशंसनीय नहीं है। कविता बाल वृद्ध, स्त्री पुरुष, बाप बेटे और शिष्य गुरु आदि सभी के लिये है और सब के पढ़ने योग्य होनी भी चाहिये। जैसे मैंने एक गंदे दृश्य को—जो बहुत गंदा नहीं है ऐसे शब्दों में धोखा देकर इस प्रकार छिपाने का प्रयत्न किया है कि सीधी निगाह शायद वहाँ न पहुँचे। बात सिनेमा हाल की है कि

चित्र पट पर सामने लैला व मजनूँ बड़बड़ाते।
और अंधेरे में बगल में कौन हैं ये खड़खड़ाते।

अब रहा जाता नहीं मैं भी खँखारा चाहता हूँ ।
मैं तुम्हारी मूक वाणी का इशारा चाहता हूँ ॥

परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि दृश्य अगर अच्छा नहीं है तो भी छिप जायगा। हाँ, हलका सा पर्दा रहेगा तो वह गंदगी कुछ कम अवश्य हो जायगी । मेरी सब से गंदी कविता वह है जो मैंने 'चूरन' पर लिखी है ; परन्तु बच्चे शायद उसको समझ भी न पायें और दूसरे अर्थ लगायें । रह गये बुजुर्ग लोग तो उनकी तो यह चीज़ ही है, उन्हीं को भेंट है । मैं यहाँ उसे लिखने की धृष्टता कर रहा हूँ क्षमा कीजियेगा ।

## मेरे चूरन ! मेरे चूरन ! !

१ कुछ झगड़ा है न बखेड़ा है । आँवला व हर्र बहेड़ा है ।
औ 'हींग नमक धनियाँ मिश्रण । तू मित्र राष्ट्र का बेड़ा है ॥
कर 'दमन शक्ति से सिंह नाद'। तू सहज रूप साम्राज्यवाद ।
तू पेट भरे कमजोरों का है अनायास ही 'पूज्य पाद' ॥
२ बैंगन कटहल या कद्दू हो । बर्फी बालाई लड्डू हो ।
हो मुर्गा भेड़ा या बकरा । या साग पात खरखद्दू हो ॥
तू सबपर कर वह बज्रपात । भूलें सब अपनी करामात ।
औ' हो जायें पानी पानी! केवल तेरी रहजाय 'बात' ॥
३ बाँसुरी भी सुन्दर बाजा है । नरसिंहा सबका राजा है ॥
होजायगा सबका बोलबंद । तू जिसदम आन विराजा है ।
तोपें दगती बम छुटता हो । औ' दुर्ग धैर्य का लुटता हो ॥
हो 'वायुयान' की वैसी हवा । औ' नाकदवी दमघुटता हो ।
४ तू इनसे कर वह प्रलय युद्ध, अन्तर में होकर महाक्रुद्ध ।
इक दम में सब होजाँय 'हवा,' होजाये वातावरण शुद्ध ।
जितने हैं नौकर सरकारी, है पेट की सबको बीमारी ।
हैं अक्सर पड़े पिछौने पर, करते उगल की तैयारी ।

"भगवान-क़सम गंगा-किरिया,"
तुमसे कहता हूँ मजबूरन—मेरे चूरन २ ॥

जब विषय बहुत अच्छा नहीं होता तो इस प्रकार गोरख धंधे में छिपा कर कहने में कुछ बचाव रहता है वरना अश्लील हो जाता है। श्रेष्ठ हास्य तो वही होगा जो व्यंग्यार्थ द्वारा उत्पन्न हो और जो संकेतों द्वारा कुछ समझावे, हँसाये भी और सुन्दर दृश्य भी दिखाये और यों तो केवल भद्दा उपनाम रख लेनेसे भी हास्य रस के कवि हो सकते हैं। उर्दू वालों के लिये पूरी हिन्दी कविता और कवि सम्मेलन ही हास्य पैदा करते हैं, शहरके रहने वालों के लिये अवधी में जो कुछ कहा जाता है सब हास्य है। श्री वंशीधर शुक्ल की सुन्दर अवधी की करुण रस की कविताओं पर भी कवि सम्मेलनों में कुछ लोग हँसकर प्रसन्नता से तालियाँ बजाने लगते हैं; परन्तु यह सब समझदारों और विद्वानों के काम नहीं। यदि कविता है तो उसके समझने वाले भी हैं, और यदि कम हैं तो ऐसा वातावरण बनाने की आवश्यकता है कि लोग कविता ही को कविता मानें और अशिष्ट, अर्थ हीन और अशुद्ध कविताओं से घृणा या कम से कम अरुचि प्रकट करें। समझदारों की संख्या बढ़ेगी अवश्य चाहे कुछ समय लगे।

४ कभी कभी ऐसा भी होता है कि कवि किसी विचार को सरलता से प्रस्तुत करने के लिये कुछ नामों का सहारा लेता है। इसके लिये कल्पित नाम अच्छे होते हैं जैसे बुद्धू, शेख और मिस इत्यादि। ये नाम जाति वाचक बन जाते है और किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। ऐसा नाम कदापि नहीं लाना चाहिये जिसके लिये कचहरी देखनी पड़े; क्योंकि नाम न होने पर ही लोग 'टोपी चुस्त' समझ कर पहन लेते हैं और झगड़े या वमनस्य की जड़ पड़ जाती है तो फिर नाम लिखने पर क्या न होगा? प्रशंसा कीजिये कोई कुछ नहीं कहता गद्गद होकर

सुनते रहते हैं और रस सुनने के लिये उत्सुक रहते हैं; परन्तु यदि उन पर आक्षेप हो, उनकी शान पर आँच आये तो प्रलय के नज़दीक घसीट लाने का प्रयत्न करेंगे। ऐसे संकेत भी जिनसे कोई व्यक्ति विशेष ही लक्ष्य बने नाम ही के बराबर हैं। उनसे भी यथासम्भव बचना ही अच्छा है। नाम लिख देना कभी कोई गुण नहीं माना जाता। हाँ किसी के विरुद्ध बुख़ार निकालना ही ध्येय हो तो दूसरी बात है। लोगों ने बादशाह सलामत तक को नहीं छोड़ा; हालाँकि 'सौदा' की हजो 'बेनी' की कविता से कम दुखदाई रही होगी। अकबर ने यह काम अच्छे ढंग से निबाहा है जैसे :—

बुद्धू मियाँ भी हज़रते गाँधी के साथ हैं।
इक मुश्ते ख़ाक हैं मगर आँधी के साथ हैं॥

यहाँ बुद्धू से चाहे आप एक व्यक्ति विशेष समझ भी गये हों कि कौन है; परन्तु साधारण अर्थ भी तो निकलते हैं।

५ ऐसे विषय भी जो सभ्यता से गिरे हुये हों उनको न लेना ही अच्छा है। यों तो हास्य में आप ईश्वर को भी बुरा भला कह सकते हैं अपने पूर्वजों की भी ख़बर ले सकते हैं; या सारा क्रोध या जोश अपनी पत्नी पर उतार सकते हैं; परन्तु ईश्वर का दिया सारा संसार पड़ा है यदि इन पर आप कृपा कर सकें, छोड़ दें तो क्या हानि है। चिरकीन ने ऐसा विषय लिया कि अपने इष्ट देव की जीवन भर पूजा की और उनका कोई रक़ीब अभी तक पैदा नहीं हुआ। उनकी रुचि थी, उनकी अपनी पसंद थी हम और आप कहने और मना करने वाले कौन होते हैं। हाँ, उनकी अनुपस्थिति में पीठ पीछे बुराई कर सकते हैं। मगर फिर भी यदि उनका विषय कुछ दूसरे प्रकार का होता तो शायद उनकी ज़्यादा क़द्र होती और उनकी कविता साहित्य का सुन्दर स्थायी अंग बन जाती इस विषय का भोग वही कर सकने य

समाज तो हँस कर कानमें अँगुली और मुँहमें रूमाल ठूँस लेगा। राशन आदि की सामयिक बातें कुछ समय के लिये बुरी नहीं है फिर भी कमही हों तो ठीक है । अपनी पत्नी को भद्दी, काली कलूटी और अपने को उसके सामने 'भोंदू' कहने से भी कुछ अधिक लाभ नहीं । लोगों से सहानुभूति की भी आशा रखना व्यर्थ है । इस कारण उसको घरही में रहने दीजिये यह अधिक श्रेयस्कर होगा । पर्दा हटाने का यह अर्थ कदापि नहीं कि आप सबके सामने उसको इस दशा में निकालें । द्रौपदी को सभा में न लाना ही ठीक है । फिर इससे समाज को कुछ लाभ हो तो इतना त्याग भी कीजिये। केवल हँसने वालों के लिये यह स्वाँग रचना कहाँ तक ठीक है मैं नहीं समझ पाया । उर्दू गद्यमें शौकत थानवी और चोग़ताई दोनों ने 'बीबी' का जिक्र किया है मगर चग़ताई अधिक सभ्य हैं और हर प्रकार का सुधार पेश करते है। कोई स्त्री भी उनकी कहानी पढ़ कर असंतुष्ट नहीं होगी। 'शौकत' को इसी कारण कदाचित ऊँचा स्थान प्राप्त नहीं हुआ यद्यपि उनकी कहानियों की संख्या सब से अधिक होगी। हिन्दी में 'व्यास जी' 'चोंच जी' वग़ैरह भी लिखते हैं और इनके बारे में आप मुझसे अधिक जानते हैं। परोडी में इन बातों के लिखने की बहुत सुविधा रहती है इस लिये यहाँ इससे अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है ।

'आपन मुख हम आपन करनी' अगर वर्णन न करें तो यह बात अधूरी रह जायगी । मैंने भी इस प्रकार की कवितायें लिख कर मर्द की इज्ज़त बढ़ाने और उसकी नाक ऊँची रखने का शुभ कर्म, किया है मगर यह मैं अवश्य कहूँगा कि उसमें मेरी स्त्री या 'स्त्री जाति' का अपमान नहीं है। मैंने "सखीबाली" कवितायें के रंग में कह कर पति जी को डाँट सिलानी सुनिये

सखीरी ! आज उन्हें डाँटा।

१ कहते कहते हार गई मैं, गये न वह बाजार।
तरकारी लाने को कहती, तो था अत्याचार॥
स्वयं प्रसन्न चित्त पहुँचे तो ले आये भाँटा॥ सखी॥

२ कहने लगे "अजी यह बैंगन बड़ा वीर बलवान।
इसके भाई टिमाटर में आई. सी. एस की शान।
यह 'सब गुण सम्पन्न' देखकर है मैंने छाँटा॥ सखी

३ आलू तो बस पुलिसरूप हैं, मिले हर जगह गोल।
साग पात सेवा मंडल से हैं उनका क्या मोल ?
बैंगन खाकसार वादी है बातों में चाँटा।" सखी॥

४ जिनको भिण्डी भाँटे में भी पड़े न अन्तर जान।
उनको यदि कुछ कहूँ तो फौरन होंगे अन्तर्ध्यान।
वह भी थे हरताल में जब ब्रह्मा ने ज्ञान बाँटा।सखी

इसी प्रकार "डियर मैं सिनिमा जाती हूँ" आदि कवितायें लिखी हैं जिनसे उनका अपमान नहीं होता, उनमें कुछ व्यंग अवश्य है मगर वह चुभता कम है और यदि उनसे सुधार हो जाय तो "हमारी जान बचे, हम लाखों पा जाय, और स्वर्ग से घर को वापस आजाँय"।

६ हास्य लिखने वालों ने, विशेष कर अकबर ने, लगभग सभी ऐसे विषयों पर दृष्टि डाली है जिनसे देश, धर्म, समाज और राष्ट्र का लाभ हो सकता है, और सुधार के ध्येय से व्यंग से भी काम लिया है। हाँ कहने के ढंग में अवश्य भिन्नता रही है। अकबर का ढंग हर जगह बहुत अच्छा और प्रशंसनीय रहा है। वह अधिक सफल रहे हैं और उनकी शैली इस योग्य है कि यदि उसका अनुकरण किया जाय अनुचित न होगा ; विशेषकर सरकार या राजनीति पर व्यंग्य कहने में। सरकारी सेवक होकर बहुत कुछ कह गये परन्तु सरकार उनका कुछ नहीं कह सकता

थी। इसी प्रकार यदि कोई भी कवि कुछ समय लगा कर अपने प्रयत्न को अपने अनोखे ढंग से कह कर सफल बनाना चाहे तो बना सकता है केवल इच्छा चाहिये। इधर ध्यान देना अनुचित न होगा; व्यंग कड़ुवा होता है। साधारण हास्य भद्दा हो सकता है। इस कारण व्यंग की शकर चढ़ी हुई गोलियाँ बना कर देना अधिक उचित होगा। उनमें कुछ माधुर्य पैदा कर दीजिये तो यह रस अमृत बन जाय। हमारे सन्त कवियों ने भी तो आख़िर इस रस में कुछ कहा ही है। उनका काव्य घृणित नहीं है। यह माना कि वे किसी कवि सम्मेलन के लिये नहीं कहते थे परन्तु थे वे भी कवि ही। आप चाहें तो जनता की माप और रुचि को और ऊँचा उठा सकते हैं। यह काम भी तो आख़िर आपही का है। बाहर से इसके लिये थोड़ा ही बुलाये जायेंगे।

पुराने ज़माने में 'बिगड़ा शायर मर्सिया गो और बिगड़ा गवैय्या मर्सिया ख़्वाँ' कहलाता था; परन्तु 'अनीस' और 'दबीर' ने इसमें वह काम किये कि उर्दू शायरी को उनपर और मर्सिया पर नाज़ है। हिन्दी कविता का भविष्य उज्ज्वल है। कवियों में प्रतिभा है, भाषा पर अधिकार और अध्ययन है, कमी है तो केवल चेष्टा की। "उदीयमान युवक कवियों को इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। हास्य का यह अर्थ कि 'हर प्रकार के साहित्यिक दोष रहें कुछ हर्ज नहीं, छिप जायेंगे' भूल जाना होगा। मैं काव्य के दोषों का यहाँ वर्णन नहीं कर रहा हूँ परन्तु साधारणतः खुले दोष; से बचने के लिये ज़रूर प्रार्थना करूँगा। इसीमें कल्याण है, उनका भी और हम सबका भी।

देखिये अंग्रेज़ी के वाक चातुर्य और हास परिहास (wit and humour) प्रायः कितने रुचि कर होते हैं। अंग्रेज़ी भाषाको भगाकर भी उसके गुण हमको छीन लेना चाहिये। इसमें षद्दी क्या है? मैं यहाँ कुछ अँग्रेज़ी लतीफ़े देना चाहता था, मगर

वह फिर देखा जायगा। हमारी भाषा में भी उच्च कोटि की कल्पना और हास्य है; परन्तु उनको बढ़ाने की आवश्यकता है। और आप चाहेंगे तो बहुत कुछ हो जायगा। फिर अन्य साहित्य हमारे साहित्य का अनुकरण करने का प्रयत्न करेंगे और हम नेता बनकर सूट बूट या कुर्ता चट्टी धारण कर आगे आगे चलेंगे हमारा नारा वही पुराना नारा होगा :—

'इन्कलाब ज़िन्दाबाद'।



# सातवाँ फाटक

## हिन्दी का इतिहास और हास्य रस का विकास

### क (प्राचीन काल)

---

आप मुझे इस झगड़े में तो डालिये नहीं कि हिन्दी क्या है और कैसे पैदा हुई ? मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि हमारे देश भारत वर्ष को विदेशी लोग हिन्द (इण्डिया) कहने लगे थे केवल इस कारण से कि यहाँ सिंधु (इण्डस) नदी बहती है और बाहर वालों का इसीसे बहुधा पाला पड़ा था। वह लोग यहाँ के लोगों की भाषा को हिन्दी या हिन्दवी कहने लगे । बाहर के मुसलमान इस समय भी यहाँ के मुसलमानों को 'हिन्दीमुस्लिम' कहते हैं । फ़ारसी के अतिरिक्त जो भाषा काम काज में लाई जाती थी वह हिन्दी कहलाती थी, यद्यपि हिन्दी का बहुत सी शाखायें थीं और हैं । मिर्ज़ा ग़ालिब के समय तक यही रहा। उनका उर्दू का दीवान भी 'कलामे हिन्दी' था।

प्राचीन भारतवर्ष में जो आर्य भाषा बोली जाती थी उसका लिखित रूप संस्कृत था। बोलने से प्राकृत भाषा पैदा हुई क्योंकि लिखित भाषा को व्याकरण ने बाँध रक्खा था वह टस से मस नहीं हो सकती थी इस लिये बोल चाल वाली भाषा में ही परिवर्तन होता रहा । फल यह हुआ कि अपभ्रंश अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा का जन्म हुआ जो देश भरमें थोड़े बहुत अंतर के साथ बोली जाती थी। अनार्य भाषायें दूसरी थीं जैसे तैमिल तिलगू आदि फिर यह अपभ्रंश भी जब राज्य छोटे छोटे

टुकड़ों में बँट गये-अपने नाम और हुलिया बदलता गया और पञ्जाबी, बँगाली, गुजराती, महाराष्ट्री आदि नामों से पुकारा जाने लगा। विहार और पंजाब के बीच में हिन्दी थी। जब मुसलमानी राज्य स्थापित हुआ और दिल्ली राजधानी हुई तो इनकी भेंट इसीसे हुई। दिल्ली के आसपास पश्चिमी हिन्दी बोली जाती थी जो शौरसेनी प्राकृतकी बेटी थी फिर इसीसे उर्दू, रेखता, खड़ी बोली, हिन्दोस्तानी और हाई हिन्दी आदि निकलीं जो वास्तव में एकही भाषा के (भिन्न भिन्न परिस्थितियों के भिन्न भिन्न) नाम हैं।

हिन्दी भाषा का पता पृथ्वीराज के समय से मिलता है। चन्द बरदाई इनके दरबारी कवि थे और चन्द का 'रासो' इसका प्रमाण † है। इसके पहिले के भी कुछ रासो मिलते हैं इस वीर गाथा काल में 'हास्य' के लिये स्थान कहाँ था ? इस समय की हिन्दी में अरबी फ़ारसी के शब्द बहुत मिलते हैं। यह रासो राजस्थानी (डिंगल) हिन्दी में है इसके बादसे पूरा साहित्य प्रायः ब्रज भाषा में है। धीरे धीरे दिल्ली में रहने के कारण जब अरबी फ़ारसी शब्द वहाँ की भाषा में ज्यादा घुल मिल गये तो मुगल बादशाहों के प्रभाव से वहाँ की भाषा चमकी और अपना अलग नाम रख लिया जिस को उर्दू कहते हैं। दिल्ली के आस पास की भाषा को साधारणतया खड़ी बोली कहा जाता है। इस कारण उर्दू और हिन्दी में नाम के अतिरिक्त बहुत अंतर नहीं है। उर्दू में फारसी और अरबी के शब्द अधिक हैं और हिन्दी में उनका स्थान संस्कृत या अपभ्रंश शब्दों ने लिया है। कम से कम मैं कोई अन्तर नहीं मानता और इसी कारण सब कवियों को-उर्दू वाले हों या हिन्दी वाले, दाढ़ी वाले हों या चुटिया वाले या सफ़ाचट-एकही आसन पर बिठा रहा हूँ कि

† प० रामचन्द्र शुक्ल ने तो इसको जाली माना है सं० ११४०

छूत छात भी दूर हो जाय और एक दूसरे की बोलीभी समझलें आगे का झगड़ा तो मिटे । हाँ आसन अवश्य छोटा है, कदाचित बहुत से आ न सकेंगे। उनसे मैं करबद्ध क्षमा प्रार्थी हूँ ।

सबसे आगे वह देखिये अमीर ख़ुसरो हैं । क़दम २ पर फुलझड़ी छोड़ते चले आरहे हैं। उनकी प्रतिभा की चन्द्रछटा से छोटे बड़े अमीर ग़रीब सभी लाभ उठा रहे हैं बच्चे उनकी कहानियाँ, दोसोखने, पहेलियाँ और मुकरनियाँ सुन रहे हैं और ख़ालिक बारी पढ़ रहे हैं तो दूसरे लोग उनकी कविता। इनके गीत भी खूब गाये जा रहे हैं। इनसे ‡ आप भली भाँति परिचित हैं इनको छोड़िये और आगे चलिये वह देखिये कौन बुज़ुग संत जी आ रहे हैं ?

ये कबीर दास जी हैं* । बनारस के रहने वाले जिनका पंथ चल गया है। ये एक अक्खड़ ज्ञान मार्गी संत हैं । इन्होंने गीत और भजन लिखे। इनकी उल्टी सीधी बातें कुछ तो समझ में नहीं आतीं, कुछ को रहस्यवाद कह कर टाल दिया जाता है। हाँ, कुछ व्यंग जरूर हैं जिनको भी सम्भव है कुछ लोग दूसरे अर्थ पहना दें । 'तिलक-छापा मालाधारी' साधुओं पर व्यंग करते हैं और समाज को चेतावनी देते हैं । कबीर पंथी लोग इनकी आयु ३०० वर्ष की बताते हैं क्योंकि अपने गुरु के चेले हैं, लेकिन लगभग १२० वर्ष के अवश्य रही होगी । इनकी साखी प्रसिद्ध हैं। ( संग्रह बीजक है ) ।

क– उलट बाँसियाँ :—

१ जल बिच मीन पियासी मोहि सुनि सुनि आवे हाँसी।
२ कंडा बूड़े सिल उतराय, ओरियाके पानी बड़ेरवा जाय।
३ नैया में नदिया डूबी जाय। इत्यादि।

‡ इनकी पहेलियाँ लिखी जा चुकी हैं पृष्ठ ५९ * सं० १४५० जन्म

ख–व्यंग–१ माला तो करमें फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुआँ तो चहुँदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥
२ माटी कहै कुम्हार का, तू क्या रौंदे मोहि।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं रौंदोंगी तोहि॥
३ सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै॥
४ सिंहों के लेहड़े नहीं, हंसों के नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमात॥
५ पानी मिलै न आपको, औरन बकसत छीर।
आपन मन निश्चल नहीं, और बँधावत धीर॥
६ कंकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय॥
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय?

ग–गीत–रमैया की दुलहिन लूटै बजार।
सुर पुर लूटि नागपुर लूटा,
तीन लोक मचा हाहाकार।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे,
नारद मुनि के परी पछार॥
स्रिंगी की भ्रिंगी करिडारी,
पारासर को उदर बिदार।
कनफूंका चिर काँसी लूटे,
लूटे जोगेसर करत विचार।
हमतो बचिगे साहब दयासे,
शब्द डोरि गहि उतरे पार॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
इस ठगिनी से रहो हुसियार॥

इनके शब्दों ही में केवल हास्य है वरना समात्र अ...
तो यह है कि कोइ समझे और उन पर अमल करे तो बकएठ

में—अगर है—सीट रिजर्व हो जाय।

सूरदास † जी प्रेम में डूबे रहते हैं इनको हँसने का अवसर कहाँ मिलता है मगर फिर भी 'सूर, सूर' हैं यह रस बिल्कुल ही कैसे छोड़ सकते हैं। इनका गीत सुनिये :—

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोंहि देखत लरिकन सँग तबहिं खिजात बल भैया॥
मों सों कहत तात वसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे वसुदेव को करि करि यतन बटैया॥
अब बाबा कहि कहत नन्द को जसुमति को कहै मया।
ऐसेहि कहि सब मोंहि खिजावत तब उठि चलो खिसैया॥
पाछे नन्द सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया।
सूर नन्द बलिरामहिं धिरयो सुनि मन हरष कन्हैया॥

ऐसे ही कहीं कृष्ण जी को काला कह कर चिढ़ाते हैं या सखियाँ राधा जी के कपड़े पहिना देती हैं। कुबजा के कूबड़ की भी खिल्ली उड़ाई गई है। यहाँ प्रेम की हँसी है सब को आनंद भी शायद न आये।

अब गोस्वामी तुलसीदास जी आ रहे हैं। इनमें यदि हास्य रस होता तो विचारे साधू ही क्यों होते। फिर भी कहीं कहीं हँसते हँसाते ही हैं। इतना भारी महाकाव्य बगल में दाबे बैठे हैं इनसे कोई रस बच कर कहाँ जायगा? इसको तो कुछ हिन्दू वेद समझते हैं। इनके बारेमें भी कुछ बताना मूर्खता होगी संवत १५५४ में जन्म हुआ और "संवत सोरह सौ असी, असी घाट के तीर" काशी में देहान्त हुआ। इनकी भाषा अवधी है। 'विनयपत्रिका' पढ़िये और आनंद लीजिये। रामायण कहाँ तक पढ़ियेगा असंख्य हैं पढ़ते ही भक्त बन जाइयेगा।

† स० १५४० जन्म

देखिये शिव जी पर—जो सहज ही में प्रसन्न होकर वरदान देते हैं—क्या व्यंग कर रहे हैं।

१ बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु वेद बड़ाई भानी॥
निज घर की बरबात बिलोकहु हौ तुम परम सयानी।
शिवकी दई सपदा देखत श्री सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरो सुख की नहीं निशानी।
तिन्ह रंकन को नाक संवारत हौं आयों नकवानी॥
दुखी दीनता दुखियन के दुख याचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहि भीख भली मैं जानी॥
प्रेम प्रशंसासा विनय व्यंग युत सुनि विधि का बरबानी।
तुलसी मुदित महेश मनहि मन, जगत मातु मुसकानी॥ बावरो०

योगी और तपस्वी लोग बिचारे जंगल में रहते हैं, घर और स्त्री त्याग कर, राम का भजन कर रहे हैं। उनपर गोस्वामी जी कुछ कटाक्ष कर रहे हैं। सुनिये :—

२ बिंध्य के बासी उदासी तपोव्रत, धारी महा बिनु नारि दुखारे
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि वृन्द सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद-मंजुल कंज तिहारे
कीन्हीं भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पग धारे

अब रामायण में देखिये दुष्टों को बन्दना कर रहे हैं।

क—चौपाई

बहुरि बन्दि खलगण सति भाये। जे बिनु काज दाहिने बाये
हरि हर यश राकेश राहु से। पर अकाज भट सहस बाहु से
तेज कृशानु रोष महि षेपा। अघ अवगुण धनधनिक धनेषा
उदय केतु सम हित सबहीके। कुम्भ करण सम सोवत नीके
बन्दौं खल जस शेष सरोषा सहस बदन बरणै पर दोषा

बन्दौं संत असज्जन चरना । दुख प्रद उभय बीचु कछुबरणा ॥
बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं । मिलत एक दारुण दुख देहीं ॥

ख—अब शिव जी की बारात देखिये । बिष्णु जी को मज़ाक़ जो सूझा तो सब राजों को बुलाकर—

दोहा—बिष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिशिराज ।
बिलगि बिलगि है ई चलहु सब, निज निज सहित समाज

चौपाई

बर अनुहारि बरात न भाई । हँसी करैहौ पर पुर जाई ॥
मन ही मन महेश मुस्काहीं । हरिके व्यंग बचन नहि जाहीं ॥
नाना बाहन नाना बेषा । बिहँसे शिव समाज निज देखा ॥
कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू । बिनुपदकर कोउ बहुपद बाहू ॥
बिपुलनयन कोउ नयन बिहीना । रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन छीना ॥
जस दूल्हा तस बनी बराता । कौतुक बिबिध होंहि मग जाता ॥

ग—नारद जी के मोह के बारे में नक़शा खींचा कि वह अपना मुँह लिये हुये कन्या के सामने स्वयम्वर में अकड़ कर बैठे । मगर :—

चौपाई

जेहि दिसि बैठे नारद फूली । सो दिसि तेहि न बिलोक्यो भूली ॥
पुनि पुनि मुनि उकसँहि अकुलाहीं । देखि दशा हर गण मुस्काहीं ॥

घ—धनुष यज्ञ में परशुराम जी के बिगड़ने पर लक्ष्मणजी बोले :—

चौपाई

लषण कह्यो मुनि सुयश तुम्हारा । तुमहिं अछत को बरनै पारा ॥
अपने मुख तुम आपनि करनी । बारि अनेक भाँति बहु बरनी ॥
कह्यो लषण मुनि शील तुम्हारा । को नहिं जान बिदित संसारा ॥
माता पितहि उऋण भये नीके । गुरु ऋण रहा सोच भये जीके ॥
सो जनि हमरे माथे काढ़ा । दिन चलि गये व्याज बहु बाढ़ा ॥

इत्यादि

इनके बाद जिन्हों ने इस रस में कहा वह बहुत कम है '
एक दो छन्द ही इधर उधर मिलेंगे । श्री पति जी † काल्पी
निवासी की भी कविता सुन लीजिये। कहते हैं :—

घनाक्षरी—उर्द के पचाइबे को हींग अरु सोंठ जैसे,
केरा के पचाइबे को विव निरधार है।
गोरस पचाइबे को सरसों प्रबल डएड,
आम के पचाइबे को नीबू को अचार है॥
श्री पति कहति पर धन के पचाइबे को,
कानन छुवाय हाथ कहिबो नकार है।
आज के जमाने बीच राजाराव जानसबै,
रीनि के पचाइबे को वाहवा डकार है॥

घनाक्षरी—सारस के नादन को बाद ना सुनात कहूँ,
नाहक ही बकवाद दादुर महा करैं।
श्रीपति सुकवि जहाँ ओज ना सरोजनकी,
फूल ना फुलत जाहि चित दै चहा करैं॥
बकन की बानी विराजत है राज धानी।
काई सो कलित पानी फेरत हहा करैं॥
घोंघन के जाल जामे नरई सेवाल व्याल।
ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करैं॥

अब सब से आगे मैदान में बढ़ने वाले श्री अली मुहिब
खाँ (प्रीतम) आगरे वाले हैं जिन्हों ने "खटमल बाईसी"
नाम की एक पुस्तक लिखी है जो केवल हास्य रस से सम्बन्ध
रखती है। हिन्दी साहित्य में इस समय तक इस प्रकार का यह
प्रथम सफल प्रयास है और शिष्ट हास का एक अच्छा नमूना है
उर्दू में इसीको हजो कहते हैं। बाईसी के केवल दो छन्द सुनिये

† कवि कल्पद्रुम, रस-सागर, अनुप्रास विनोद, विक्रम विलास,
रोज कलिका, अलंकार गंगा और काव्य सरोज इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं

जगत के कारन करन चारौ बेदन के,
कमल में बसे वै सुजान ज्ञान धरिकै।
पोषन अवनि, दुख सोषन तिलोकन के,
सागर में जाय सोए सेस सेज करिकै॥
मदन जरायो जो, सँहारै दृष्टिही में सृष्टि,
बसे हैं पहार वेऊ भाजि हरबरि कै।
बिधि हरि हर, और इन ते न कोऊ तेऊ,
खाट पै न सोवैं खटमलन को डरिकै॥१॥
बाघन पै गयो, देखि बनन में रहे छपि,
साँपन पै गयो, ते पताल ठौर पाई है।
गजन पै गयो, धूल डारत हैं सीस पर,
बैदन पै गयौ काहू दारू ना बताई है॥
जब हहराय हम हरि के निकट गए,
हरि मोसों कही तेरी मति भूल छाई है।
कोऊ न उपाय, भटकत जनि डोलै, सुन,
खाट के नगर खटमल की दुहाई है॥२॥

अब बेनी बंदीजन रायबरेली निवासी का भड़ौ[illegible]
[illegible]ुनिये। ये राजा टिकैत राय के आश्रित थे और इनका "भड़ौ[illegible]
[illegible]ग्रह" प्रसिद्ध है बल्कि इसी के कारण ये भी प्रसिद्ध हुये। अप[illegible]
[illegible]मकालीन कवि और महंत ललकदास जी को यों रगड़ र[illegible]
[illegible] कि :—

घर घर घाट घाट बाट बाट ठाट ठटे,
बेला औ कुबेला फिरैं चेला लिए आस पास।
कबित्त सों बाद करैं, भेद बिन नाद करैं,
महा उनमाद करैं, धरम करम नास॥
बेनी कवि कहै बिभिचारिन को बादसाह,
अतन न सतन सरम तास

ललना ललक, नैन मैन की झलक,
हँसि हेरत अलक रद खलक ललकदास
औरंगज़ेब ने हथिनी इनाम में दी तो आपने प्रस
होकर आशिर्वाद दिया और फ़रमाया। ?
१ छप्पय-तिमिर लंग लहमोल चली बाबर के हलके।
रही हुमायूँ संग फेरि अकबर के दलके॥
जहाँगीर जस लियो पीठि को भार हटायो।
साह जहाँ करि न्याव ताहि पुनि माँड़ चटायो॥
बल रहित भई पौरुष थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर।
औरंग ज़ेब करनी सोई लै दीनी कविराज कर॥
२ घनाक्षरी-दयाराम जी ने कृपा करके आम भेजे तो उन
प्रशंसा की :—
चींटी की चलावे को मसा के मुँह आय जाँय,
साँस की पवन लागे कोसन भगत हैं
ऐनक लगाय मरु मरु के निहारे परैं,
अनु परमानु की समानता खगत हैं।
बेनी कवि कहैं हाल कहाँ लौं बखान करौं,
मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत हैं
ऐसे आम दीन्हे दयाराम मन मोद करि,
जाके आगे सरसों सुमेरु सी लगत है।
२ घनाक्षरी—लखनऊ की कीचड़ पर कहते हैं सुनिये :-
गड़िजात बाजी औ गयंद गन अड़िजात,
सुतुर अकड़ि जाति मुश्किल गऊ की।
दामन उठाय पाय धोखे जो धरति होत,
आप गर काँपि रहि जात पाग मऊ की॥
बेनी कवि कहैं देखि थर थर काँपें जात,
रथन के पथ वा विपद बरदऊ की

बारबार कहत पुकार करतार तोसों,
मीच है क़बूल पै न कीच लखनऊ को ॥

४ रज़ाई मिली तो कहते हैं :—

कारीगरी कोऊ करामात के बनाय लायो,
लीन्हीं दाम थोरे जान नई सुघरई है।
राय जू को रायजू रजाई दीन्हीं राजी ह्वै के,
शहर में ठौर ठौर शुहरत भई है॥
बेनी कवि पाय के अघाय रहे घरी द्वै क,
कहत न बनै कछु ऐसी मति ठई है।
साँसलेत उड़िगयो उपल्लाऔ भितल्ला सबै,
दिन द्वै के बाती हेतु रुई रह गई है॥

अब देखिये पद्माकर जी पधार रहे हैं। इन्होंने राज दरबारों में और सहृदय समाज में बड़ा नाम कमाया। ये श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनकी भाषा बड़ी सुन्दर होती है; कभी कभी अनुप्रास के पीछे पड़जाते हैं तो आफ़त कर देते हैं। ये भी जब तरंग में आजाते हैं तो विनोद के रंग में बह जाते हैं। सुनिये :—१

लोचन असम अंग भसम चिता की लाइ,
तीनों लोक नायक सो कैसे कै ठहरतो।
कहै पद्माकर विलोकि इमि ढंग जाके,
बेदहू पुरान गान कसे अनुसरतो॥
बाँधे जटाजूट बैठे परबत कूट माहिं,
मद्दा काल कूट कहो कैसे कै ठहरतो।
पीवे नित भंग रहे प्रेतन के संग ऐसे,
पूछतो को नगै जो न गंगै सीस धरतो

हँसि हँसि भजैं देखि दूलह दिगंबर को,
पाहुनी जे आवैं हिमाचल के उछाह मैं।
कहै पद्माकर सु काहू सों कहै को कहा,
जोई जहाँ देखै सो हँसोई तहाँ राह मैं॥
मगन भएई हँसै नगन महेस ठाढ़े,
और हँसे वेऊ हँसि हँसि कै उमाह मैं।
सीस पर गंगा हँसै भुजनि भुजंगा हँसै,
हासही को दंगा भयो नंगाके विवाह मैं॥

गिरिधर कविराय जी सीधी सादी भाषा में तथ्यमात्र का कथन अपनी कुण्डलियों में करते हैं। ये प्रायः घर गृहस्थी के साधारण व्यवहार, लोक व्यवहार आदि का स्पष्ट शब्दों में कथन करते हैं। कहीं कहीं पर उनमें हास्य भी झलकता है जैसे:—

लाठी में गुण बहुत हैं सदा राखिए संग।
गहिरे नद नारा जहाँ तहाँ बचावे अंग॥
तहाँ बचावै अंग झपटि कुत्ता कहँ मारै।
दुश्मन दावागीर तिनहुँ को मस्तक झारै॥
कह गिरधर कविराय सुनो हो वेदके पाठी।
सब हथियारन छोड़ि हाथमहँ लीजै लाठी॥

अब अंत में घाघ जी की अमृत वाणी सुनिये। इनकी कवितायें प्रायः नीति तथा लोक व्यवहार सम्बन्धी होती है परन्तु उक्ति और शैली में हास्य विराजमान है। जैसे—

मुए चाम से चाम कटावैं; भुईं सकरी माँ सोवैं।
घाघ कहैं यह तीनों भकुवा, उढ़रि गए पै रोवैं॥
सुथना पहिरे हर जोतैं, औ पौला पहिरि निरावैं।
घाघ कहैं ये तीनों भकुवा, सिर बोझा औ गावैं॥
घर घोड़ा पैदल चलै, तीर चलावैं बीन।
थाती धरैं दमाद घर, जग में भकुवा तीन इत्यादि

अब हिन्दी में गद्य या पद्य कहने वाले कोई नि
पड़ रहे हैं इस लिये उर्दू वाले पधार रहे हैं। यह दे
खसी दाढ़ी वाले साहब बड़ी शान से अकड़ते हुये च
हैं। ये सौदा साहब हैं। दिल्ली से फ़र्रुखाबाद गए,
बाद रहे-क़सीदा खूब कहते हैं। 'हजो' के बादशाह
तेज तर्रार आदमी हैं। आपने सुना होगा उर्दू में मीर
केवल पौने तीन शायर माने थे। ये उनमें से एक पूरे
सुनिये जाड़े के प्रति कुछ कह रहे हैं।

१. सर्दी अबकी बरस है इतनी शदीद।
सुबह निकले है काँपता खुरशीद॥
कोहरा पड़ने को कहते हैं सब यार।
ठंड से है जहाँ के दिल में गुबार॥
लेक देखा जो गौर करके मैं आप।
निकले है मुँह से आसमाँ के भाप॥
पानी पर जिस जगह कि काई है।
सब्ज वह शाल की रजाई है॥
गिर पड़े बर्ग ताक झड़ के तमाम।
बुलबुलैं मर रहीं अकड़ के तमाम॥
दी है बर्बाद ठंड से यक दस्त।
जो कोई है सो आफ़ताब परस्त॥
आग भी ठंड से ठिठरती है।
गोदों के बीच छिपती फिरती है॥
झोंकना जाड़े का जो झोंकें हैं।
एक सखुन हो तो लाख छींकें हैं॥
कोई अब जासे हिल नहीं सकता।
घर से बाहर निकल नहीं सकता॥
लिपटे रहते हैं रुई में मजबूर

जिस तरह नास्पाती को अंगूर ॥
देखो हलवाई को जो बैठे कहीं।
बकौ छुट कुछ टुकों में उस के नहीं ॥ इस
एक मित्र से एक दफ़ा घोड़ा माँगा, उन्हों ने कुछ ट

अब यह घोड़े की हजो कह रहे हैं सुनिये :—
इस मरतबे को भूख से पहुँचा उसका हाल।
करताहै राकिब उसका जो बाजारमें गुज़ार ॥
क़स्साब पूछता है मुझे कब करोगे याद।
उम्मीदवार हमभी हैं यों कहता है चमार ॥
हररात अख्तरों के तईं दाना बूझ कर।
देखे है आस्माँ की तरफ़ होके बेक़रार ॥
तिनका अगर कहीं पड़ा देखे है घास का।
चौकीको आँख मूँदके देता है वह पसार ॥
देखे है जब वह तोबड़ा वो थानकी तरफ़।
खोदे है अपने सुमसे कुँयें टापें मारमार ॥
है इस क़दर जईफ़ कि उड़जाय बाद से।
मेखें गर उसके थान की होवें न उस्तवार ॥
ने उस्तख़ाँ न गोश्त न कुछ उसके पेटमें।
धौंके है दमको अपनी कि ज्यूं खाल को लोहार ॥

समझा न जाय यह कि वो अबलक़ है यो सुरंग
ख़ारिश्त से जबस्कि है मजरूह बेशुमार
इतना वो सर निगूं है कि सब झड़ गये हैं दाँत
जबड़े पे बस्कि ठोकरों की नित पड़े है मार
है पीर इस क़दर कि जो बतलाये उसका सिन
पहले वो लेके रेगे बियाबां करे शुमार
आगे से तोबड़ा उसे दिखलाये था सईस

पीछे नक़ीब हके था लाठी से मार मार ॥
. . . . . . . . . कहते थे यों पुकार ॥
यहिये इसे लगाव कि ता हैं ये यह रवाँ।
या बादबान बाँधो पवन के दो अख्तियार ॥
कहता था कोई मुझसे हुआ तुझसे क्या गुनह।
कोतवाल ने गधे पै तुझे क्यों किया सवार ॥
इत्यादि ।

इसी प्रकार सैकड़ों हजो बात बात में लिख डाली हैं।

मीर साहब को सब ने उस्ताद माना है परन्तु वह व्यथित हृदय हैं, उनको कष्ट न दीजिये। उनकी कवितायें भी 'कुत्तों,' 'बकरी' और 'अपना घर' पर हैं, परन्तु उनमें हास्य से करुणा अधिक है।

यह लीजिये हजरत इंशाअल्लाखाँ इंशा आरहे हैं। इनके बारे में आपने बहुत कुछ सुन रक्खा है। यह हरफ़न मौला है इनकी फब्ती, फ़िक़रे, क़िस्से कहानियाँ बहुत प्रचलित है। ये हिंदी गद्यके पहिले अच्छे लेखक हैं। इनसे 'मुसहफ़ी'से जो नोक झोंक हुई थी वह न बताऊँगा। अब इनकी हास्य की रचनायें। देखिए खटमल, मच्छर, जंबूर (शहद की मक्खी) इत्यादि पर बहुत कुछ लिखा है, मच्छरों पर कहते हैं :-

मच्छरों को हुआ है अबकी ये औज।
दब गई जिनसे मरहठों की फ़ौज ॥
सूखे सहमें हैं काले काले हैं।
यह भी पर कोई घोड़े वाले हैं॥
हैं दुपट्टे में साफ़ घुस आते।
और लिहाफ़ों में हैं समाजाते ॥
इनकी भन्नाटे की है यह आवाज।
बार जिससे कभू न हो दम साज ॥

नाक में हर तरफ़ से होके दख़ील।
फूंकते हैं ये सूरे 'इसराफ़ील'॥
है सियह फूल की कली इन से।
सब को है एक बेकली इन से॥
बस कि लपटे ही रहते हैं हरदम।
हब्शी हो गया है एक आलम॥
चाटली साफ़ गुलदुमों की दुम।
रह गईं वह बिचारियाँ गुम सुम।
बल्कि काफ़िर लपट लपट जो मुये।
तख़्ते संदल के आबनूस हुये॥
हुये मच्छर बहुत से जो साथी।
जितने भैंसे थे हो गये हाथी॥
हर बुनेमू की ले चुके हैं फ़स्द।
और क्या जाने क्या है इनका क़स्द॥
ऐसी वंशी सी यह बजाते हैं।
जिस से सब लोग लोट जाते हैं॥
बात क्या है कि कान लगते हैं।
यह बतोलों में सब को रखते हैं॥
आगे क्या लिक्खे कोई इनका भेद।
पड़ गये काग़ज़ों में लाखों छेद॥
आगे मच्छर जो फिर दो चार हुये।
हर्फ़ बे नुक्ता नुक़्तादार हुये॥
क्यों न नोके क़लम रहे शशदर।
घुस गया उसकी नाक में मच्छर॥
मच्छरों की यह कुछ हुई पचपच।
लगा कागज़ भी करने अब पचपच॥
खाने पीने म सब दख़ील हुय।

आगे पश्शा थे अबतो फ़ील हुये॥
नहीं मच्छर ये फ़ीलखाना है।
कजलीवन इनसे सब ज़माना है॥
किन ने रक्खा है मच्छर इनका नाम।
इनको कहिये तो कहिये लश्कर शाम॥
यों हुई शाम, यों ये आ लागे।
आदमी इनसे अब कहाँ भागे?॥
लफ़्ज़ इंशा न बोले लायानी।
मच्छर आकर उड़ा गये मानी॥ इत्यादि

हज़रत इंशा की रेख़्ती भी हास्य पैदा करती है। इनके और मुसहफ़ी के हमले और 'जवाबी हमले' लखनऊ में बहुत रस बरसाते रहे मगर उनमें व्यक्तिगत व्यंग कम विरोध ज़्यादा है।

अली नक़ी खाँ बहादुर की हवेली तैयार हुई उसकी तारीख़ सुनिये :— रुबाई—

न अरबी न फ़ारसी न तुरकी। न समकी न तालकी न सुरकी।
ये तारीख़ कही है किसी लुरकी। हवेली अलीनक़ीखाँ बहादुरकी॥

यह क़िस्सा तो आपने सुनाही होगा कि एक दफ़ा नवाब साहब ने रोज़ा रक्खा था और सब को मिलने से रोक दिया था। जब इंशा पहुँचे, किसी नौकर की एक न सुनी और अन्दर घुस गये। कमर खोल, पगड़ी उतार, स्त्रियों की भाँति दुपट्टा ओढ़कर बड़े नाज़ व अन्दाज़ से जाकर सामने खड़े हो गये और नवाब साहब की नज़र उठते ही नाक पर उँगली धर के बोले :—

मैं तेरे सदक़े न रख ऐ मेरी प्यारी रोज़ा।
बन्दी रखलेगी तेरे बदले हज़ारी रोज़ा॥

नवाब साहब हँस पड़े और मजबूरन इनकी बातें सुनी।

इंशा ने रेख़ती की ईजाद की, उसके बारे में बता ही चुका हूँ। अब इनकी गद्य का नमूना देखिये। रानी केतकी की कहानी लिखते हैं कि :—

एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिये कि जिसमें हिन्दी छुट और किसी बोली का पुट न मिले। तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलने वालों में से एक कोई बड़े पढ़े लिखे, पुराने धुराने डाँग बूढ़े घाघ यह खट राग लाये। सिर हिलाकर मुँह थुथाकर, नाक भौं चढ़ाकर, आँखें फिराकर लगे कहने—यह बात होती दिखाई नहीं देती। हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस जैसे भले लोग अच्छों से आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न हो। यह नहीं होने का।" मैंने उनकी ठंडी साँस की फाँस का टहोका खाकर झुँझलाकर कहा—मैं कुछ ऐसा अनोखा बड़ा बोला नहीं जो राई को परबत कर दिखाऊँ और झूठ सच बोल कर उँगलियाँ नचाऊँ। बे सिर बे ठिकाने की उलझी सुलझी बातें सुझाऊँ। जो मुझसे न हो सकता तो यह बात मुँह से क्यों निकालता। जिस ढब से होता इस बखेड़े को टालता।

इस कहानी का कहने वाला यहाँ आपको जताता है और जैसा कुछ उसे लोग पुकारते हैं कह सुनाता है। दाहना हाथ मुँह पर फेर कर आपको जताता हूँ, जो मेरे दाता ने चाहा तो वह ताव भाव और राव चाव और कूद फाँद लपट झपट दिखाऊँ जो देखते ही आपके ध्यान का घोड़ा जो बिजली से भी बहुत चंचल अचपलाहट में है हिरन के रूप में अपनी चौकड़ी भूल जाय

टुक घोड़े पे अपने चढ़ के आता हूं मैं।
करतब जो कुछ है कर दिखाता हूँ मैं॥
उस चाहने वालेने जो चाहा तो अभी।
कहता जो कुछ हूँ कर दिखाता हूँ मैं॥

अब आप कान रखके, आँख मिलाके, सम्मुख होके टुक इधर देखिये, किस ढब से बढ़ चलता हूँ और अपने फूल की पंखड़ी जैसे होंठों से किस किस रूप में फूल उगलता हूँ॥

इनके चौतुकों से ऐसा प्रतीत होता है कि लखनऊ के कश्मीरियों (भांडों) ने घोड़ा छोड़नेका नियम और ढंग कदाचित इन्हों से लिया है। उनका खेल भी यों ही आरम्भ होता है। चूंकि उनका लिखित साहित्य मिला नहीं इस कारण यहां आपको नहीं सुना सकता और न इन कवियों के साथ बैठने के लिये बुलाही सकता हूँ।

यह देखिये मिर्ज़ा असदउल्लाखाँ 'ग़ालिब' बड़ी धूम धाम से आ रहे हैं। उर्दू और फ़ारसी के बहुत ही बड़े कवि और उस्ताद माने हैं। यह बड़े हँसमुख हैं। इनके शिष्यों ने इनके पत्रों को छपाया † है। इनके लतीफ़े प्रसिद्ध हैं। हाली साहबकी ज़बानी सुनिये :—

१ एक दफ़ा जब रमज़ान–रोज़ों का महीना–गुज़र चुका तो मिर्ज़ा ग़ालिब क़िले में गये। बादशाह सलामत ने पूछा–मिर्ज़ा तुमने कितने रोज़े रक्खे? अर्ज़ किया–पीर व मुर्शिद! एक नहीं रक्खा।

२ एक जगह मिर्ज़ा मीर तक़ी की तारीफ़ कर रहे थे। शेख इब्राहीम ज़ौक़ भी मौजूद थे उन्हों ने सौदा की मीर पर तरजीह (बड़ाई) दी। मिर्ज़ा ने कहा–मैं तो तुमको मीरी समझता था मगर अब मालूम हुआ कि आप सौदाई हैं।

† इनके पत्र जो पुस्तकों में छपे हैं उर्दू गद्य में कहीं २ अच्छा हास्य है

३ फलों में मिर्ज़ा को आम बहुत पसन्द थे। एक हकीम साहब जो मिर्ज़ा के बड़े मित्र थे उनको आम नहीं भाते थे। एक दिन वह मिर्ज़ा के मकान पर बरामदे में बैठे थे और मिर्ज़ा भी वहीं मौजूद थे। एक गधेवाला अपने गधे,लिये हुये गली से गुजरा। आम के छिलके पड़े थे। गधे ने सूँघ कर छोड़ दिया। हकीम साहब ने फरमाया-देखिये आम ऐसी चीज़ है जिसे गधा भी नहीं खाता। मिर्ज़ा ने कहा "बेशक गधा नहीं खाता।

४ एक दिन सैयद सरदार मिर्ज़ा मरहूम शाम को इनके यहाँ आये। जब थोड़ी देर ठहर कर वह जाने लगे तो मिर्ज़ा ख़ुद अपने हाथ में शमादान लेकर खिसकते हुये फ़र्श के किनारे तक आये ताकि रोशनी में देख कर वह जूता पहन लें। उन्होंने कहा-क़िबला व काबा आपने क्यों तकलीफ़ फ़रमाई। मैं अपना जूता आप पहन लेता। मिर्ज़ा ने कहा-मैं आपका जूता दिखाने को शमादान नहीं लाया बल्कि इस लिये लाया हूँ कि कहीं आप मेरा जूता न पहन जायें।

यह तो आपने सुना होगा कि मिर्ज़ा ग़ालिब की शायरी उर्दू और फ़ारसी दोनों भाषाओं में अपने रंग की जुदा और क्लिष्ट होती थी। इस कारण कुछ लोगों ने इनकी भी हंसी उड़ाई थी। मौलाना मुहम्मदहुसेन आज़ाद, आबेहयात के लेखक, चूँकि स्वयं बहुत बड़े सुन्दर हास्य और व्यङ्ग के लिखनेवाले हैं, उनसे कुछ क़िस्से सुनिये।

हकीम आग़ाजान ऐश प्रसिद्ध खानदानी और शाही हकीम थे। ये हास्य में निपुण थे। एक पूर्वी मौलवी को अपने काम के लायक़ पाकर रख लिया और उनको अपने हास्य रस की कवितायें देना आरम्भ किया। 'हुदहुदुस शोअरा' उपनाम रक्खा। मुशायरों में बड़ा रंग रहता। हकीम साहब ने उन्हें दरबार तक पहुँचा दिया क़सीदा पेश किया जिसके कुछ शेर ये हैं

जो तेरी मद्ह में मैं चोंच अपनी वा करदूँ।
तो रश्के बागे इरम अपना घोंसला करदूँ॥
जो आके रेज़ करे मेरे आगे मुसीक़ार।
तो ऐसे कान मरोड़ूं कि बेसुरा करदूँ॥
जो सरकशी करे आगे मेरे हुमा आकर।
तो उसके नोच के पर शक्ले नेवला करदूँ॥
मैं खाने वाला हूँ नेमत का और मेरे लिये।
फ़लक कहे है मुक़र्रर मैं बाजरा करदूँ॥

बादशाह 'अबूज़फ़र' ख़ुद शायर थे। उन्हों ने ख़िताब दिया :– तायरुल अराकीन, शहपर उलमुल्क, हुदहुदुस शोअरा मिनक़ारे जंग बहादुर और ७) रुपया महीना कर दिया। एक मर्तबा जब तनख़्वाह मिलने में देर हुई तो राजा देवी सिंह जिनके ज़िम्मे यह काम था, उनके लिये आपने यह क़सीदा लिखा :–

जहाँ में आज देवी सिंह तू राजों का राजा है
ख़ुदा का फ़ज़्ल है जो क़िलअ में तू आ विराजा है ''फिर''
किसी को दे न दे तनख़्वाह तू मुख़्तार है इसका
मगर हुदहुद को देदे, क्यों ? यही हुदहुद का खाजा है।

इस प्रकार बहुत सी रुबाइयाँ भी हैं। मिर्ज़ा ग़ालिब पर व्यंग करके शेर लिखे थे जिनके शब्द बड़े सुन्दर और अनूठे ; परन्तु अर्थ का कहीं पता नहीं। जैसे :–

मर्कज़े महवरे गर्दूं ब लबे आब नहीं।
नाख़ुने क़ौसेक़ुज़ह शुबहये मिज़राब नहीं॥

हुदहुद के मुक़ाबले में एक साहब ने बाज़ छोड़ा। हुदहुद ने चोंच मारी वह भाग निकला। लिखा कि:—

जिसे कहते हैं हुदहुद वह तो नर शेरों का दादा है।
मुक़ाबिल तेरे क्या हो तू तो एक जुर्रा की मादा है

गर अबके बाजड़ी मैदाँ में आई सामने मेरे।
तो तुम में पर न छोड़ूंगा यही मेरा इरादा है॥
अदब ए बेअदब! अबतक नहीं तुझको ख़बर इसकी।
कि हुदहुद सब जहाँ के तायरों का पीर ज़ादा है॥
इत्यादि।

जब 'बाज़' उड़गया तो यारों ने एक कौवा "ज़ाग" तैयार किया। इन्होंने उसकी भी ख़ूब ख़बर ली और वह आँधी का कौवा होकर उड़गया। उसको ललकारा :–

योनि आया है बदल अबके अदू कौवे की।
इसकी है पाँव से ता सर वही ख़ू कौवे की॥
पहले जाना था यही सब ने कि कौवा होगा।
फिर जो मालूम हुआ, है ये बहू कौवे की॥
बनके कौवा जो ये आया है तो ए हुदहुद शाह।
तुम कतर देने को कुछ कम नहीं तू कौवे की॥
इत्यादि।

पालने वाले दानापानी दे नहीं सकते थे, न घोंसले का कोई प्रबन्ध था इस कारण सब पखेरू उड़नछू हो जाते थे। यह हुदहुद ही मैदान में रहे; क्योंकि सरकार से तो मुक़र्रर था ही इधर उधर जो कुछ चर चुग कर मार लाते थे वह घाते में था।

अब देखिये मुस्लिम यूनीवर्सिटी के जन्म दाता सरसैयद आरहे हैं। इनके निबंध बड़े चोटीले होते हैं। पात्रों के चरित्र चित्रण में यह दक्ष हैं। किसी चीज़ की बुराई इस प्रकार लिखते हैं कि उससे घृणा हो जाती है। मित्रों में वाद-विवाद करने के बुरे ढंग पर लिखते हैं :—

जब कुत्ते आपस में मिल कर बैठते हैं तो पहिले त्योरी चढा कर एक दूसरे को बुरी निगाह से आँखें बदल बदल कर देखना शुरू करते हैं फिर थोडी थोडी गुर्राहट आवाज़ उनके

नथनों से निकलने लगती है फिर थोड़ा सा जबड़ा खुलता है और दाँत दिखाई देने लगते हैं और हलक़ से आवाज़ निकलनी शुरू होती है। फिर बाछें चिर कर कानों से जा लगती हैं और नाक सिमट कर माथे पर चढ़ जाती है, डाढ़ों तक दाँत बाहर निकल आते हैं। मुँह से भाग निकल पड़ते हैं और ऐंफ ऐंफ के साथ उठ खड़े होते हैं और एक दूसरे से चमट जाते हैं। इसका हाथ उसके गले में और उसकी टाँग इसकी कमर में। इसका कान उसके मुँह में और उसका टेंटुआ इसके जबड़े में। इसने उसको काटा और उसने इसको पछाड़ कर भंभोड़ा। जो कमज़ोर हुआ दुम दबाकर भाग निकला।

नामोहज़्ज़ब आदमियों की मजलिस में भी आपस में इसी तरह पर तकरार होती है। पहले साहब सलामत कर कर आपस में मिल बैठते हैं फिर धीमी धीमी बात चीत शुरू होती है, एक कोई बात कहता है, दूसरा बोलता है—वाह, यों नहीं यों है। वह कहता है, वाह तुम क्या जानो। वह बोलता है, तुम क्या जानो। दोनों की निगाह बदल जाती है, त्योरी चढ़ जाती है, रुख़ बदल जाता है, आँखें डरावनी हो जाती हैं, बाछें चिर जाती हैं, दाँत निकल पड़ते हैं, थूक उड़ने लगता है, बाछों तक कफ़ भर आता है, साँस जल्दी चलती है, रगें तन जाती हैं, आँख, नाक, भौं, हाथ अजीब अजीब हरकतें करने लगते हैं, अजीब आवाज़ें निकलनें लगती हैं आस्तीन चढ़ा, हाथ फैला उसकी गरदन इसके हाथ में और इसकी दाढ़ी उसकी मुट्ठी में। लप्पा डुग्गी होने लगती है। किसी ने बीच बचाव करके छुड़ा दिया तो गुर्राते हुए एक इधर चला गया और एक उधर, और अगर कोई बीच बचाव करने वाला न हुआ तो कमज़ोरने पिट कर कपड़े झाड़ते, सर सहलाते अपनी राहली। जिस क़दरतहज़ीब में तरक्की होती है उसीक़दर इस तकरारमें कमी होती है

इनके बाद डाक्टर नज़ीर अहमद मैदान में आते हैं जो अच्छे उपन्यास लेखक हैं। इनके उपन्यास के एक पात्र मिर्ज़ा ज़ाहिरदार बेग का चरित्र चित्रण यों हुआ है :—

तौबतुन्नसूह से

तीन आदमी और सात रुपये की कुल कायनात, उसपर मिर्ज़ा की शेख़ी और नमूद। यह मसख़रा चाहता था कि जमादार के बेटों की बराबरी करे जिनको सैकड़ों रुपये की माहवार की मुस्तक़िल आमदनी थी। अगर्चे जमादार वाले इसको मुँह नहीं लगाते थे मगर यह बेइज़्ज़त ज़बरदस्ती उनमें घुसता था। यह किसी को भाई जान, किसी को मामू जान किसी को ख़ालू जान बनाता और वह लोग इसके बनावटी रिश्ते नातों से जलते और दिक़ होते ' ऊँची हैसियत के लोगों में बैठना उसके हक़में और भी ख़राब था। उनको देखा देखी इसने तमाम आदतें अमीरज़ादों की सी बना रक्खी थीं मगर अमीर ज़ादगी न थी। तो कैसे निभे ? दुकान गिरवी होती जाती थीं। माँ बेचारी बहुतेरा बकती मगर कौन सुनता था ? मिर्ज़ा को जब देखो पाँव में डेढ़ हाशिया की जूती, सर पर दोहरी बेल की भारी कामदार टोपी बदन में एक छोड़ दो अँगरखे, ऊपर शबनम या हल्की तंज़ेब नीचे कोई तरहदार सा ढाके का नैनूँ। जाड़ा हुआ तो बानात, मगर सात रु० गज़ से कम नहीं। ख़ैर, यह तो सुबह व शाम। और तीसरे पहर काशानी मख़मल की आसफ़ ख़ानी जिसमें हरीर की संजाफ़ के अलावा गंगाजमनी कमख़ाब की उम्दा बेल टँकी हुई। सुर्ख़ नैफ़ा का पायजामा। अगर ढीले पायचों का हुआ तो कली दार और इस क़दर नीचा कि ठोकर के इशारे से ज़रा क़दम आगे और अगर तंग मोहरी का हुआ तो आधी टाँग तक चूड़ियाँ और ऊपर खालकी तरह मढ़ाहुआ। रेशमी अज़ार बंद घुटनों तक लटकता हुआ उसमें वे क़ुफ़ुल की कुन्जियों का गुच्छा

गरज़ देखो तो मिर्ज़ा साहब इस प्रकार छैला बने सरे बाज़ार छम छम करते चले जारहे हैं।

इनके मित्र कलीम जब घर से भागकर इनके यहाँ पहुँचे और आवाज़ दी :—

कुछ देर बाद मिर्ज़ा साहब नंग धड़ंग जाँघिया पहने हुये बाहर तशरीफ़ लाये, कलीम को देख कर शर्माये और बोले—आहा, आप हैं, माफ़ कीजियेगा, मैं समझा कोई और साहब हैं। बंदेको कपड़ा पहन कर सोने की आदत नहीं मैं ज़रा कपड़े पहन आऊँ तो आपके हमरकाब चलूँ। कलीम—चलियेगा कहाँ? मैं आपही के पास तक आया था। मिर्ज़ा—फिर अगर कुछ देर तशरीफ़ रखना मंज़ूर हो तो मैं अन्दर परदा करादूँ। कलीम मैं आज शब को आपही के यहाँ रहने की नियत से आया हूँ। मिर्ज़ा—बिस्मअल्लाह, तो चलिये इसी मसजिद में तशरीफ़ रखिये। बड़ी फ़िज़ा की जगह है। मैं अभी आया।

( जब बहुत समय पश्चात् आये। पत्नी की बीमारी का बहाना किया। कलीम ने कहा )

कलीम—ख़ैर मुक़ाम मजबूरी है लेकिन पहले एक चराग़ तो भेज दीजिये। अँधेरे की वजह से तबियत घबराती है।

मिर्ज़ा—चराग़ क्या मैंने तो लैम्प रोशन करने का इरादा किया था लेकिन गरमी के दिन हैं परवाने बहुत जमा होजायँगे और आप ज़्यादा परेशान हूजियेगा, और इस मकान में अबा-बीलों की कसरत है रोशनी देखकर गिरनी शुरू होंगी और आपका बैठना दुशवार करदेंगी। थोड़ी देर सब्र कीजिये कि माहताब निकला आता है।

(जब भूक से रहा न गया तो मजबूरन कहा' मिर्ज़ा ने छिन्नमी के यहाँ से कुछ चने लाकर पश किये और बोले)

मिर्ज़ा—यार हो तुम बड़े ख़ुश क़िस्मत कि इस वक़्त भाड़ मिल गया। ज़रा वल्लाह हाथ तो लगाओ। देखो कैसे झुलस रहे हैं, और सोंधी सोंधी ख़ुशबू भी अजब ही दिल फ़रेब है कि बस बयान नहीं हो सकता। ताअज्जुब है कि लोगों ने खस और मिट्टी का इत्र निकाला मगर भुने हुये चनों की तरफ़ किसी का ध्यान नहीं गया। तुम्हें मेरे सर की क़सम सच कहना ऐसे ख़ूब सूरत, ख़ुश क़ता, सुडौल चने तुमने पहले भी कभी देखे थे।

इत्यादि।

लखनऊ से जो 'अवधपंच' निकला वह भी अपने समय में हास्य रस का एक बहुत अच्छा, और सफल साप्ताहिक माना जाता था। परन्तु इसमें ग़ालिब जैसी हँसी नहीं थी जिसको तबस्सुम-ज़ेर-लब (स्मित हास्य) कहते हैं। यहाँ क़हक़हे लगते हैं। फ़िक़रे और फब्तियाँ कसी जाती हैं। कभी कभी भद्दा मज़ाक़ भी हो जाता है और ग्राम्य दोष आ जाता है। परन्तु उस समय की सभ्यता इसको सहन करती है बल्कि सराहती है। सज्जाद हुसेन इसके सम्पादक स्वयं बड़े ज़िन्दा दिल आदमी थे और उन्होंने भी कई उन्यास लिखे जैसे 'हाजी बगलोल,' 'अहमक़-कुल लज़ी,' 'तरहदार लौंडी' इत्यादि। इनके समकालीन सहायक हास्य रस लिखने वाले रतननाथ सरशार, सितम ज़रीफ़, त्रिभुवननाथ हिज्र और 'शौक़' आदि थे जिनमें सरशार अधिक प्रसिद्ध हुए। इन्होंने फ़साना-आज़ाद और ख़ुदाई-फ़ौजदार आदि सुन्दर उपन्यास लिखे। इन सब लेखकों ने समाज और मनोविज्ञान की विविध झाँकियाँ दिखाईं। उस समय का हास्य बहुधा शब्दों का उलट फेर फ़िक़रेबाज़ी, फब्ती, ज़िला और जुगत आदि तक सीमित था। कहीं कहीं चरित्र चित्रण भी बहुत रोचक होता था। सरशार फ़साना आज़ाद में एक जगह लिखते हैं

चोबदार—(हाथ जोड़कर) जांबख्शी हो तो अर्ज़ करूं। बटेर सब उड़गये।

नवाब—(हाथ मलते हुये) सब !! अरे सब उड़गये। हाय मेरे वीर योधा को जो ढूंढ लाये हजार नक़द गिनवालें। इस वक्त मैं जीते जी मर मिटा, उफ़, भई अभी साँडनी सवारों को हुक्म दो कि पंच कोसी दौरा करें। जहां वह बाँका वीर मिले समझा बुझाकर लेही आयें।

मुसाहब—खुदावंद, समझाना कैसा ? वह भी कोई आदमी है कि समझ जायेगा-जनवर लाख पढ़े फिर जनवर है

नवाब—कोई है।

दोस्तलोग—हाजिरपीर व मुरशिद, जी हुजूर !

नवाब—इन पर जूते पड़ें। लो साहब, हमतो इस वक्त घब-राये हुये हैं। यह बात काटता है। उस योधा को तुम ऐसे गधों से ज्यादा तमीज़ है।

दोस्त लोग—सच है हुजूर ! वह तो अरबी समझ लेता है।

दूसरे बोले—खुदावंद ! उसको कुरान के कई सिपारे याद हैं।

तीसरे ने कहा—क़सम है पंजतनपाक की, मैंने उसको नमाज़ पढ़ते देखा है।

चौथा—एक दिन हँस रहा था।

पाँचवाँ—अजी हमने डंड पेलते देखा है।

नवाबसाहब को इन सब बातों पर विश्वास हो गया और उन मुसाहब विचारे की गुद्दी पर दो चार गुद्दे पड़ गये। बटेर क्या उड़ गये कि नवाब के हाथों के तोते उड़ गये। आँखों से आँसू जारी हैं कलेजा बल्लियों उछल रहा है चेहरे पर हवाइयां उड़ी हुई हैं। 'हाय मेरा वीर बहादुर सफ़शिकन ! मुझे तो उन-से प्रेम हो गया था। जी ! मैं तो उसकी बाँकी अदा पर जान देता था। यारो वह नुकीली चोंच, वह दानों से काकुन चुगना

चक्खी खाई और उड़ गया। सैंकड़ोंयुद्ध किये मगर कोरा आया दो दो चोचें हुई और बटेर दुम दबा कर भागा। फिर सामना हुआ और मुंह फेर दिया। किस बांकपन से झपट कर लात देना था कि पाली भर थर्रा उठती थी और उसकी बिसात ही क्या थी? मँझोला जानवर लेकिन बला का कस बल और क़सम है उसी की उसकी खूबियां तो मुझ पर आज खुलीं। यह तो मैं जानता था कि ईश्वर भक्त है। सूरत बटेर की है स्वभाव संतो का. अब सुना कि नमाज़ भी पढ़ता था॥ इत्यादि इत्यादि॥

मीर जाफ़र जटल शखचिल्ली तथा लालबुझक्कड़ की कृतियों से अधिक उनके नाम प्रसिद्ध हैं। इन सब का समय निर्धारित करना भी अनावश्यक है। बहुतसी निरर्थक कहानियां तथा कविताएं इनके नाम से प्रचलित हैं परन्तु उनकी प्रमाणिकता पर विश्वास नहीं किया जा सकता। लाल बुझक्कड़ की कहानियों के सम्बंध में बहुत से दोहे प्रचलित हैं जैसे—एक गांव के कुछ लोगों ने हाथी के पैर का चिन्ह देखा तो चकित रहगये। लालबुझक्कड़ जी कहीं दौरा करते हुये वहां आ बिराजे। लोगों के पूछने पर बहुत मनन और विचार कर ने के बाद फ़रमाया :—

बूझें लाल बुझक्कड़ और न बूझे कोय।
पैर में चक्की बांध के कहीं हिरन न कूदा होय॥

इसी प्रकार शखचिल्ली भी कल्पित जीव हैं। जटल की कविताएँ प्राप्त नहीं हैं नहीं तो प्रस्तुत करता।

अब प्राचीन काल के हास्य रास के लेखकों तथा कवियों की बैठक समाप्त होती है। आधुनिक काल के कवि और लेखक अब अपना अखाड़ा जमायेंगे। आप भी ज़रा दम लेलें।

## ख—आधुनिक काल

मेरा अनुमान है कि जिस प्रकार अँग्रेज़ों ने 'नेटिव' शब्द निकाला था इसी प्रकार फ़ारसी कवियों ने भी हिन्दवी या

[1]नमूने कम दिये गये हैं क्योंकि भाषा कड़ी उर्दू है

'भाखा' शब्द का प्रयोग किया होगा जिस का अर्थ केवल यह होता था कि "भाई! हमारी शायरी शाही ज़बान-फ़ारसी-में नहीं है। हिन्द की भाषा में है।" इसके अतिरिक्त एक धोका उनको और था। वह यहाँ की भाषा की भिन्न भिन्न शाखाओं को चाहे जानते हों उनमें भेद नहीं मानते थे, और इस प्रकार अवधी, ब्रज भाषा और उर्दू भी 'भाषा' या हिन्दी' कहलाती थीं। वह लोग उर्दू को ब्रज भाषा की एक शाखा मानने लगे और यही विचार बहुत दिनों तक जमा रहा, यहाँ तक कि विद्वानों ने जब इतिहास लिखा तो उसमें भी यही विचार प्रकट किया। ग्रियर्सन के सफल परिश्रम का प्रभाव बहुत देर में पड़ा। जब खड़ी बोली एक पक्की और दृढ़ नीव पर खड़ी होगई तब लोगों ने कहा "हाँ इसमें और उर्दू में व्याकरण के नियमों में बहुत मेल है। नीव दोनों की एक ही है।" फिर भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र जी ने प्रकाश फैलाया तो 'प्रसाद' 'प्रेमचन्द''महादेवी' 'कोकिल' आदि ने अपने मधुर स्वर गुञ्जार से नींद के मातों को जगाया और दिखाया कि इस भाषा में भी बहुत से हीरे चमक रहे हैं। उनको उठा कर सर आँखों से लगाओ और जीवन ज्योति जगाओ।

यहाँ हम पहले हिन्दी और उर्दू के लेखकों का हाल लिखेंगे। कवि सम्मेलन और मुशायरे का आनन्द अन्त में लीजिये कि कुछ समय तक हृदय में लहरें उठती रहें॥

१—गद्य

## भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र जी

सम्वत १९०७–१९४१

भारतेन्दु जी के पिता काशी के प्रतिष्ठित रईस और ब्रज भाषा के अच्छे कवि थे। भारतेन्दु जी ने पांच वर्ष ही से कुछ कहना आरम्भ कर दिया था। बड़े बाप के बेटे थे। अपनी पूरी लक्ष्मी को सरस्वती के चरणों में अर्पित कर दिया और थोड़े से

जीवन ही में बहुत कुछ कर डाला। खड़ी बोली में सबसे पहले नाटक और लेख लिखे और कविता भी की। प्रतिभा का प्रकाश फूट पड़ता था, जिसने हास्य को भी चमकाया, हास्य की भी नीव पड़ी; परन्तु ग्राम्य तथा अश्लील दोष जो प्रारम्भिक काल में प्रायः हो जाते हैं लेश मात्र को भी नहीं हैं। बड़े लोग बड़े ही होते हैं। अंधेरनगरी के कुछ दृश्य देखिये :–

१ (राजा, मंत्री और नौकर लोग यथास्थाना बैठे हैं)

एक सेवक (चिल्लाकर)–पान खाइये, महराज!

राजा (चौंक कर)–क्या कहा ? सुपनखा आई ए महराज!
(भागता है)

मन्त्री–(हाथ पकड़कर) नहीं नहीं! यह कहता है कि पान खाइये महराज।

राजा–दुष्ट! नाहक हमको डरा दिया। मंत्री, इसके सौ कोड़े पड़े।

मन्त्री–महराज ! इसका क्या दोष है ? न तमोली पान लगा कर देता न यह पुकारता।

राजा–अच्छा! तमोली को दो सौ कोड़े लगें।

(दो नौकर एक फरियादी को पकड़ कर लाते हैं)

फरियादी–दोहाई है, महराज दोहाई है। हमारा न्याव होय।

राजा–चुप रहो! तुम्हारा न्याय यहाँ ऐसा होगा कि जैसा जम के यहाँ भी न होगा। बोलो क्या हुआ ?

फरि–महराज! कल्लू बनिये की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई।

राजा–(नौकर से) कल्लू बनिये की दीवार को अभी पकड़ लाओ

मन्त्री–महाराज! दीवार ईंट चूने की होती है उसके भाई बेटा नहीं होता।

राजा–अच्छा! कल्लू बनिये को पकड़ लाओ।

(नौकर हाज़िर करते हैं) क्यों बे बनिये! इसकी बकरी

क्यों दबकर मर गई ?

कल्लू–महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं । कारीगर ने ऐसी दीवार बनाई कि गिर पड़ी।

राजा–अच्छा, कारीगर को पकड़ लाओ (कारीगर आता है) क्यों बे कारीगर ! इसकी बकरी किस तरह मर गई ।

कारी–महराज ! मेरा कुछ कुसूर नहीं । इसमें कोतवाल साहब का कुसूर है ।

राजा–अच्छा कोतवाल को अभी पकड़ लाओ और फांसी पर चढ़ा दो।

२ (गोबरधन मिठाई खा रहा है)

गोबर–गुरु जी ने हमको नाहक यहां रहने को मना किया था । माना कि देश बहुत बुरा है पर अपना क्या ? अपने किसी राज काज में थोड़े हैं कि कुछ डर है । रोज मिठाई चाभना, मजे में आनन्द से राम भजन करना (मिठाई खाता है और प्यादा आकर पकड़ लेता है)

प्यादा–चल बे चल । बहुत मिठाई खाकर मोटा हुआ है । आज पूरी होगई ।

दूसरा प्या–बाबाजी चलिये, नमोनारायण कीजिये ।

गोबर–हैं,यह आफ़त कहाँ से आई । अरे भाई मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो तुम मुझको पकड़ते हो।

पहि प्या–आपने बिगाड़ा है या बनाया है इससे क्या मतलब ? अब चलिये फाँसी चढ़िये ।

गोबर–फाँसी ! अरे बापरे बाप, फाँसी । मैंने किसकी जमा लूटी है कि मुझको फाँसी । मैंने किस के प्राण मारे कि मुझ को फाँसी ।

दू: प्या–आप बड़े मोटे हैं इस वास्ते फाँसी हो रही है ।

गोबर–मोटे होने से फाँसी, यह कहाँ का न्याय है ? अरे हँसी

फ़क़ीरों से नहीं की जाती।

पहि:प्या–जब सूली चढ़ लीजियेगा तब मालूम होगा कि हँसी है कि सच। सीधी राह से चलते हो कि घसीट कर ले चलें।

गोबर–अरे बाबा! क्यों बे क़सूर का प्राण मारते हो? भगवान के यहाँ क्या जवाब दोगे?

पहि: प्या–भगवान को जवाब देगा राजा, हमको क्या मतलब, हमतो हुक्मी बंदे हैं।

गोबर–तब भी, बाबा बात क्या है? कि हम फ़क़ीर आदमी को नाहक फाँसी देते हैं।

पहि:प्या–बात यह है कि कल कोतवाल को फाँसी का हुक्म हुआ था। जब फाँसी देने को ले गये तो फाँसी का फंदा बड़ा हुआ क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महराज से अर्ज किया। इस पर हुक्म हुआ कि एक मोटा आदमी पकड़ कर फाँसी दे दो क्योंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सजा होनी जरूरी है। नहीं तो न्याय नहीं होगा। इस वास्ते तुमको ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फाँसीदें

गोबर–तो क्या और कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिलता जो मुझ अनाथ फ़क़ीर को फाँसी देते हैं।

पहि:प्या–इसमें दो बातें हैं, एक तो नगर भर में राजा के न्याय के डर से कोई मोटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़ें तो वह न जाने क्या बात बनाये कि हमीं लोगों के सिर पर कहीं न घहराय। फिर इस राज के साधू महात्मा। इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है। इससे तुम्हीं को फाँसी देंगे।

गोबर–दुहाई परमेश्वर की। अरे मैं नाहक़मारा जाता हूँ। अरे

यहाँ बड़ा ही अंधेर है । अरे गुरुजी महराज का कहा मैंने न माना उसका फल मुझको भोगना पड़ा। गुरुजी गुरुजी !! कहाँ हो ? आओ मेरे प्राण बचाओ अरे मैं बेअपराध मारा जाता हूँ, गुरुजी ! गुरुजी !!

२ (जेलखाने में फाँसी का दृश्य)

गोबर-(प्रकट)—तबतो गुरु जी हम अभी फाँसी चढ़ेंगे।

गुरू—नहीं, बच्चा ! मुझको चढ़ने दे।

गोबर—नहीं गुरुजी ! हम फाँसी पायेंगे।

गुरू—नहीं बच्चा हम। इतना समझाया नहीं मानता। हम बुड्ढे हुये, हम को जाने दे।

गोबर—स्वर्ग जाने में बूढ़ा जवान क्या ? आपतो सिद्ध हो आपको गति अगति से क्या ? मैं फाँसी चढ़ूंगा।

(इसी प्रकार हुज्जत करते हैं सिपाही लोग परस्पर चकित हैं)

सिपाही—भाई यह क्या माजरा है ? कुछ समझ नहीं पड़ता।

दूसरा—हम भी नहीं समझ सकते कि यह क्या गड़बड़ है ?

(राजा मंत्री और कोतवाल आते हैं)

राजा—यह क्या गोल माल है ?

सिपाही—महराज ! चेला कहता है मैं फाँसी चढ़ूंगा, गुरू कहता है मैं चढ़ूंगा। कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बातहै

राजा—बाबाजी बोलो क्यों आप फाँसी चढ़ते हैं ?

गुरू—राजा ! इस समय ऐसा शुभ मुहूर्त्त है कि जो मरेगा सीधा बैकुण्ठ जायगा।

मंत्री—तब तो हमी फाँसी चढ़ेंगे।

गोबर—हम, हम, हमको तो हुक्म है।

कोतवाल—हम लटकेंगे। हमारे कारण ही तो दीवार गिरीथी।

राजा—चुप रहो सब लोग। राजा के होते और कौन बैकुण्ठ जा सकता है। हमको फाँसी चढाओ। जल्दी ! जल्दी।

गुरु—जहाँ न धर्म न बुद्धि नहि, नीति न सुजन समाज।
ते ऐसेहि आपुहि नसैं जैसे चौपट राज॥
[राजा को लोग फाँसी के तख्ते पर खड़ा करते हैं]

भारतेन्दु जी के साथियों में पं० प्रतापनारायण मिश्र पं० बालकृष्ण भट्ट आदि थे और फिर बा० बाल मुकुन्द गुप्त और कलकत्ता वाले पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी हुये। मिश्र जी तथा गुप्त जी का परिचय तो आप कवि सम्मेलन में पायेंगे; परन्तु उनके गद्य के नमूने देखिये।

पं० प्रताप नारायण मिश्र की वाणी में व्यंगपूर्ण वक्तृता की मात्रा प्रायः रहती है। भाषा बैसवारापन लिये रहती है। एक लेख में यों लिखते हैं

## समझदार की मौत है

सच है "सबतें भले हैं मूढ़ जिन्हें न व्यापै जगत गति" मज़े से पराई जमा गपक बैठना, ख़ुशामदियों से गप मारा करना, जो कोई तिथि त्योहार आ पड़ा तो गंगा में बदन धो आना, गंगा पुत्र को चार पैसे देकर सेंत मेंत में धरममूरत धरमऔतार का ख़िताब पाना; संसार परमार्थ दोनों तो बन गये अब काहे की है है और काहे की खें खें? आफ़त तो विचारे ज़िन्दा दिलों की है जिन्हें न यों कल न वों कल; जब स्वदेशी भाषा का पूर्ण प्रचार था, तब के विद्वान कहते थे "गीर्वाण वाणीषु विशाल बुद्धिस्त थान्य भाषा रस लोलो पो हम" अब आज अन्य भाषा वरंच अन्य भाषाओं का करकट ( उर्दू )छाती का पीपल हो रही है; अब यह चिंता खाए लेती है कि कैसे इस चुड़ैल से पीछा छूटे। इत्यादि,

पं० बाल कृष्ण भट्ट ( सं० १९०१ ) कायस्थ पाठशाला में थे इनका ढंग भी मिश्र जी के ढंग से मिलता

जुलता है। ये मुहावरे और कहावतें बहुत प्रयोग में लाते हैं और शुद्ध खड़ी बोली लिखते हैं ; मगर पूरबी रंग छोड़ न सके। इनके गद्य प्रबंध, सुन्दर, भावपूर्ण परन्तु छोटे होते हैं। इनकी शैली का स्तर कुछ ऊंचा यद्यपि क्लिष्ट है। नमूना देखिये —

कल्पना

× × × यावत मिथ्या और दरोग़ की क़िबले गाह इस कल्पना पिशाचिनी का कहीं ओर छोर किसी ने पाया हैं ? अनुमान करते करते हरान। गौतम से मुनि 'गोतम' हो गए। कणाद तिनका खा खा कर क़िनका बीनने लगे पर मन की मन भावनी कन्या कल्पना का पार न पाया। कपिल बेचारे पचीस तत्वों की कल्पना करते करते 'कपिल' अर्थात् पीले पड़ गए। व्यास ने इन तीनों दार्शनिकों की दुर्गति देख मन में सोचा, कौन इस भूतनी के पीछे दौड़ता फिरे, यह सम्पूर्ण विश्व जिसे हम प्रत्यक्ष देख सुन सकते हैं सब कल्पना ही कल्पना, मिथ्या नाशवान और क्षण भंगुर है ; अतएव हेय है। इत्यादि।

बाबू बाल मुकुन्द गुप्त ( सं०१६२२ ) गुरयानी जि० रोहतक के रहने वाले हिन्दी और उर्दू दोनों में अच्छा लिखते थे। सामयिक और राजनैतिक परिस्थित को लेकर कई मनोरंजक प्रबंध लिखे। भाषा सजीव, चलती हुई और विनोद पूर्ण रहती है। जिसमें विचार और भाव छिपे रहते हैं। नमूना देखिए।

शिव शंभु का चिट्ठा---

+ + + इतने में देखा कि बादल उमड़ रहे हैं। चीलें नीचे उतर रही हैं। तबीयत भुर भुरा उठी। इधर भंग उधर घटा -- बहार में बहार। इतने में वायु का वेग बढ़ा, चीलें अदृश्य हुईं। अंधेरा छाया, बूंदें गिरने लगीं ; साथ ही तड़-तड़, धड़ धड़ होने लगी। देखा ओले गिर रहे हैं। ओले थमें ; कुछ वर्षा हुई बूटी तैयार हुई 'बम भोला' कह कर शर्मा जी न

एक लोटा भर चढ़ाई। ठीक उसी समय लालडिग्गी पर बड़े-लाट मिंटो ने बंग देश के भूत पूर्व छोटे लाट उडवर्न की मूर्ति खोली। ठीक एक ही समय कलकत्ते में यह दो आवश्यक काम हुये। भेद इतना ही था कि शिव शम्भु शर्मा के बरामदे की छत पर बूंदें गिरती थीं और लार्ड मिंटो के सिर या छाते पर।

भंग छान कर महाराज ने खटिया पर लंबी तानी और कुछ काल सुषुप्ति के आनन्द में निमग्न रहे + ÷ ÷

हाथ पांव सुख में; पर विचार के घोड़ों को विश्राम न था। वह ओलों की चोटसे बाजुओं को बचाता हुआ परिन्दों की तरह इधर उधर उड़ रहा था। गुलाबी नशे में विचारों का तार बंधा कि बड़े लाट फुरती से अपनी कोठी में घुस गये होंगे। पर वह चील कहाँ गई होगी? शिवशंभु को इन पक्षियों की चिंता है, पर वह यह नहीं जानता कि इन अभ्रस्पर्शी अट्टालिकाओं से परिपूरित महानगर में सहस्रों अभागे रात बिताने को झोंपड़ी भी नहीं रखते। इत्यादि—

पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, कलकत्ता निवासी भी हास्य विनोद पूर्ण लेख लिखते थे जिनको आप मजेदार भाषण कह सकते थे। स्थायी विषयों की प्राय: जान बच गई हैं।

## श्री प्रेमचन्द जी

श्री प्रेमचन्द (धनपतराय) जी हिन्दी साहित्य के वह जगमगाते सितारे हैं जिनको आँख बंद करने पर भी भुला नहीं सकते। उपन्यास और कहानी इनकी लेखनी से अमर होगई और इनको अमर बनादिया। हिन्दी प्रेमियों से इनके बारे में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। उर्दू वाले भी इन पर गर्व करते हैं। इनकी भाषा में प्रवाह और माधुर्य है और कल्पना में विचित्रता और विलक्षणता। इनके यहाँ हास्य की गुञ्जायश कहाँ थी? मगर प्रतिभा का वेग जिधर चल पड़ा रास्ता चमक गया

व्यंग और साधारण हास्य को लेकर दो चार कहानियाँ. निमंत्रण' 'विनोद' आदि लिखी हैं। यहाँ एक छोटी कहानी पढ़िये.–

**मनुष्य का परम धर्म**

होली का दिन है। लड्डु के भक्त और रसगुल्ले के प्रेमी मोटे राम शास्त्री अपने आँगन में एक टूटी खाट पर सिरझुकाये, चिंता और शोक की मूर्ति बने बैठे हैं। उनकी सहधर्मणी उनके निकट बैठी हुई उनकी ओर सच्ची सह वेदना की दृष्टि से ताक रही हैं और अपनी मृदु वाणी से पति की चिंताग्नि को शान्त करने की चेष्टा कर रही हैं।

पण्डितजी बहुत देर तक चिंता में डूबे रहने के पश्चात उदासीन भाव से बोले—नसीबा सहुरा न जाने कहाँ जाकर सो गया। होली के दिन भी न जागा।

पंडिताइन—दिनही बुरे आ गये हैं। यहाँ तो जौन दिनते तुम्हार हुकुम पावा ओही घड़ी ते साँझ सबेरे दोनों जून सूरजनरायन से यही बरदान माँगा करित है कि कहू से बुलौआ आवे। सैकड़न दिया तुलसी माई का चढ़ावा; मुदा सब सोय गये। गाढ़ परे पर कोउ काम नाहीं आवत है।

मोटेराम—कुछ नहीं, ये देवी-देवता सब नाम के हैं। हमारे वखत पर काम आवें तब हम जानें कि है कोई देवी देवता। सत मेंत में मालपुआ और हलुवा खाने वाले तो बहुत हैं॥

पंडिताइन—का सहर भर माँ अब कोऊ भलो मनई नाहीं रहा? सब मरि गये?

मोटेराम—सब मर गये, बल्कि सड़ गये। दस पाँच हैं तो साल भर में दो एक बार जीते हैं। वह भी बहुत हिम्मत की तो रूपये की तीन सेर मिठाई खिला दी मेरा

बस चलता तो इन सभों को सीधे काले पानी भिजवा देता। यह सब इसी अरिया समाज की करनी है।

पंडिताइन—तुमहीं तो घरमाँ बैठे रहत हौ, अब ई जमाने में कोई ऐसा दानी नहीं है कि घर बैठे नेवता भेज देय। कभूं कभूं जुबान लड़ा दिया करौ।

मोटेराम—तुम कैसे जानती हो कि मैंने जबान नहीं लड़ाई। ऐसा कौन रईस इस शहर में है, जिसके यहाँ जाकर मैंने आशीर्वाद न दिया हो, मगर कौन ससुरा सुनता है। सब अपने अपने रंग में मस्त हैं।

इतने में पंडित चिंतामणि ने पदार्पण किया। यह पंडित मोटेराम जी के परम मित्र थे। हाँ, अवस्था कुछ कम थी और उसी के अनुकूल उनकी तोंद भी कुछ उतनी प्रतिभाशाली न थी।

मोटेराम—कहो मित्र, क्या समाचार लाये? है कहीं डौल?

चिंतामणि—डौल नहीं अपना सिर है, अब वह नसीबा नहीं रहा।

मोटेराम—घर ही से आ रहे हो?

चिंतामणि—भाई, हमतो साधू हो जाँयगे। जब इस जीवन में कोई सुख ही नहीं रहा तो जी कर क्या करेंगे? अब बताओ कि आज के दिन जब उत्तम पदार्थ न मिले तो कोई क्यंकर जिये?

मोटेराम—हाँ भाई, बात तो यथार्थ कहते हो।

चिंतामणि—तो अब तुम्हारा किया कुछ न होगा? साफ़ साफ़ कहो, हम सन्यास ले लें।

मोटेराम—नहीं मित्र, घबराओ मत। जानते नहीं हो, बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता। तर माल खाने के लिये कठिन तपस्या करनी पड़ती है, हमारी राय है कि चलो इसी समय गंगा तट पर चलें और वहाँ न

दें। कौन जाने किसी सज्जन की आत्मा जागृत हो जाय।

चिंतामणि—हाँ, बात तो अच्छी है। चलो चलें।

दोनों सज्जन उठ कर गंगा जी की ओर चले, प्रातःकाल था। सहस्रों मनुष्य स्नान कर रहे थे। कोई पाठ करता था, कितनेही लोग पंडों की चौकियों पर बैठे तिलक लगा रहे थे। कोई कोई तो गीली धोती ही पहिने घर जा रहे थे।

दोनों महात्माओं को देखतेही चारों तरफ से 'नमस्कार' 'प्रणाम' और 'पालागन' की आवाजें आने लगीं। दोनों मित्र इन अभिवादनों का उत्तर देते गंगातट पर जा पहुँचे और स्नानादि में प्रवृत्त हो गये। तत्पश्चात् एक पंडे की चौकी पर भजन गाने लगे। यह एक ऐसी विचित्र घटना थी कि सैकड़ों आदमी कौतूहल वश आकर एकत्र हो गये। जब श्रोताओं की संख्या कई सौ तक पहुँच गई तो पं० मोटेराम गौरव युक्त भाव से बोले-सज्जनों! आपको ज्ञात है कि जब ब्रह्मा ने इस असार संसार की रचना की तो ब्रह्मणों को अपने मुख से निकाला। किसी को इस विषय में शंका तो नहीं है?

श्रोता गण—नहीं महाराज, आप सर्वथा सत्य कहते हो। आपको कौन काट सकता है?

मोटेराम—तो ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से निकले, यह निश्चय है इस लिये मुख मानव शरीर का श्रेष्ठतम भाग है। अतएव मुख को सुख पहुँचाना प्रत्येक प्राणी का परम कर्तव्य है। है या नहीं? कोई काटता है हमारे बचन को? सामने आये। हम उसे शास्त्र का प्रमाण दे सकते हैं।

श्रोतागण—महाराज, आप ज्ञानी पुरुष हो, आपको काटने का साहस कौन कर सकता है?

—अच्छा, तो जब यह निश्चय हो गया कि मुख को सुख देना प्राणी का परम धर्म है तो क्या यह देखना, कठिन है कि जो लोग मुख से विमुख हैं वे दुःख के भागी हैं। कोई काटता है इस बचन को?

—महाराज, आप धन्य हो, आप न्याय शास्त्र के पंडित हो

—अब प्रश्न यह होता है कि मुख को सुख कैसे दिया जाय? हम कहते हैं—जैसी तुम में श्रद्धा हो। जैसी तुममें सामर्थ्य हो। इसके अनेक प्रकार हैं। देवताओं के गुण गाओ। ईश्वर वंदना करो सत्संग करो और कठोर वचन न बोलो। इन बातों से मुख को सुख प्राप्त होगा। किसी को विपत्ति में देखो तो उसे ढारस दो। इससे मुख को सुख होगा। किन्तु इन सब उपायों से श्रेष्ठ सबसे उत्तम, सबसे उपयोगी एक और ही ढग है। कोई आप में ऐसा है जो उसे बतलादे? है कोई? बोले!

—महाराज, आपके सम्मुख कौन मुँह खोल सकता है? आपही बताने की कृपा कीजिये।

—अच्छा, तो हम चिल्लाकर, गला फाड़फाड़ कर कहते है कि वह इन सब विधियों से श्रेष्ठ है। उसी भाँति जैसे चन्द्रमा समस्त नक्षत्रों में श्रेष्ठ है।

—महाराज, अब बिलम्ब न कीजिये। यह कौन सी विधि है?

—अच्छा, सुनिये! सावधान होकर सुनिये! वह विधि है मुख को उत्तम पदार्थो का भोजन करवाना, अच्छी अच्छी वस्तु खिलाना। कोई काटता है हमारी बात को? आये, हम उसे वेद मंत्रों का प्रमाण दें।

मनुष्य ने शका की—यह समझ में नहीं आता कि सत्य

भाषण से मिष्ट भक्षण क्यों कर सुख के लिये अधिक सुख कारी हो सकता है ?

कई मनुष्यों ने कहा—हाँ, हाँ, हमें भी यही शंका है। महाराज, इस शंका का समाधान कीजिये।

मोटेराम—और कोई किसी को शंका है ? हम बहुत प्रसन्न होकर उसका निवारण करेंगे। सज्जनों, आप पूछते हैं कि उत्तम पदार्थों का भोजन करना और कराना क्योंकर सत्य भाषण से अधिक सुख दाई है। मेरा उत्तर है कि पहला रूप प्रत्यक्ष है और दूसरा अप्रत्यक्ष। उदाहरणत: कल्पना कीजिये कि मैंने कोई अपराध किया। यदि हाकिम मुझे बुलाकर नम्रता पूर्वक समझाये कि पंडित जी, आपने यह अच्छा काम नहीं किया, आप को ऐसा उचित नहीं था; तो उसका यह दंड मुझे सुमार्ग पर लानेमें सफल न होगा। सज्जनों, मैं ऋषि नहीं हूँ; मैं दीन हीन माया जाल में सँसा हुआ प्राणी हूँ। मुझ पर दंड का कोई प्रभाव न होगा। मैं हाकिम के सामनेसे हटतेही फिर उसी कुमार्गपर चलने लगूँगा। मेरी बात समझ में आती है ? कोई उसे काटता है ?

नारायण—महाराज। आप विद्यासागर हो, आप पंडितों के भूषण हो। आपको धन्य है।

मोटेराम—अच्छा, अब उसी उदाहरण पर फिर विचार करो। हाकिम ने बुलाकर तत्क्षण कारागार मे डाल दिया और वहाँ मुझे नाना प्रकार के कष्ट दिये गये। अब जब मैं छूटूँगा तो बरसों तक यातनाओं को याद करता रहूँगा और सम्भवत: कुमार्ग का त्याग दूँगा। आप पूछेंगे ऐसा क्यों है ? दंड दोनों ही हैं, तो क्यों एक का प्रभाव पडता है और दूसरे का नहीं इसका

कारण यही है कि एक का रूप प्रत्यक्ष है और दूसरे का गुप्त। समझे आप लोग ?

—धन्य हो कृपा निधान ! आपको ईश्वर ने बड़ी बुद्धि सामर्थ्य दी है।

—अच्छा, तो अब आपका प्रश्न होता है कि उत्तम पदार्थ किसे कहते हैं ? मैं इसकी विवेचना करता हूँ। जैसे भगवान ने नाना प्रकार के रंग नेत्रों के विनोदार्थ बनाये, उसी प्रकार मुख के लिये भी अनेक रसों की रचना की, किन्तु इन समस्त रसों में श्रेष्ट कौन है ? यह अपनी अपनी रुचि है। लेकिन वेदों और शास्त्रों के अनुसार मिष्ट रस प्रधान माना जाता है। देवतागण इसी रस पर मुग्ध होते हैं; यहाँ तक कि सच्चिदानन्द, सर्व शक्तिमान भगवान को भी मिष्ट पाकोंहा से अधिक रुचि है। कोई ऐसे देवता का नाम बता सकता है जो नमकीन वस्तुओं को ग्रहण करता हो ? है कोई जो ऐसे एक भी दिव्य ज्योति का नाम बता सके। कोई नहीं है। इसी भाँति खट्टे, कड़वे और चरपरे, कसैले पदार्थों से भी देवताओं की प्रीति नहीं है।

—महराज, आप की बुद्धि अपरम्पार है।

—तो यह सिद्ध हो गया कि मीठे पदार्थ सब पदार्थों में श्रेष्ट हैं। अब आपका पुनः प्रश्न होता है कि क्या समग्र मीठी वस्तुओं से मुख को समान आनन्द प्राप्त होता है। यदि मैं कह दूं 'हां' तो आप चिल्ला उठेंगे कि पंडित जी तुम बावले हो, इस लिये मैं कहूँगा, 'नहीं' और बारम्बार 'नहीं'। सब मीठे पदार्थ समान रोचकता नहीं रखते। गुड़ और चीनी

में बहुत भेद है। इस लिये मुख को सुख देने के लिये हमारा परम कर्तव्य है कि हम उत्तम से उत्तम मिष्ट पार्कों का सेवन करें और करायें। मेरा अपना विचार है कि यदि आप के थाल में जौनपुर की अमृतियां, आगरे के मोतीचूर, मथुरा के पेड़े, बनारसकी क़लाक़न्द, लखनऊ के रसगुल्ले, अयोध्या के गुलाब जामुन, और दिल्ली का हलुवा सोहन हो तो वह ईश्वर भोग के योग्य है। देवता गण उस पर मुग्ध हो जायंगे। और जो साहसी, पराक्रमी जीव ऐसे स्वादिष्ट थाल ब्राह्मणों को जिमायेगा; उसे सदेह स्वर्ग धाम प्राप्त होगा। यदि आप को श्रद्धा है तो हम आप से अनुरोध करेंगे कि अपना धर्म अवश्य पालन कीजिये, नहीं तो, मनुष्य बनने का नाम न लीजिये।

पण्डित मोटे राम का भाषण समाप्त हो गया। तालियां बजने लगीं। कुछ सज्जनों ने इस ज्ञान वर्षा और धर्मो पदेश से मुग्ध होकर उन पर फूलों की वर्षा की। तब पण्डित चिन्तामणि जी ने अपनी वाणी को विभूषित किया।

सज्जनो, आपने मेरे परम मित्र पण्डित मोटे राम जी का प्रभावशाली व्याख्यान सुना। और अब मेरे खड़े होने की आवश्यकता न थी। परन्तु जहां मैं उनसे और सभी विषयों में सहमत हूँ वहां उनसे मुझे थोड़ा मत भेद भी है। मेरे विचार से यदि आप के थाल में केवल जौनपुर की अमृतियां हों तो वह पंच मेल मिठाइयों से कहीं सुखवर्द्धक, कहीं स्वादपूर्ण और कहीं कल्याणकारी होंगी। इसे शास्त्रोक्त सिद्ध कर सकता हूँ।

मोटेराम जी ने सरोष होकर कहा—तुम्हारी यह कल्पना मिथ्या है आगरे के मोतीचूर और दिल्ली के हलुवा सोहन के

सामने जौनपुर की अमृतियों की तो कोई गणना ही नहीं है।

चिंतामणि—प्रमाण से सिद्ध कीजिये।

मोटेराम—प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण ?

चिंतामणि—यह तुम्हारी मूर्खता है।

मोटेराम—तुम जन्म भर खाते ही रहे, किन्तु खाना न आया।

इस पर चिंतामणि जी ने अपनी आसनी मोटेराम जी पर चलाई। शास्त्री जी ने वार खाली दिया और चिंतामणि की ओर मस्त हाथी के समान झपटे ; किन्तु उपस्थित सज्जनों ने दोनों महात्माओं को अलग अलग कर दिया॥

---

## श्री विजयानन्द जी दूबे (पं० विशम्भर नाथ शर्मा कौशिक)

श्रीकौशिक जी (दूबे) ने पत्र साहित्य की ओर ध्यान दिया और प्रशंसनीय काम किया। समाज के रोगों के लिये आपने व्यंग का काढ़ा उपयुक्त समझा। बोल चाल की भाषा में प्रवाह और ढंग रोचक है। इन के पत्रों से चांद बहुत दिनों मुस्कराता रहा। इनके उपन्यास और इनकी कहानियां 'प्रेमचन्द जी' की कृतियों से बहुत दूर नहीं हैं। एक पत्र यहां दे रहा हूं आनन्द लीजिये।

अजी सम्पादक जी महाराज ! जै राम जी की।

आप अपने मन में कहेंगे कि दूबे जी महाराज सदा एक न एक नया स्वांग लाते हैं। परन्तु सम्पादक जी मैं क्या करूँ ? जब लोगों को हिमाक़त की बातें करते देखता हूँ तो जी नहीं मानता। हमारे मुहल्ले में एक महाशय रहते हैं ! वह वृद्ध सज्जन नहीं, जिनके बारे में मैं अपनी पिछली चिट्ठियों में लिख चुका हूँ यह महाशय परले सिरे के दुर्बल ी है एक दिनक

ज़िक्र सुनिये। आप कहीं बाहर जा रहे थे। असबाब तांगे पर लद चुका था। घर से टीका लगवा कर और दही लड्डू खाकर बाहर निकले और ज्यों ही तांगे पर पैर रक्खा त्यों ही किसी ने तड़ से छींका। बस फिर क्या था? तुरन्त लौट पड़े और घर के अन्दर घुस गये। पत्नी ने कहा 'जूता बदल कर पहन लो'। वह झल्ला कर बोले "यह देशी जूता थोड़ा ही है जो बदल लूं। यह शू है शू, यह बदल कर नहीं पहना जा सकता" पत्नी ने कहा 'अच्छा एक गिलास ठंडा पानी पीलो'। अतएव वह बिना प्यास एक गिलास पानी पीकर पुनः बाहर निकले। द्वार पर आये ही थे कि घर की बिल्ली आगे से रास्ता काट कर निकल गयी। अब क्या था? बहुत ही बिगड़े, बोले "इसी लिये मैं मना करता था कि बिल्ली न पालो। यह ऐसा पाजी जानवर है कि जब कहीं बाहर जाओ तो रास्ता अवश्य काटेगा। ऐसे मन्हूस जानवरका पालना किस काम का।" यह कहते हुये फिर दरबे के अन्दर हो गये। पत्नी ने कहा—'सौ दफ़ा राम का नाम जप लो; बिल्ली के रास्ता काटने का प्रभाव जाता रहेगा'। अतएव आप 'राम नाम' जपने लगे। उधर तांगा वाला चिल्लाया—बाबू जी चलिये! तांगा कब तक खड़ा रहे?" बाबू जी ने उत्तर दिया—आते हैं; परन्तु इन दो शब्दों के कहने में यह भूल गये कि राम-नाम कितनी बार जपा था। पत्नी से बोले 'इस ससुरे तांगे वाले ने भुला दिया। न जाने कितनी बार जपा था। अब फिर से जपना पड़ा'। अतएव आप ने फिर से जपना शुरू किया। ख़ैर, किसी न किसी प्रकार सौ की संख्या समाप्त करके उठे और 'श्री गणेशजी सदा सहाय' कह कर फिर बाहर निकले। इधर पंडित जी की यह दशा देख कर यार लोगों को दिल्लगी सूझी। ज्योंही उन्होंने दहलीज़ के बाहर पाँव रक्खा त्योंही एक ने 'आक्छी' के साथ दोनाली का फ़ायर किया। बस फिर क्या था? पंडित

जी तो आग ही हो गये, कड़क कर बोले—अब मुहल्ले भर को आजही जुकाम होगा। आजही सब मरेंगे। यहाँ खड़े क्या देखते हो, कोई नाच हो रहा है? देख रहे हो कि एक आदमी बाहर परदेस जारहा है। फिर भी सामने खड़े होकर ऐन नाक के सामने छींकते हो। अच्छा अब नहीं जायेंगे, चाहे जो हो। तुम लोग आज खूब जी भर के छींक लो।

पंडित जी फिर लौट पड़े। पत्नी से बोले - "अब क्या करें? क्या न जाँय? काम बड़ा जरूरी था। अच्छा, शास्त्र में लिखा है कि सोलह साँस ले लेने से छींक का दोष जाता रहता है।" यह कह कर आपने श्वासें गिनना आरम्भ कीं।

इधर द्वार पर जो दो एक दिल्लगी बाज खड़े थे; उन्होंने एक कौतुक और रचा। मुहल्ले का एक आदमी जो काना था उधर से कहीं जा रहा था। एक ने उसे बातों में लगा कर वहीं खड़ा कर लिया। पंडित जी ज्योंही पुनः द्वार पर आये त्योंही एक ने उस काने से कहा—'पंडित जी आ गये। अभी तुम्हें पूछ रहे थे।' यह कह कर वह तो हट कर दूर जा खड़ा हुआ और वह काना पंडितजी के सामने पहुँचकर बोला—'क्या हुक्म है पंडित जी?' पंडित जी ने उसकी सूरत देखी तो हाथ पर ढीले हो गये। पहले तो हक्का बक्का होकर उसका मुह ताकते रहे तत्पश्चात् एक दम से मुख लाल हो गया। दांत पीस कर बोले—"क्यों बे हरामजादे! तुझे भी इसी समय आना था? जी चाहता है दूसरी भी फोड़दूँ। झगड़ा मिटे।" काना बोला "पंडित जी! मुझसे एक आदमी ने कहा कि पंडित जी तुम्हे पूछ रहे थे।" पंडित जी बोले 'हाँ तुम बड़े खूब सूरत हो न जो तुम्हें पूछ रहे थे और मुहल्ले वाले तो हैं बदमाश, लुच्चे, उन्हें किसी के हानि लाभ से क्या मतलब? दिल्लगी बाजी में पड़े हैं। अच्छी बात है अब मैं यह मुहल्ला ही छोड़ दूँगा। बस तांगे

वाले ! उतार दे असबाब ! अब नहीं जायेंगे।" ताँगेवाले ने कहा "तो मेरी मजूरी तो लाइये।

पंडित जी-मजूरी ? कैसी ? "ताँगे वाला-इतनी देर से खड़ा हूँ। इतनी देर में तो मैं एक रुपया पैदा करता। वाह ! अच्छे आये। कोस भर से बुला के लाये, घण्टा भर खड़ा रक्खा, अब कहते हैं असबाब उतार दो। मुझे क्या आप चाहे जाइये चाहे न जाइये, मेरी मजूरी दे दीजिये।"

पंडित जी—तो क्या मुफ्त की मजूरी लेगा ?

ताँगेवाला—घंटाभर से खड़ा नहीं हूँ। मुफ्त की काहे की ? आप तो छींक पाद के फेर में रह गये ; मैं गरीब मर मिटा।"

पंडित जी—तो तेरे वास्ते हम अपना सगुन असगुन न देखें। रास्ते में कुछ गड़बड़ हो जाय तो तू काम आयेगा ?

इस प्रकार पंडित जी और ताँगे वाले में झाँय झाँय होने लगी। अन्त में दो चार आदमी बीच में पड़े और चार आने में फैसला कर दिया। बोले-'यह बेचारा गरीब आदमी इतनी देर से खड़ा है। इसे कुछ तो दीजिये ही।

पंडित जी बोले--"यह अच्छी रही। हमारा इतना बड़ा नुकसान हुआ। जरूरी काम था नहीं जासके। ऊपर से चार आने की यह चपत पड़ी। न जाने आज किस ससुरे का मुँह देख कर उठे थे" ताँगेवाला असबाब उतार कर और चार आने पैसे लेकर चल दिया। पंडित जी ने उस दिन क्रोध के मारे भोजन नहीं किया। मुझसे दूसरे दिन भेंट हुई। मैंने पूछा 'यह कल क्या मामला हुआ ? "पंडित जी बोले, मामला जो कुछ हुआ अच्छा हुआ। मैं यह मुहल्ला ही छोड़ दे रहा हूँ।" मैंने कहा-आप इतने दुर्बल विश्वासी हैं। यह मुझे नहीं मालूम था। पंडित जी बोले 'क्यों ? शास्त्र के अनुसार कार्य करना दुर्बल

विश्वास है ? आप तो हैं नास्तिक, कुछ मानने जानते नहीं । हम सनातन धर्मी और कर्म काण्डी ब्राह्मण ठहरे । हमें तो मानना पड़ता है ।

मैंने पूछा—यदि आप कल चले जाते तो क्या होता ?

पंडित जी—होता कुछ जरूर, चाहे जो होता । सम्भव है रेलही ही लड़ जाती ।

मैं—रेल तो कहीं लड़ी नहीं ।

पंडित जी—मैं गया नहीं इसीसे नहीं लड़ी । रेल न लड़ती तो और कुछ उपद्रव हो जाता होता कुछ जरूर । कुछ ठिकाना है । चार चार अपशकुन । दो दफा छींक हुई एक दफा बिल्ली रास्ता काट गई । ख़ैर वह सब हुआ था कोई चिंता नहीं । हमने उसका उपचार करलिया परन्तु अन्तसमय वह साला काना सामने आखड़ा हुआ । इसका कोई उपचार शास्त्र में है नहीं, क्या करता ? नहीं गया ।

काना विप्र मिले मगमाही । प्राण जाँय कछु संशय नाहीं ॥

मैं—तब तो आपने बड़ा पुण्य कमाया । यदि आप जाते तो रेल तो लड़ती केवल आपही की हत्या करने को, अन्य लोग मुफ्त में मरते ।

पंडित जी सिर हिला कर बोले—हाँ बात तो ऐसी ही थी ।

मैं—शास्त्र भी क्या चीज है ? शास्त्र की बदौलत आप स्वयंम् भी बच गये और दूसरे को भी बचा लिया । यदि शास्त्र न जानते होते तो काहे को बचते ? क्यों न ?

पंडितजी—अब आप राह पर आये । शास्त्र की बड़ी महिमा है । ज्योतिषी लोग दैवज्ञ क्यों कहलाते हैं ? इसी लिये कि उन्हें भूत, वर्तमान, भविष्य, तीनों कालों का ज्ञान रहता है

मैं—तो आपको भी तीनों काल का ज्ञान रहता होगा।

पंडित—हाँ! रहता क्यों नहीं? रहे न तो काम कैसे चले? ज्ञान न होता तो कल चले न जाते? यदि कल चले जाते तो कल बस........।

मैं—सब समाप्त हो जाता?

पंडित—और क्या? इन सब बातों का विचार रखना चाहिये पहले हम दो तीन बरस ... मुहल्ले में रहे। वहाँ की दशा क्या बताऊँ? उस मुहल्ले में पाँच छः काने हैं। घर से किसी समय निकलो एक न एक काना सामने खड़ा है। नाक में दम होगया। क्या कहें, दुबेजी, जब कभी कहीं आवश्यक कार्य से जाना हो तो पहिले दो आदमी दोनों नाकों पर खड़े कर देते थे कि कोई काना हो तो उसे युक्ति से हटा दें। फिर भी अधिक तर मिल ही जाते थे। अंत में जब बहुत तंग हो गये तो वह मुहल्ला ही छोड़ दिया।"

मैं—'ओक ओह'! तब तो इन कानों का एक अलग मुहल्ला बसाना चाहिये।

पंडित—हाँ! है तो ऐसाही।

मैंने पंडित जी से अधिक वाद विवाद करना उचित न समझा; क्योंकि वह ठहरे टेढ़े, लोग जो कभी सीधे होते ही नहीं। सो सम्पादक जी, यह दशा है। जिस जाति में ऐसे लोग हों उससे क्या आशा रक्खी जा सकती है?

ऐसे ऐसे लोग हैं जो घर से बाहर जाते समय ऐसे रूप बनाते हैं कि मानों काले पानी जारहे हैं। तीन तीन, चार चार दिन पहले से सायत मुहूर्त देखा जाता है। ऐसों के लिये सप्ताह मे एकाध ही दिन ऐसा निकलता है, जिस दिन श्रीमान कहीं परदेश की यात्रा कर सकते हैं। अन्यथा आज दिशा शूल है।

आज नक्षत्र ठीक नहीं है, आज बायें चन्द्रमा है, आज भद्रा है। इसी फेर में रहते हैं। जिस समय घर से निकलते हैं तो ऐसा प्रबन्ध रहता है कि मानों वायसराय की सवारी निकल रही है। कोई आदमी नंगे सिर सामने न आये। किसी को नंगे सिर देखा तो ललकारा "हटो सामने से या सिर ढकलो। जानते नहीं फलाने जा रहे हैं। यह औरत जो खाली डोल लिये खड़ी है उसे कहो सामने से हट जाय। या डोल में पानी भरले। इस बिल्ली को मारो, रास्ते में खड़ी है। ऐसा न हो कि रास्ता काट जाय।"

यदि घटना वश किसी ने टोक दिया—'कहिये महाराज कहां चले?' ऐ है! बस गजब हो गया बरस पड़े—आप भी अजब आदमी हैं। इतने बड़े हो गये पर तमीज न आई। सरासर देख रहे हो कि काम से जा रहे हैं फिर भी टोक दिया। वाह साहब वाह।' जो किसी ने इस पर प्रश्न कर दिया—'क्या जनाब? टोकने से क्या हो गया?' तो और भी बिगड़े। बोले' आप तो अंगरेजी पढ़ कर नास्तिक बन गये। आप इन बातों को क्या समझ सकते हैं?

नास्तिक की परिभाषा भी कितनी बढ़िया है। जो छींक और टोकने में कोई हानि न समझे वह नास्तिक। खुदा हाफ़िज है इन अक़्ल के दुश्मनों का। प्रातःकाल उठ कर यदि कहीं हाथी और बंदर का नाम ले लीजिये तो आफ़त हो जाय। दोनों ऐसे प्राणी ईश्वर ने उत्पन्न किये हैं कि प्रातःकाल उठकर उनका नाम ले लिया जाय तो कोई न कोई अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है।

सम्पादक जी! ऐसी ऐसी मूर्खतायें हम लोगों में भरी पड़ी हैं कि उनका वर्णन करते हुये लज्जा मालूम होती है ईश्वर

हम लोगों को इतनी बुद्धि दे कि हम लोग इन मूर्खताओं से अपनी रक्षा कर सकें ! भवदीय—
विजयानन्द (दूबेजी)

## श्री जी० पी० श्री वास्तव

श्री जी० पी० श्रीवास्तव वकील, गोंडा में रहते हैं। आप ने विद्यार्थी जीवन काल ही में मोलियर के ड्रामों से प्रभावित हो कर हिन्दी में हास्य युक्त नाटक लिखे और ख्याति प्राप्त की। 'लम्बी दाढ़ी' कहानियों का संग्रह बहुत पसंद किया गया। कुछ उपन्यास भी 'लतखोरी लाल' आदि लिखे। आप के नाटक 'मरदानी औरत' 'मार मार हकीम' आदि ने जनता को हंसा कर आनन्द पहुँचाया। आप का हास्य हास्य के लिये है। कुछ लोग इस को चाहे ऊँचे स्तर का न मानें और भाषा को भी साहित्यिक न कहें; परन्तु उस समय महफ़िल में और था ही कौन जो आप के सामने आता। अधिक लिखने वालों में प्रायः ग्राम्य दोष आ जाता है, और फिर आप पुरानी सोहबतें देखे हुये हैं। आप हंसाने के बाद सोचने के चक्कर में किसी को नहीं डालते। न सुधार आप का उद्देश्य है। आप के क़लम की हालत आज कल उस टट्टू के समान मालूम होती है जो दिन भर इक्के में जुते रहने के बाद शाम को थक कर थान पर आकर बैठ जाता है। जी चाहा घास खाई, कभी हिन हिनाये, नहीं तो चुप। पेशा और उम्र शायद दोनों मिल कर आप को साहित्य के क्षेत्र से बाहर घसीट रहे हैं। और यह हर्ष की बात नहीं है। यहां "लतखोरी लाल" से कुछ अंश दे रहा हूँ। नाटक पूरा देखिये तो आनन्द आयेगा।

चिंता हुई कि खाना मांगू किस तरह; पेट तो चिल्ला रहा था परन्तु जबान तालू से सटी हुई थी बार बार उसे

हिलाने की कोशिश करता रहा मगर कमबख्त अपनी जगह से हटती ही न थी। बड़ी मुश्किलों से पेट पकड़, कलेजा थाम कर बहुत कुछ सोच विचार कर मुँह जो खोला तो कांपती हुई आवाज़ में केवल इतना कह सका "भाई साहब"। दोनों शिकारियों का मिजाज बिगड़ गया। दोनों ही ने एक सांस में डांट दिया। इसके पश्चात एक ने फिटकारना आरम्भ किया "क्यों बे गधे? उल्लू के बच्चे! तमीज़ से बातें नहीं करता। हम तेरे भाई होने लायक हैं। हरामजादे! यह सूरत और यह हौसला। भाग यहां से नहीं मारते मारते कचूमड़ निकाल लूंगा।"

अब ध्यान आया कि मेरा वेष तो भीख मांगने वालों का सा है इस लिये मुझे टुकड़गदों की भांति बात चीत करना चाहिये। अपनी गलती को सुधारता हुआ अपनी आवश्यकतायें प्रकट की, क्योंकि साफ़ साफ़ शब्दों में स्वभाव के प्रतिकूल कभी बल नहीं पड़ता चाहे आज़मा कर देख लो।

मैं—मैं दुखिया हूँ। भूख से मेरा बुरा हाल है। अपने स्वार्थ में अंधा हो रहा हूँ। मैं ने जान बूझ कर आप का अपमान नहीं किया। मैं क्षमा चाहता हूँ। यदि आप कृपा कर अपनी बंदूक आदि ढोने के लिये मुझे अपना कुली बना लेवें तो मैं अपने पेट की ज्वाला को शान्त कर सकूंगा और आप के लिये ईश्वर से प्रार्थना करूंगा।

दोनों आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगे और फिर अपना सामान शीघ्रता से बांधने लगे। एक ने घबरा कर कहा "मैं पहचान गया जनाब। मगर आप हम लोगों के पीछे नाहक़ पड़े हैं। आप सी० आई० डी० के आदमी हैं तो जाइये किसी चोर बदमाश का पता लगाइये। देश के सेवकों का पीछा करके अपना मान गवांते हो। राष्ट्र के सम्बंध में जैसी वार्तालाप हम कर रहे थे वैसी तो आजकल सभी किया करते हैं परन्तु इस से

यह थोड़ाही साबित है कि हम विद्रोही हैं।"

दूसरा—एक नसीहत मेरी भी सुन लीजिये। वह यह कि जब कभी आपको भीख माँगने का भेस बनाना हो तो खोपड़ी पर अंग्रेज़ी बाल, उँगली में सोने की अँगूठी और भाषा में शीन, क़ाफ़ को ठीक न रखिये नहीं तो इसी प्रकार हर जगह आपका भाँड़ाफोड़ होगा और आपकी क़लई खुल जायगी।

इतना कह कर वे दोनों अपना सामान लादे हुये तेज़ी से चल दिये और मैं अपना सा मुँह लेकर रह गया। वही मसल कि जहाँ जाय भूखा, वहाँ पड़े सूखा। मगर ख़ैर इस कष्ट के अँधेरे में अँगूठी के विचार ने चमक कर मुझ मरियल दुर्बलको ख़ुदापूर पहुँचने से रोक लिया। इसका तो मुझे ध्यान ही नहीं था नहीं तो आधे तिहाई मूल्य पर उसको बेच कर इन कष्टों से छुट गया होता। ख़ैर! अब सही। यद्यपि घर अब केवल तीन मील ही के फ़ासले पर था फिर भी अँगूठी बेचने का दृढ़ संकल्प कर लिया क्योंकि बिना कुछ खाये पिये, सूरत की हवाइयाँ मिटाये और फिटकार दूर किये श्री मती जी के सन्मुख कैसे जा सकता था।

भला वह ऐसी सूरत पर कब दया करने वाली थीं? उन्हें हमारे दुःखों से क्या मतलब? उन्हें यदि इतना ही ध्यान होता तो आज तक मिलने से घृणा करके मुझे कुत्ते की मौत क्यों मारतीं?

इसी बीच में एक जवान उधर से अकड़ता हुआ निकला। मैं दिल में समझा कि आदमी शौक़ीन है और यह अवश्य मेरी अँगूठी ख़रीद लेगा। इस लिये झट हाथ में अँगूठी लिये हुये उसके पास पहुँचा।

मैं—यह अँगूठी ख़रीद करोगे? बहुत सस्ते में देदूँगा। जी चाहे तो ले लो

जवान ने अँगूठी हाथ में लेकर पूछा "यह अँगूठी किसकी है ?"
मैं—मेरी है।

जवान ने आव न देखा ताव, बस धड़ से एक थप्पड़ मेरे मुँह पर जड़ दिया।

जवान—क्यों बे यह तेरी है ? तेरे बाप ने भी ऐसी अँगूठी देखी थी ? चोर कहीं का। तू पुलिस के आदमी को धोखा देता है। जानता नहीं मैं पुलिस का हवलदार हूँ। चल थाने पर। अब तुझे मैं कहाँ छोड़ने का ? आजही तो चोरी करने का मजा चखाऊँगा।

'हाय, बापरे बाप' थप्पड़ से तो केवल गाल लाल हुये पर लाल पगड़ी का नाम जो सुना तो हुलिया बिगड़ गया। पूरा शरीर काँप उठा और जान सूख गयी। क्योंकि सत्य तो यह है कि मैं मौत से इतना नहीं डरता जितना पुलिस से, और इतना पुलिस कप्तान से नहीं जितना कानिस्टबल से। कोई मुझे डर-पोक भले ही कहे लेकिन भाई सच तो यह है कि अगर मेरे सगे बाप भी पुलिस के आदमी होते, उनसे भी इसी तरह डरता। बल्कि पैदा होते ही, आँख बंद करके फिर अल्लामियाँ के पास चल देता क्योंकि अगर किसी समय अब्बा जान को कोई मुक़द्मा न मिलता तो वह मुझे ही जेलखाना भेजने का इन्तज़ाम कर बैठते और कहते "बेटा ! मैं अपने स्वभाव से मजबूर हूँ। क्या करूँ ? मेरे पास फँसाने के लिये हजारों दफ़ायें हैं मगर इस व़क्त कमबख्त कोई चालान करने को नहीं मिलता इस मुसीबत के समय तुम्हीं सहायता करो। तुम से बढ़ कर मुझे कौन प्यारा है ? इस कारण यह पितृ प्रेम तुम पर निछावर कर रहा हूँ।" इत्यादि।

## श्री हरिशंकर जी शर्मा

श्री हरिशंकर शर्मा जी इटावा के रहने वाले हैं प नाथू

राम शर्मा 'शंकर' प्रसिद्ध लेखक, कवि और आलोचक थे। हास्य में भी आगे आगे थे। शर्मा जी भी इसी प्रकार कवि, लेखक तथा सम्पादक हैं। हास्य भी लिखते हैं। यहाँ इनका यह व्यंग देखिये।

लीडर

मुवक्किल छुटे उनके पंजे से जब,
तो बस क़ौम मरहूम के सर हुये।
पपीहा पुकारा किया 'पी' कहाँ,
मगर वह पिलीडर से लीडर हुये॥

लीडर एक ख़ास क़िस्म का समझदार जंतु होता है जो हर मुल्क और मिल्लत में पाया जाता है। उसे क़ौम के सर पर सवार होना और सभा सोसाइटी के मैदान में दौड़ना बहुत पसंद है। उसकी शक्ल सूरत इन्सान से मिलती जुलती है। वह गर्मियों में अक्सर पहाड़ों पर किलोल करता है मगर जाड़ों में नीचे उतर आता है। देखने में वह सादा सा दिखाई देता है पर हक़ीक़त में वह वैसा नहीं है। खाने की चीज़ों में उसे सेब, संतरा, अंगूर, केले, अनार वग़ैरह क़ीमती फल ज्यादा पसन्द हैं। दूध तो उसकी ख़ास ग़िज़ा है। मौक़ा पड़ने पर ग़ल्ले की पूड़ी पकवान को भी गले में उतार देता है, मगर बहुत ख़ुशी के साथ नहीं। कहने को तो लीडर जन्तु है मगर उसमें ख़ुद-दारी का जज़बा ख़ूब जोश पर रहता है। वह अपने ख़याल के ख़िलाफ़ न कुछ सुन सकता है और न पोज़ीशन को कम होते देख सकता है। जिस तरह सरकार को सोते जागते उठते बैठते "पीस ऐंड आर्डर" का ध्यान रहता है उसी तरह लीडर अपनी तक़रीरें और तारीफ़ अख़बारों में छपी देखने के लिये फ़िकर मन्द लगा रहता है। वह औरों को अपने पीछे घसीटता, मगर ख़ुद किसी के साथ खिंचना पसंद नहीं करता। जिस वक़्त इस अजीब जन्तु के बिगड़े दिल में क़ौम का दर्द उठता है उसवक़्त

बहुधा बेक़रार हो जाता है कि कभी तार घर की ओर दौड़ता और कभी डाकख़ाने की तरफ़ कुलाचें भरता है। ज़्यादा दर्द होने की हालत में उसकी बेचर्नी का ठिकाना नहीं रहता। यहाँ तक कि वह बड़ेबड़े मजमों में खड़ा होकर बेतहाशा चीख़ता पुकारता है, छाती पर हाथ मारता और जमीनपर पाँव पटकता है। आँखें सुर्ख़ कर देता और दाँत काटने लगता है। मुँह बनाता और हाथ घुमाता है। इधर को झुकता और उधर को झूमता है। इसकी ऐसी ख़ौफ़ नाक हालत देख कर लोग उसके पास पानी या दूध का प्याला रख आते हैं जिसे वह चुस्की लेकर पीता मगर चिल्लाना बंद नहीं करता। कभी कभी इस जंतुकी यह परेशानी ख़ूंख़ारी में तबदील हो जाती है तो उसके लिये उसे मियादे मुकररा के लिये लाल फाटक के कड़े बाड़े में बंद रहना पड़ता है जहाँ उसे न हस्बख़ाहिश दाना चारा मिलता है और न मज़ेदार मकान ही नसीब होता है। इस दुनियाँ में आकर पहले तो लीडर ग़ुर्राता है मगर कुछ दिनों बाद उसकी हालत पाल्तू बकरी की तरह हो जाती है।

यह अजीब जन्तु अपने पांव पर चलना बहुत कम पसंद करता है। रेल के गुद गुदे गद्दे और मोटर के मुलायम तकिये देख कर उसकी तबीयत बाग़ बाग़ हो जाती है। घटिया सवारियों पर सवार होना उसे अच्छा नहीं लगता बल्कि वह उसे कसरेशान समझता है। लीडर में एक बड़ी ख़ुसूसियत है। अपने बुलावे की डाक द्वारा सूचना पाकर उसकी सेहत ख़राब हो जाती है और अदीमुल फ़ुरसती सामने आ जाती है; मगर ज्यों ही अर्जेंट टेली ग्राम पहुँचा त्यों ही वह तन्दुरुस्त हुआ और उसने अपनी रवानगी का तार खट खटाया। दुनियां इधर से उधर हो जाय पर लीडरी तार का बेतार न होना चाहिये। अगर रवानगी का तार पाकर बहुत से लोग फ़स्

माला लेकर इस्तक़बाल के लिये स्टेशन पर नहीं पहुँचते तो लीडर बुरी तरह बड़बड़ाता और बिदक जाता है। कभी कभी तो उलटा वापस होते हुये भी देखा गया है। लीडर जन्तु सड़ी गली हवेलियों में रहना पसंद नहीं करता। उसे फ़र्स्ट क्लास कोठी के बिना चैन नहीं पड़ता और न नींद आती है। वह बात करने में बड़ा कंजूस होता है। छोटे लोगों को तो पास भी नहीं फटकने देता है। हां, कुछ बड़े आदमियों से घड़ी सामने रख-कर थोड़ी देर गुफ़्तगू करने में ज़्यादा हर्ज नहीं समझता। ओह हो! जिस समय उसे १४४ नम्बर की लाल झंडी दिखाई जाती है उस समय तो उसकी वही हालत हो जाती है जो बाल छड़ सूँघने वाली बिल्ली की होती है। कभी कभी वह झंडी को फाड़ने के लिये दौड़ता है। कभी पीछे खिसक जाता है, कभी उछलता है। कभी कूदता है और कभी ज़ोर से ग़ुर्रा कर ही रह जाता है। जिस प्रकार भेड़िया भेड़ को पुच-कारता है उसी प्रकार लीडर पब्लिक के पैसे पर प्यार करता है। हिसाब फ़हमी का प्रश्न उसकी इनसल्ट और जीवन मरण की समस्या है। बाहरी दुनियां में लोगों को लीडर जैसा पुर-जोश दिखाई देता है वैसा वह अपनी गुफ़ा में नहीं नजर आता है। क्योंकि उसकी घरेलू और बाहरेलू दो तरह की ज़िन्दगी होती है। जो लोग इस भेद को नहीं जानते वे अक्सर धोखा खा जाते हैं और तकलीफ़ उठाते हैं।

लीडर जन्तु के मिलने जुलने के भी कई तरीक़े हैं। किसी से वह खिल खिला कर शेक 'हैंड' करता है। किसी के साथ आधी हंसी हंसता है। किसी के आगे उदासीनता दर्शाता है और किसी के समक्ष मुहं फुला और भौं चढ़ाकर अपने मनो-भाव प्रकट करता है। जिसके भाग्य में जैसा बदा हो वैसा ही उसके साथ व्यवहार होता है। साधारण लोगों की शक्लों को

जानते बूझते भूल जाना और उनके किसी खत का उत्तर तक न देना लीडरेन्द्र की खसूसियत समझनी चाहिये। लीडर की पोशाक बड़ी विचित्र होती है। परिस्थति को देखकर उसे रंग बदलना खूब आता है। कभी बढ़िया लिबास अख्तयार करता है तो कभी खद्दर की झूल लाद कर ही खुश हो जाता है। एक दो नहीं, लीडर सैकड़ों हजारों तरह के होते हैं। कोई राजनैतिक मैदान में उछल कूद मचाता है किसी ने अगाड़ी पिछाड़ी तोड़ कर धार्मिक क्षेत्र में द्वन्द्व मचाना शुरू कर दिया और कोई कोई लीडर समाज संशोधन की सड़क पर कुलांच भरने ही में मस्त हैं। इसके भी हजारों भेद, उपभेद हैं। सब का वर्णन करने के लिये बहुत बड़ी पोथी चाहिये। अगर मौका मिला और मजलिस भी जमी तो चैत्र कृष्ण प्रति पदा की सभा में इस विषय पर विस्त्रित व्याख्यान दिया जायगा। सब लोग कृपा कर उस दिन हवाई किले के मैदानमें रातके ठीक पौने तीन बजे पधारें॥

## श्री शिव पूजन सहाय जी

श्री शिवपूजन सहाय जी बिहार के रहने वाले हिन्दी के अच्छे लेखक हैं। इनकी भाषा सुन्दर, मुहावरेदार और अधिकतर अनुप्रासयुक्त होती है। गद्य में काव्य झाँकता है। विचार उत्तम हैं, व्यंग कम परन्तु अच्छा लिखते हैं। हास्य की शैली प्रांतीय रंग लिये है। जैसे—

## मैं हज्जाम हूँ!

मैं हज्जाम हूँ। अच्छी हजामत बनाता हूँ। जी लगाकर बना दूँ तो केश पखवारे तक न पनपें—रोएं भी न अंकुरें। मगर जी लगता नहीं जब तक मेरे छुरे को 'छप्पन छुरा'—कोई छैल छबीला—नहीं मिलता। मिल गया तो छुरा रस बसे चलन

लगता है। अगर संयोग से कोई गंडपाताली मिल गया तो छुरा छूट कर चल पड़ता है । इस लिये कपालपाताली मेरे ढिग फटकते ही नहीं। मेरी उन्मादिनी उँगलियाँ जब गालों को गुद-गुदाने लगती हैं तो रसज्ञों को नींद आने लगती है।

नीति शास्त्रानुसार शस्त्रधारी कभी विश्वसनीय नहीं होता, किन्तु मेरे शस्त्र सज्जित 'लोखर' को देख कर भी बड़े बड़े राजा रईस और सेठ साहूकार बड़ी आस्था के साथ मेरे छुरे के आगे गर्दन झुका देते हैं । जो सारी दुनियाँ को उलटे छुरे से मूँड़ते हैं उन्हें मैं सीधे छुरे से ही मूँड़ डालता हूँ—मनमाने पैसे भी गिना लेता हूँ और मनमना कर ठोठ भी मसल देता हूँ ।

किसी सशस्त्र व्यक्ति के हाथ में कोई विश्वास पूर्वक अपना सिर नहीं सौंपता, पर मेरे 'विश्वसनीयमायुध' के सामने सब के सब स्वतः आत्म समर्पण कर देते हैं—मेरे स्पर्श सुखावह छुरे को अपना गला सौंपने में कोई कभी हिचकता नहीं, यहाँ तक कि मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई रंच मात्र भी टस से मस नहीं होता।

जिस समय मन चाहा व्यक्ति मिल जाता है, उस समय मेरी नृत्यशीला उँगलियाँ मन्थर गति से अपना लोच दिखाने लगती हैं मेरी अँगुलि-अँगनाओं के अभिनय के लिये कमनीय कपोल ही रमणीय रंगमंच है । मेरी भाव-भंगिमाभरी कनक शलाका-सी उँगलियों के लिये चित चोर चिबुक ही 'सुचिर चिर कसौटी' है।

किन्तु मैं कपोलानन्दी होकर भी सर्वथा निर्लिप्त और अनासक्त हूँ ; इस लिए मैं प्रमदाओं का प्रतिद्वन्द्वी, नहीं कहला सकता। हाँ 'ठग' और 'चोर' के बीच का ठाकुर अवश्य हूँ; इस लिए 'ठपक' के साथ कह सकता हूँ कि ठाकुर का 'भंग' कभी जूठा नहीं कहलाता, प्रसाद कहा जाता है । न भौंरा फल

को जूठा करता है, न चींटी चीनी को । यदि सोच समझ कर देखिये तो मैं ललनागण की सुख वृद्धि का साधक हूँ ।

याद रहे मैं 'हाथरस' का हज्जाम हूँ ; मगर रहता हूँ बनारस' में । 'व्रजबसिया' और 'बनरसिया' होने के कारण हो तो रसिया हूँ । सचमुच मेरे 'हाथों में ही रस' है । टटका-टटका टे दूं तो टकटकी बध जाय और टटोल टटोल टीप दूं तो विरही की हराम नींद भी चुपके से चली आवे ।

मैंने जैसे स्पृहणीय श्वांस सौरभों का रसास्वादन किया है वैसे तो बहुतों को नसीब न होंगे । जिन मानिनी मूछों तक बड़े बड़ों के हाथ नहीं पहुँच सकते उनको कुकुर पूंछ बनाने के लिये मेरे हाथ बड़े कौशल के साथ सरसते-विलसते हैं । हाँ जनाब, 'लोफर' लिये फिरने के कारण मुझे निरा 'लोफर' ही न समझिये ।।

नेत्रेन्द्रीय, घ्राणेन्द्रिय और त्वगिन्द्रिय—तीनों का ( त्रिविध ) सुख मैं एक साथ ही लूटता हूँ ; इस लिये मैं सौभाग्य शाली भी किसी से कम नहीं हूँ । मेरी अनुभूतियां यदि किसी कवि के हाथ लग जांय तो उसमें 'बिहारी लाल' की आत्मा चहक उठे ।

'आदमी में नौआ , पंछी में कौआ'—इस प्रसिद्ध कहावत के अनुसार मेरी धूर्तता भी जगजाहिर है । इसलिये वर्तमान युग में सर्वत्र ही मेरी जाति का बोल बाला है । सभी देशों और सभी क्षेत्रों में मेरी जाति के लोग पाये जाते हैं । भले ही वे जन्मना हज्जाम न हो ; पर कर्मणा तो निश्चय ही हैं । मेरे छुरे से घुटी हुई दाढ़ी तो पनपती भी है, पर कर्मणा हज्जाम—चौर व्यवसायी ( मुण्डन मर्चेण्ट ) —जिसकी हजामत बनाते हैं उसकी चांद गंजी कर डालते हैं—एक एक खूंटी उखाड़ लेते हैं । फिर उसके सफाचट चेहरे पर बाल उगते ही नहीं मानव

जाति के भाग्य के हरे भरे क्षेत्र को चर जाने वाले ये 'वैशाख-नन्दन' वस्तुतः 'दूर्वाकन्दनिकन्दन' हैं। इन की चरी हुई खेती कभी फलती नहीं; इनके मूडें हुए सिर सदा के लिए 'लुंड मुंड' बन जाते हैं।

आज कल हजामत का पेशा बहुतों ने अपना लिया है। आँखें खोल कर चारों ओर देख लीजिये। यदि कोई नई उमङ्ग का नेता है तो निस्सन्देह नापित भी है; क्योंकि जनता की हजामत बनाना ही उसका बँधा रोजगार है। दुनिया की सरकारें प्रजा की हजामत बनाती हैं। निरंकुश लेखक भाषा की हजामत बनाता है। स्वयंभू कवि छन्दों की, डाक्टर मरीजों की वकील मुवक्किलों की, टिकट-चेकर मुसाफिरों की, दुकान दार-ग्राहकों की, पंडा तीर्थ यात्रियों की, समालोचक लेखकों की, सम्पादक पुरस्कार की, प्रकाशक पाठकों की और अनुवादक मूल भावों की हजामत बनाता है। कहां तक गिनाँऊ, सब तो हज्जाम ही हज्जाम हैं। तब भी विज्ञापन- दाताओं से बढ़कर होशियार हज्जाम नहीं नजर आता। इन लोगों ने कचहरी के अमलों के भी कान काट लिये हैं। हाँ ऊँचे इजलास की कुर्सी तोड़ने वाले भी अब न्याय को खूब मूंड़ रहे हैं—निगोड़ी तोपें भी क़िलों की वैसी कपाल क्रिया नहीं कर सकती। ये लोग अफ-गानों के हज्जाम हैं। स्वनाम धन्य बाबू रामचन्द्र वर्मा ने अपनी 'अच्छी हिन्दी' पुस्तक में एक स्थल पर लिखा है कि अफगान लोग हज्जाम को 'सरतराश' कहते हैं और उनके यहां हज्जामों की दुकानों की तख्तियों पर 'हेड कटर, लिखा रहता है।

बलिहारी है 'शविंग स्टिक' और 'ब्लेड' के आविष्कर्ता की, जिसने सभी सुशिक्षितों को हज्जाम बना दिया है। इससे मेरी जाति की रोजी में खलल जरूर पड़ा है लेकिन एक काम बड़ मजे का हुआ है या विशेष लाभन्वित हुई हैं वे

ही अभीसर्ता होगी आविष्कर्ता की ! मूंछ तो अब मर्दानगी की पूंछ मात्र है। इस युग में भला मूंछ की मर्यादा ही क्या है ? जब थी तब थी। अठारवीं सदी के आरम्भ में 'मरमी' कवि ने ठीक कहा था—

जिन मुच्छन धरि हाथ, कछु जग सुजश न लीनो।
जिन मुच्छन धरि हाथ, कछु पर काज न कीनो॥
जिन मुच्छन धरि हाथ, दीन लखि दया न आनो।
जिन मुच्छन धरि हाथ, कबौं पर पीर न जानी॥
अब मुच्छ नहीं वह पुच्छ सम, कवि 'मरमी' उर आनिये।
बिन दया दान सनमान नहिं, मुच्छ न तेहि मुख जानिये॥

## पूर्णानन्द बंधु

श्री सम्पूर्णानन्द जी—शिक्षामंत्री उत्तर प्रदेश और उनके दोनों भाई—श्री परिपूर्णानन्द जी और अन्नपूर्णानन्द जी—अच्छे लेखक हैं। श्री अन्नपूर्णानन्द जी की रचनाएं सुन्दर होती हैं। उन्होंने लघुलेख और छोटी कहानियां लिखीं जिनमें हास्य और व्यंग उच्च कोटि का मिलता है। इनके विचारों में नवीनता, हास्य में शिष्टता और भाषा में चुलबुलाहट मिश्रित शुद्धता है। 'मेरी हजामत' 'मगन रहु चोला' 'महा कवि चच्चा' इनकी प्रसिद्ध रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। काशी के "कबीर-काव्य" † के कवियों में इनकी दशा 'जिमि दशनन महँ जीभ बिचारी' की समझिये। अब ये क़लम रोक रहे हैं और यह हर्ष की बात नहीं क्योंकि अश्लील लेखकों की संख्या तो बढ़ती ही जायगी, कोई साहित्य सेवक भी तो होना चाहिये; और लक्ष्मीजी की सेवा से सरस्वती जी कदाचित प्रसन्न भी नहीं हो सकतीं। अब इनके 'अकबरी लोटी' का रस लेकर 'मगन' हो जाइये।

† इनका सम्बन्ध होली से है।

## अकबरी लोटा

लाला झाऊ लाल को खाने पीने की कमी नहीं थी। काशी के ठठेरी बजार में मकान था। नीचे की दूकानों से लगभग एक सौ रुपया मासिक किराया उतर आता था। कच्चे बच्चे अभी थे नहीं, केवल दो प्राणी का व्यय था। अच्छा खाते थे, अच्छा पहनते थे। पर ढाई सौ रुपये तो एक साथ आँख सेकने के लिये भी न मिलते थे।

इस लिए जब इनकी पत्नी एक दिन एकाएक ढाई सौ रुपये माँग बैठी तब इनका जी एक बार जोर से सनसनाया और फिर बठ गया। जान पड़ा कि कोई बुल्ला है जो बिलाने जा रहा है। इनकी यह दशा देख कर उनकी पत्नी ने कहा, "डरिये मत; आप देने में असमर्थ हों तो मैं अपने भाई से माँग लूँ।"

लाला झाऊलाल इसी मीठी मार से तिलमिला उठे। उन्होंने किञ्चित रोब के साथ कहा, "अजी हटो, ढाई सौ रुपये के लिए भाई से भीख माँगोगी? मुझसे ले लेना।"

"परन्तु मुझे इसी जीवन में चाहिये।"

"अजी इसी सप्ताह में लेना।"

"सप्ताह से आपका तात्पर्य सात दिन से है या सात वर्ष से?"

लाला झाऊलाल ने रोब के साथ खड़े होते हुए कहा, "आज से सातवें दिन मुझसे ढाई सौ रुपये ले लेना।"

"पुरुष की एक बात"

"हाँ जी, हाँ! पुरुष की एक बात।"

किन्तु जब चार दिन ज्यों-त्यों में यूं ही बीत गये और रुपयों का कोई प्रबन्ध न हो सका तब उन्हें चिन्ता होने लगी। प्रश्न अपनी प्रतिष्ठा का था। अपने ही घर में अपनी साख का था यह पहली बार उसने मुँह खोल कर कुछ रुपये माँगे

थे। अब यदि मैं पूँछ दबा कर निकल भागता हूँ तो फिर पत्नी को क्या मुँह दिखलाऊँगा।

एक दिन और बीता पाँचवें दिन घबरा कर उन्हों ने पण्डित बिलवासी मिश्र को अपनी विपदा सुनाई। संयोग कुछ ऐसा बिगड़ा था कि बिलवासी जी भी उस समय निरे खुक्ख थे। उन्होंने कहा कि मेरे पास है तो नहीं, पर मैं कहीं से माँग-जाँच कर लाने का प्रयत्न करूँगा और कल साँझ को तुमसे घर पर मिलूँगा।

वही साँझ आज थी। सप्ताह का अन्तिम दिन। कल ढाई सौ रुपया या तो गिन देना है या सारी हेकड़ी से हाथ धोना है। और अभी पण्डित बिलवासी मिश्र भी नहीं आए। यदि न आये तो? कहीं वे रुपये का प्रबन्ध न कर सके?

इसी उधेड़ बुन में पड़े हुए लाला झाऊलाल छतपर टहल रहे थे। कुछ प्यास जान पड़ी। उन्हों ने नौकर को पुकारा। नौकर नहीं था। इससे उनकी पत्नी ही पानी ले कर आईं।

लाला झाऊलाल मुँडेर के पास खड़े होकर पानी पीने लगे। वे दो एक घूँट ही पी पाए होंगे कि न जाने कैसे उनका हाथ हिल उठा और लोटा हाथ से छूट गया।

लोटे ने न दाहिने देखा न बायें। वह नीचे गलीकी ओर चल पड़ा। अपने वेग में उल्का को लजाता हुआ वह आँखों से ओझल हो गया। किसी युग में न्यूटन ने पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की खोज की थी। कहना न होगा कि यह सारी शक्ति इस समय लोटे के पक्ष में थी।

लाला झाऊलाल को काटो तो बदन में रक्त नहीं। ठठेरी बाजार ऐसी चलती हुई गली में ऊँचे तिखण्डे से, भरे हुए लोटे का गिरना हँसी खेल नहीं। चल लोटा न जाने किस अनाधिकारी के खोपड़े पर काशी वास का सन्देश लेकर पहुँचेगा कुछ

हुआ भी ऐसाही। गली में बहुत हल्ला उठा । लाला झाऊलाल जब तक दौड़ कर नीचे उतरे तब तक भारी भीड़ उनके आँगन मे घुस आई।

लाला झाऊलाल ने देखा कि भीड़ में प्रधान पात्र अँगरेज है। वह नख-शिख से भीगा हुआ है और अपने एक पैर को हाथ से सहलाता हुआ दूसरे पैर पर नाच रहा है। उसी के पास उस अपराधी लोटे को भी देख कर लाला झाऊलाल जी ने तुरन्त स्थिति को समझ लिया।

इसी समय पंडित बिलवासी मिश्र भीड़ को चीरते हुए आँगन में आते दिखलाई पड़े । उन्होंने आते ही उस अँगरेज को छोड़ कर और सबको निकाल बाहर किया । फिर एक कुर्सी आँगन में रख कर उन्होंने साहब से कहा, "आपके पैर में जान पड़ता है कुछ चोट आई है। आप कुर्सी पर बैठ जाइए।"

साहब बिलवासी जी को धन्यवाद देते हुए बैठ गए और लालाझाऊलाल की ओर संकेत करके बोले—"आप इसको जानते हैं ?"

"नहीं! मैं ऐसे लोगों को जानना भी नहीं चाहता जो निरीह राह-चलतों पर लोटे से वार करे।"

"मेरी समझ में यह बड़ा भारी पागल है।"

"नहीं मेरी समझ में यह बड़ा अपराधी है।"

लाला झाऊलाल यह कुछ समझ नहीं पाते थे कि बिलवासी जी को इस समय क्या हो गया है।

साहब ने बिलवासी जी से पूछा, "तो अब क्या करना चाहिये ?"

"थाने में उसकी रपट कर दीजिए । इससे यह तुरन्त पकड़ जाय।"

"थाना है कहाँ ?"

"पास ही है। चलिए मैं बतलाऊ।"

"चलिए"

"अभी चलो। आप कहें तो पहले मैं इस लोटे को इससे मोल ले लूँ। क्यों जी, बेचोगे? पचास रुपये तक दे सकता हूँ?

लाला झाऊलाल तो चुप रहे। इस पर साहब ने पूछा, "इस रद्दी लोटे का पचास रुपया आप क्यों दे रहे हैं?"

बिलवासी—आप इस लोटे को रद्दी बताते है?"

आश्चर्य! मैं तो आपको जान कार और सुशिक्षित समझता था।"

साहब,—"बात क्या है कुछ बताइए भी?"

बिलवासी—"यह जनाब! एक ऐतिहासिक लोटा जान पड़ता है। जान क्या पड़ता है मुझे पूरा विश्वास है, यह वह प्रसिद्ध अकबरी लोटाहै, जिसकी खोज में संसार भर के संग्रहालय व्याकुल हैं।"

साहब—"यह बात!"

बिलवासी—जी हाँ! सोलहवीं शताब्दी की बात है। बादशाह हुमायूं शेरशाह से हार कर भागा था और सिन्धु के मरुस्थल में मारा मारा फिर रहा था। प्यास से उसके प्राण निकल रहे थे उस समय किसी ब्राह्मण ने इसी लोटे से पानी पिला कर उसके प्राण बचाए थे। जब अकबर दिल्लीश्वर हुआ तब उसने उस ब्राह्मण को ढुंढवाकर उससे इस लोटे को लेलिया। बदले में उसे इसी प्रकार के दस सोने के लोटे प्रदान किए। यह लोटा सम्राट अकबर को बहुत प्यारा था। इसीसे इसका नाम अकबरी लोटा पड़ा। सन ५७ तक इसके शाही घराने में ही रहने का पता चलता है। इसके पीछे इसका लोप हो गया। न जाने यह लोटा इसके पास कैसे आया! संग्रहालय वालों को पता चले तो मुँह माँगा दाम दे कर मोल ले जाँय

इस विवरण को सुनते सुनते साहब की आखें लोभ और आश्चर्य से कौड़ी के आकार से बढ़ कर पकौड़ी के आकार की हो गई। उसने बिलवासी जी से पूछा, "तो आप इस लोटे को लेकर क्या करियेगा ? मुझे पुरानी और एतिहासिक चीजों के संग्रह करने का चाव है। जिस समय यह लोटा मेरे ऊपर गिरा था उस समय मैं उस दूकान से पीतल की कुछ पुरानी मूर्तियाँ ले रहा था।"

"जो कुछ हो लोटा मैं ही मोल लूंगा।"

"वाह आप कैसे लेगें ? मैं लूँगा। मेरा अधिकार है।"

"अधिकार है ?"

"अवश्य ! यह बताइए इस लोटे के पानीसे आपने स्नान किया या मैंने ?"

"आपने।"

"अँगूठा उसने आपका भुर्ता किया या मेरा ?"

"आप का।"

इसलिए इसे मोल लेने का अधिकार भी मेरा है।"

यह सब झोल है। दाम लगाइए, जो अधिक दे वह ले जाये।"

यही सही। आप उसका पचास रुपया लगा रहे थे मैं सौ देता हूँ।"

"मैं डेढ़ सौ देता हूँ।"

"मैं दो सौ देता हूँ।"

अजी मैं ढाई सौ देता हूँ।" यह कह कर बिलवासी जी ढाई सौ के नोट झाऊ लाल के आगे फेंक दिये।"

साहब को भी अब ताव आ गया। उसने कहा, "आप ढ़ाई सौ देते है तो मैं पांच सौ देता हूँ अब चलिये।"

बिलावासी जी दुख के साथ अपने रुपये उठाने लगे

साहब की ओर देख कर उन्होंने कहा—"लोटा आपका हुआ ले जाइए। मेरे पास ढाई सौ से अधिक है नहीं।"

यह सुनना था कि साहब के मुँह पर प्रसन्नता की कूँची फिर गई। उसने झपट कर लोटा उठा लिया और बोला, "अब मैं हँसता हुआ अपने देश लौटूँगा।"

साहब ने झाऊलाल को पांच सौ रुपए दे कर अपनी राह ली।

## श्री यश पाल

प्रगतिशील लेखकों में आज कल यशपाल प्रसिद्ध हैं। इनकी कहानियों के कई संग्रह निकल चुके हैं। इनकी भाषा में प्रवाह, माधुर्य और आकर्षण है। जब कभी साहित्य सरिता की तरंग में कुछ क्षणों के लिए इनकी 'दलबंदी' का ज्ञान बह जाता है तो सुन्दर मर्मभेदी व्यंग और मधुर हास्य लिख जाते हैं। लेखनी में शक्ति है और इस रस को बहुत मीठा और सर्व प्रिय बना सकते हैं। नीचे एक कहानी ( संक्षिप्त ) लिख रहा हूँ।

## धर्म युद्ध

शस्त्रों के बिना नैतिक शक्ति से न्याय और धर्म के लिए लड़ने या संघर्ष करने की विधि का नाम कालान्तर में सत्याग्रह पड़ गया। सत्याग्रह को हम धर्म युद्ध भी कह सकते हैं; क्योंकि युद्ध या संघर्ष की इस विधि में मनुष्य पाशविक बल से नहीं, बल्कि आत्म बलिदान से धर्म और न्याय की प्रतिष्ठता का यत्न करता है। श्री कन्हैया लाल के पारिवारिक क्षेत्र में धर्म युद्ध इसी विधि से हुआ था।

कुछ परिचय श्री कन्हैयालाल का भी आवश्यक है। यों तो कन्हैयालाल की स्थिति हमारे दफ़्तर के सौ सवा सौ रुपये माहवार पाने वाले दूसरे बाबुओं के समान ही थी, परन्तु उनके

व्यवहार में दूसरे सामान्य बाबुओं से भिन्नता थी। सौ सवा सौ रुपये का मामूली आर्थिक आधार होने पर भी उनके व्यवहार में एक बड़प्पन और उदारता थी, जैसी ऊँचे स्तर के बड़े बाबू लोगों में होती है। वे दस्तखत करते थे "के० लाल" और हाथ मिलाते तो जरा कलाई को झटक कर, ओठों पर मुस्कराहट आ जाती—"हाओ डू यू डू!" और पूछ बैठते—"व्हाट कैन आई डू फार यू?"

हम लोग तो इस दफ्तर में तीन चार वर्ष से काम कर रहे थे। पचहत्तर रुपये पर काम आरम्भ करके सवा सौ तक पहुँच गये थे। दफ्तर की साधारण सालाना तरक्की के अतिरिक्त कोई सुनहरा भविष्य सामने था नहीं। यह आशा नहीं थी कि कभी असिस्टेंट या मैनेजर हमें बनना है। परन्तु के० लाल शीघ्र ही किसी ऐसी तरक्की की आशा में थे। दफ्तर में तीन चार मास पूर्व ही वे किसी बड़े आदमी की सिफारिश में आये थे। प्रायः बड़े आदमियों से मिलने जुलने की बात इस भाव से करते कि अपने समान आदमियों की ही बात कर रहे हैं। अक्सर कह देते "ग्राहम ऐण्ड मिण्डले" के दफ्तर से उन्हें चार सौ का आफर है अभी सोच रहे हैं.........या 'मैकेन्जी ऐण्ड विलसन" उन्हे तीन सौ तनख्वाह बिक्री पर २ प्रतिशत मय फर्स्ट-क्लास किराये के देने के लिये तयार है, लेकिन सोच रहे हैं . .

जैसे जगंल में आग लग जाने पर बीहड़ झाड़ झंखार मे छिपे जानवरों को मैदानों की ओर भागना पड़ता है और टुच्चे टुच्चे शिकारियों की भी बन आती है; वैसे ही पिछले युद्ध के समय महान राष्ट्रों को परस्पर संहार के लिये सभी पदार्थों की अपरिमित आवश्यकता हो गई। सब साधारण जनता तो अभाव से मरने लगी परन्तु व्यापारी समाज की बन आई। अब हमारी मिल को ग्राहक और एजेन्ट ढूढ़ने नहीं पड रहे हैं बल्कि

ग्राहकों और ऐजेन्टों से पीछा छुटाना पड़ता था। लाल का काम था मिल के लोहे का कोटा बांटना और मिल के लिए लाभ की प्रतिशत बढ़ाना।

दस्तूरन तो के० लाल की तनख्वाह में कोई अन्तर नहीं आया परन्तु अब वे साइकिल पर पांव चलाते दफ्तर आने के बजाय टांगे या रिक्शे पर आते दिखाई देते। टांगेवाले की ओर रुपया फेंक कर बाकी रेजकारी के लिये नहीं बल्कि उसके सलाम का जवाब देने के लिए उसकी ओर देखते। कई बार उनके मुख से सेकेण्ड हैण्डशेव या बाक्सहाल गाड़ी के ट्रायल लेने जाने की भी बात सुनायी दी।

युद्ध के दिनों वकाइयों ( waca ) की भी बहार आई थी। सब साधारण लोग बाजारों में जवान, चुस्त, बेफिक्र—छोकरियों के दलों को देख कर हैरान थे, जैसे नील गायों का कोई दल नगर की सीमा में फांद आया हो। सामर्थ्य रखने वाले लोग प्रायः इनकी संगति का प्रदर्शन कर गौरव अनुभव करते थे। ऐसी तीन चार—हंसमुखियाँ के० लाल साहब की महफिल की शोभा बढ़ाने लगी। . . . . . .

श्री के० लाल के माता पिता अपेक्षाकृत रूढ़िवादी हैं। आचार व्यवहार के सम्बध में उनकी धारणा धर्म, पाप और पुण्य के विचारों से बंधी है। अपने एक मात्र पुत्र की सांसारिक समृद्धि से उन्हे संतोष और गौरव अनुभव होता था परन्तु, आचार सम्बधी उच्छृंखलतासे पुत्र के अपना धर्म और परलोक बिगाड़ लेने की बात की भी वे उपेक्षा न कर सकते थे।

एक दिन माता-पिता और पुत्र की आचार सम्बंधी धारणाओं में परस्पर विरोध के कारण धर्म-युद्ध ठन गया।

उस दिन के० लाल ने अपने अतरंग मित्र मि० माथुर

और बैंकाई में काम करने वाली उनकी पत्नी तथा उनकी साली को "डिनर और काक टेल" पार्टी के लिए निमंत्रित किया था। इस प्रकार की पार्टियां प्रायः होती ही रहती थीं, परन्तु इस साव-धानी से कि ऊपर की मंजिल में रसोई चौके के काम में व्यस्त उनकी मां और संग्रहणी के रोग से जर्जर खाट पर पड़े उनके पिता को पार्टी की बातचीत और खान पान के ढंग का आभास न हो पाता था। पार्टी के कमरे से रसोई तक सम्बंध नौकर या श्री मती लाल द्वारा ही रहता था। मिसेज़ लाल सास-ससुर की धार्मिक निष्ठा की अपेक्षा अपने पति के संतोष को ही अपना धर्म मानती थीं। सास के निर्मम अनुशासन की अपेक्षा पति की उच्छृंखलता उनके लिये अधिक सह्य थी।

उस संध्या ऊपर और नीचे की मंजिलों का प्रबंध अलग अलग रखने के प्रसंग में श्री मती लाल ने पति को सुझाया—"विद्या और आनन्द का क्या होगा ?"

के० लाल की बहिन विद्या अपने पति आनन्द सहित आगरे से आ कर एक सप्ताह के लिए भाई के यहां ठहरी हुई थी। बहिन और बहनोई को मेहमानों से मिलने से रोके रहना सम्भव न था। और विद्या को इस कम उम्र में ही धार्मिकता का गर्व अपनी मां से कुछ कम न था।

दांत से नाखून खोदते हुये लाल ने सलाह दी—"तुम विद्या को समझा दो।"

"यह मेरे वश का नहीं" श्री मती लाल ने दोनों हाथ उठाकर दुहाई दी—"तुम ही आनन्द को समझा दो। वह सभांल लेगा"

मिस्टर माथुर, मिसेज़ माथुर और अपनी साली के साथ जरा विलम्ब में पहुंचे। पार्टी शुरू हो गई थी। पहला पेग चल रहा था उपर की मंजिल में हंसी मजाक की दबी दबी

आवाज़ें पहुँच रही थीं। आनन्द कुछ देर नीचे बैठा और फिर ऊपर जा कर देख आया। सब ठीक है। विद्या ने पूछा—"क्या हो रहा है?"

भरोसे में आनन्द ने जो हो रहा था बता दिया और नीचे आ हंसी मज़ाक़ में जम गया।

मां जी के मस्तिष्क में अपने परिवार के सर्वनाश की आशंका और भयंकर पाप के प्रति क्रोध की चिनगारियों का "अनार" सा छूट गया। जिस अवस्था में बैठी थीं—पके उलझे खुले बाल, पुरुष की दृष्टि के प्रति निःशंक, शिथिल खुले शरीर पर बेपरवाही से डाला हुआ धोती का आंचल—वैसे ही जीने में धोती को पांव में उलझ जाने से बचाने के लिये उत्तेजना में घुटनों से भी ऊपर उठाये वे नीचे की मंज़िल में आ पहुँचीं। धक्का देकर उन्हों ने बैठक के किवाड़ खोल दिये।

सब लोग स्तब्ध रह गये। लाल ने माथुर की साली के होठों से लगाया हुआ गिलास और मिसेज़ माथुर ने अपने हाथों में थामी हुई बोतल तुरन्त मेज़ पर रखदी। मेहमानों के होंठ और नेत्र विस्मय से फटे रह गए।

के० लाल स्थिति संभालने के लिए अपने स्थान से तुरन्त मां जी के समीप पहुँचे और उनके कंधों पर हाथ रख दबे स्वर में धमका कर बोले—"यह आप क्या तमाशा कर रही हैं? आपको जो कुछ कहना है, गाली देना है, जूते मारना है, हमें ऊपर बुला कर कीजिए।"

परन्तु माँ जी इस सर्वनाश के सम्मुख क्या औचित्य सोचतीं? उन्हों ने बेटे की भर्त्सना अनसुनी कर दोनों उपस्थित श्रीमतियों की ओर हाथ फैलाकर चिल्लाना शुरु किया—"हाय हाय रंडियो तुम मर जाओ।"

मिस्टर माथुर मिसेज़ माथुर और उनकी साली सिर

झुकाए उठे और सकपका कर दूसरे कमरे में से ही आँगन में आ गली में उतरते जीने से जा रहे थे।

यह स्थिति देख लाल के प्राण कंठ में आ गए। माँ जी को छोड़ वे तुरन्त मेहमानों के सामने आ राह रोक कातर स्वर में बोले—"आप लोग ठहरिये, एक मिनट ठहरिये, I am so-sorry, I am mortally ashamed Fxcuse me please. I will manage every thing". के० लाल गिड़ गिड़ाते रहे परन्तु मेहमान विवशता से झुकी आँखों से क्षमा माँगते सीढ़ी उतर गए।

मेहमानों के चले जाने पर के० लाल ने चिल्लाती हुई माँ जी के सामने अपनी बांह उठाकर माँजी के स्वरसे भी ऊँचे स्वर में घोषणा की ' माँ जी, आपने मेरे घर में मेरे सामने मेहमानों को बेइज्जत किया है। मेहमानों के इस अपमान का प्रायश्चित मैं अपनी जान दे कर करूँगा।"

यह घोषणा कर लाल दीवार के समीप फर्श पर बैठ गया और अपना सिर पक्की ईंटों से टकराने लगा। यह दृश्य देख श्री मती लाल चीख कर दौड़ीं और पति के सिरको चोट से बचाने के लिए दीवार को अपने शरीर के आड़ में ले लिया। प्राण विसर्जन का प्रण किये लाल माने नहीं। दीवार की ओर बाधा पा वे अपना सिर फर्श से टकराने लगे। श्री मती लाल और भी जोर से चिल्लाने लगीं—"हाय मारडाला ! हाय मैं मर गई !" विद्या भी और जोर से "भैया भैया" चिल्लाती हुई लाल से लिपटने लगी। आनन्द ने भी लाल को थामने का यत्न किया।

माँ जी का हृदय बेक़ाबू हो उठा। वे भी दौड़ कर पुत्र के सिर को अपनी गोद में छिपा लेने का यत्न करने लगीं। परन्तु लाल अब तक काफ़ी चोट खा चुके थे और बेहोश होकर लेट गए

माँ जी ने अपना सिर पुत्र के चरणों में रख दिया—

"तुम मेरे ईश्वर हो, तुम मेरे देवता हो। मेरे अपराध क्षमा करो! उठ कर मेरे अपराध का दंड दो।"

डाक्टर के आ जाने से विलाप का स्वर बन्द हो गया था। मूर्छा से उठ लाल ने मूर्छा से जगने वाले व्यक्ति के स्वाभाविक प्रश्न पूछे—"मैं कहाँ हूँ ? क्या हुआ ?"

डाक्टर और दूसरे लोगों के चले जाने पर लाल फिर फर्श पर लेट गए और बोले—"मेरे घर में अतिथि का अपमान हुआ है मैं यहाँ ही प्राण त्यागकर प्रायश्चित करूँगा, उठूँगा नहीं।"

इस पर पिता जी ने पुत्रहंता माँ को फिर गालियाँ देना आरम्भ किया। माँ जी ने पुत्र के चरणों में सिर रख कर बार बार दुहाई दी और अपने देवता स्वरूप परमेश्वर के अवतार बेटे की इच्छा के विरुद्ध जबान न हिलाने की प्रतिज्ञा की। सब लोग लाल से उठ कर भीतर चलने का अनुरोध कर रहे थे परन्तु लाल प्राण रहते उस स्थान से उठने के लिये तैयार न थे।

आखिर लाल ने एक दीर्घ निश्वास ले अपनी शर्त रखी—"जिन अतिथियों को अपमान करके घर से निकाला गया है, उन्हे आदर पूर्वक अभी वापस बुलाया जाय। उनसे अपने अपराध की क्षमा माँग लेने के बाद ही वे फर्श से हिलेंगे।"

रात के डेढ़ बज चुके थे, परन्तु घर भर ने अनंद नारायण से अनुरोध किया कि वह इसी समय जाकर मिस्टर माथुर उनकी पत्नी और साली को सवारी पर लिवा लाएँ।

मि० माथुर, मिसेज माथुर और उनकी साली के सामने विकट परिस्थिति थी। जिस घर से गाली दे और झोंटा पकड़, झाड़ू मारने की धमकी देकर निकाला गया हो, रात बीतने से पहले ही फिर उसी घर में जाना उनके लिए कैसे संभव हो सकता था परन्तु आनन्द ने गिड़गिड़ा कर उनके सामने स्थिति रक्खी 'इस समय भैया भाभी और पिता जी के प्राणों की

रक्षा आपके ही हाथ में है। आप लोग इस समय नहीं चलेंगे तो सुबह तक जाने क्या समाचार मिले ? इस समय आपके हाँ या ना पर ही सब कुछ निर्भर है।"

मित्र के परिवार भर की प्राण रक्षा की समस्या ने माथुर परिवार को विचलित कर दिया। वे लोग उसी समय लाल के यहाँ पहुँचे। लाल फर्श पर खुले में कुरुक्षेत्र के मैदान में शरशैया पर लेटे आत्मीयों से घिरे भीष्म पितामह की तरह लेटे हुए थे। श्री मती लाल, विद्या, माँ और पिता जी उन्हें घेरे बैठे थे। मेहमानों के लौट आए बिना वे उठने को तयार न थे। उन्हें सर्दी खा जाने से बचाने के लिए एक कंबल उन पर ला कर डालने की चेष्टा कई बार की गई परन्तु उन्हों ने कंबल को परे फेंक दिया। मेहमानों से क्षमा पाये बिना प्राण रक्षा का कोई प्रयत्न करने के लिए वे तैयार न थे।

अतिथि लौट कर आए और संबंधियों के साथ ही लाल को घेर कर बैठ गए। लाल की इच्छा फर्श से उठने की न थी। चाहते थे केवल एक बात—अतिथि सच्चे हृदय से उनका अपराध क्षमा कर दें और वे शांत चित्त से वहां लेटे लेटे अपने प्राण विसर्जन कर दें।

परन्तु जब मिसेज़ माथुर और उनकी बहिन ने उन्हें बार बार अपने सिर की कसमें दे और उनकी बाँह खींच २ कर उठने का अनुरोध किया और बीती घटना के लिये मन में क़तई मैल न होने का विश्वास दिलाया, आगामी सन्ध्या ही उनके यहाँ डिनर और काकटेल पार्टी स्वीकार करली तो एक बाँह मिसेज़ माथुर के और दूसरी बाँह उनकी बहिन के थामने पर—और श्री मती लाल के पीठ पर सहारा देने से लाल फर्श से उठे और उस आमरण सत्याग्रह को छोड़ धर्म युद्ध में घायल, परन्तु विजई महारथी की भाँति लड़खड़ाते हुए डिनर की टेबल पर जा बैठे।

## श्री अमृत लाल नागर

### ( तस्लीम लखनवी )

श्री नागर जी उर्दू के कवि हैं चाहे उर्दू वाले उन को न मानें। लखनऊ के 'नवजीवन' में नवजीवन संचार कर रहे हैं। उर्दू साहित्य और विशेषतः "सरशार" से प्रभावित जान पड़ते हैं। हिन्दी में भी हास्य अच्छा लिखते हैं और यदि किसी दूसरे की शैली पर न चलें तो अधिक सफल हों। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं पर कुछ अधिकार भी है। उर्दू का ज्ञान हास्य में कुछ सहायता भी देता है। कभी कभी विचार पूर्ण विषयों पर भी अच्छे ढंग से लिख जाते हैं। न सुधार की इच्छा है न शिष्टता का डर, और न विषय को गहराई में जाना चाहते हैं; मगर फिर भी एक प्रकार का आनन्द दे ही देते हैं; कभी हास्य का तो कभी व्यंग का। 'नवाबी मसनद' आदि संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं! नीचे एक लेख ( व्यंग ) पढ़िये और मनन कीजिये।

### क़िस्सा सियासत बी भठियारिन और बुद्धाशाह का

जाड़े की रात, नया जंगल, एक डाल पर तोता, एक डाल पर मैना, हवा जो सन सन चली तो दोनों कांप उठे। मैना अपने परों को समेट कर बोली कि अय तोते, तू भी परदेसी, मैं भी दूसरे देश की। न यहाँ तेरा आशियाना, और न मेरा बसेरा। क़िस्मत ने हमारा घरबार छुड़ाया, लेकिन मुसीबत ने हमें साथी बनाया। इस लिए अय तोते, अब तू कोई जतन कर कि जिससे रात कटे, कोई क़िस्सा छेड़ कि मन दूसरा हो।

तोता बोला कि अय मैना, सुन! मैं देश परदेश उड़ा और सरायफ़ानी देखी। उसके भठियारे का नाम इलाही और भटियारिन है बी सियासत जो जिन्दगी की सेज से उतरने का नाम ही नहीं लेती उन्हें ढली जवानी पर नयी नवेली बनने

का यह शौक़ चर्राया है कि अल्लह अल्लह ! उनके साज-सिंगार की फरमाइशों ने मियां इलाही की सराय फ़ानी को सुनार की दुकान बना रक्खा है। चारो ओर भट्टियां धधक रही हैं, दिमाग़ का सोना गलाया जारहा है। हर तरफ ठक ठकका शोर इसक़दर कि भटियारे मियां इलाही के हुक्के की गुड़गुड़ाहट ही दब गई। गाहकों की तौबा तिल्ला और शिकायतों से सराय फ़ानी का छप्पर उड़ने लगा। मगर ए मैना, अजब ढंग हैं बी सियासत के कि कल का ख्याल ही नहीं, उन्हे तो आज ही में कल नहीं पड़ती। घड़ी में सुनारों की छाती पर सवार और दम दम पर जामे आजादी का दौर। ढली जवानी का बगूला इस ज़ोर से भड़का कि क़त्ताले आलम बन गई। और अब तो जाने जहां इस बात पे मचली बैठी हैं कि हम आग से आग को बुझायेंगे।

भनक एडीटर बुल्लेशाह को पड़ी अक़्ल की फ़कीरी पर श़क्ल की अमीरी अपनाई, ख़ुदा के नूर पर मेंहदी रचाई, जुल्फों में तेल डाला और फिर जो सुरमीली नजरों को तिरछा घुमा के फेंक दिया तो जहान में आग लग गई।

गमक के उठीं बी सियासत, भटियारे से बोलीं- ले मर्दुए अपनी दुनियां संभाल मैं तो चली।

बन ठन के चली मैं पी की गली,
मुए काहे कोशोर मचावत है।
हर जाई बनी तोसे नाहीं बनी,
तू तो दीन की बीन बजावत है॥

ए निगोड़े, मैं ठहरी सियासत, मुझे तेरे धरम ईमान से क्या काम ? तेरे गाहकों के चैन आराम से क्या निस्बत ? मुझे बगलें गरमाने में मजा आता है, आज इसकी बनी, कल उसकी हुई।

कह के बी सियासत ने अपनी ओढनी सम्हाली तिरगी

छटा छहरी, सातों सितारे चमके, हिलाले ईद उगा, पट्टियां और धारियां लहराईं हंसिया-हथौड़ा उमका—नज़र जिसकी पड़ी उसी ने हाय भरी ; कसके कलेजे को थामा, दुनियां दीवानी बनी, बी सियासत के ओढ़नी के गुन गाने लगी।

बोला बुल्ले शाह कि ए परी पैकर ! फोटू तुम्हारी देखकर दिल पर हुआ असर। मैं भूल गया गैली प्रूफ, प्रेस का मैटर। अब तो रहम कर। मैं तोड़ता हूँ आज से नाता जहान से, कल्चर से, लिटरेचर से, दीनों ईमान से। तेरे ही गुण मैं गाऊँगा ए बी सियासत। क़दमों पे लुटा दूंगा मैं कुल अपनी रियासत तू चल के बैठ तो जरा टाइपों के केस में ; हर फन्ट में, पैका में, हर पुरजे के प्रेस में। फिर देख मेरे जौहर कि तेरे शौहर को नाकों चने न चबवा दूँ तो मेरा नाम बुल्लेशाह नहीं, झब्बू !

ये सुनकर सियासत बी भटियारिन मुस्कराईं। पनडब्बा निकाला, दो बीड़े आप जमाए और जूठन बुल्लेशाह को इनायत की। बुल्लेशाह के सात पुरखे और आने वाली सात पीढ़ियां निहाल हो गईं। फिर क़लम चूम के बी सियासत बोलीं कि मेरे पालतू-बन्दर। बस मेरे इशारे पर चलाकर ! मैं जो कहूं वही लिखा कर। गर सच को कहूँ झूठ तो तू झूठ बोल दे। हक़ के खिलाफ़ बोल—बस जिहाद बोल दे। मैंने भटियारे इलाही से बदला लेने की ठानी है। सरायफ़ानी के मुसाफिरों को मिस्मार करने की मिन्नत मानी है। तवारीख़ के वर्क़ यह साबित करते हैं कि सराय इलाही की हैं, औ' मुसाफिरों की बस्ती है। मगर मेरी निगाह में औक़ात हक़ की सस्ती है। मैं दौलत की बहन हूँ, उसकी अज़ीज़ हूँ। सोने की आब देख बनी मैं कनीज़ हूँ। इस-लिए ए प्यारे बुल्ले, तू फूट हजार बार फूट। झूठ से अपने तन को काला कर बहन दौलत का बोल बाला कर मैं हक़ का

नाम ले कर नाहक करूंगी शोर। मगर इस शोर को तू सच न समझना मेरे भोले बालम! ये मेरी चाल है, मेरी अदा है, मेरा चकमा है। मेरा दफ्तर तो बस झूठका महकमा है। दुनियां सराय फ़ानी के ग़रीब मुसाफिरों के लिए मैं पकवान बनाऊँगी मगर उन्हे दौलत के चहेतों को खिलाऊंगी। रिपब्लिक का नाच नाचूंगी, मगर पब्लिक को अंगूठा दिखाऊंगी। दौलत का हो गुलाम दुनियां का हर बशर। बस आज सियासत को है कोरी यही फिकर। तू एक काम कर। जो मेरी राह के रोड़े हैं उनको तबाह कर। कल्चर और लिटरेचर, आर्ट और साइन्स, हिस्ट्री और हक़ का फ़लसफ़ा—ये मुए मेरी पोल खोलते हैं। तू इनकी कमर तोड़ दे ए मेरे प्यारे बुल्ले! इनकी खबरें न छाप, इनकी आंखे फोड़ दे। इनमें से जो मेरे गुलाम बन जायं उनकी वाह-वाह कर; बाकी को तबाह कर।

मैना बोली—कि ऐ तोते, इसके बाद क्या हुआ?

तोते ने आह भर के कहा—कि इसके बाद जो होना था वही हुआ।

यह कहकर तोतेने एक ठंडी सांसली और दरख़्त की डाल पर अपनी गर्दन डाल दी। मैना से उसकी यह हालत देखी न गई। फुदक कर उसके पास आई, चोंच से चोंच मिलाई और बोली कि न रो मेरे साथी, न रो मेरे हमदम! हक़ का दरजा ऊँचा है। सराय इलाही की है। मुसाफिरों की बस्ती है। बी सियासत और बुल्ले की ये दोस्ती निहायत सस्ती है। वक्त आयेगा जब अक़्ल आयेगी। दुनियां में फिर से बहार आयेगी। ये देख भोर हुआ। परिन्दों का शोर हुआ। आओ हम इनके साथ हों। एक हो कर आवाज़ बुलन्द करें। बी सिया-सत और बुल्ले शाह की हस्ती क्या है जो हमारी आवाज़ को दबा सके

ये कह के मैना ने तोते को उठाया, नया जोश दिया। फिर दोनों पंख फैला कर ऊँचे आसमान में तेजी से उड़ चले।

**पांडेय बेचन शर्मा** 'उग्र' बहुत ओजपूर्ण और चुलबुली भाषा में समाज के पाखंड और उसकी कुरीतियों का वर्णन करते है। इनके छोटे छोटे नाटक या प्रहसन और निबंध, व्यंग और हास्य के अच्छे नमूने हैं। इनका प्रहसन "चार बेचारे" (सम्पादक, अध्यापक, सुधारक, प्रचारक) बहुत सुन्दर है। निर्भीक लेखक की खोज हो तो इनको पढ़िए।

**श्री भगवती चरण वर्मा** बी. ए. एल. एल. बी. वकील नहीं बल्कि अच्छे कवि, उपन्यास कार तथा कहानी लेखक हैं। भाग्य वादी मगर प्रगति शील साहित्यकार चतुर सम्पादक और सफल चलचित्र-चित्रकार हैं। इनके एकांकी नाटकों तथा कहानियों में एकाध व्यंगपूर्ण भी हैं। भाषा में प्रवाह और चरित्र चित्रण में आकर्षण है।

मैंने केवल कुछ लेखकों का ही उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से अच्छे, जोरदार, मजेदार और लच्छेदार लेखक हैं जिन के सम्बंध में कुछ न लिखकर और क्षमा मांग कर ही विदा होता हूँ। उनसे मुलक़ात भी नहीं; मगर 'फिर मिलूंगा अगर खुदा लाया'। अब उर्दू के लेखकों से भी मिल लीजिये। बहुत देर से राह देख रहे हैं बेचारे।

## उर्दू गद्य लेखक

उर्दू गद्य लेखकों के सामने "पंच" और 'सरशार' की कृतियों के नमूने मौजूद थे इस कारण वह धीरे धीरे उनसे ऊपर उठने का प्रयत्न करने लगे। उन्हों ने केवल फब्ती और फिक्रे-बाज़ी में आनंद नहीं लिया बल्कि सुन्दर सुन्दर लघुनिबंध लिखे, कहानियाँ लिखीं तथा उपन्यास लिखे; और चरित्र चित्रण, मनो-

विज्ञान और समाज के विविध व्यवहारों की मनोहर झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। भाषा के प्रयोग में भी इसका ध्यान रक्खा है कि वह अपने ऊँचे स्थान से न गिरने पाये और इस कारण इनका स्तर प्रायः साधारण हिन्दी की हास्य की रचनाओं तथा कृतियों से ऊँचा है। उर्दू में प्रवाह और लोच अधिक है और भाषा भी कुछ ऐसी मंज गई है कि कम से कम ग़ज़ल और हास्य के लिये इससे अच्छी भाषा कदाचित नहीं हो सकती। अब काम की बात सुनिये। उर्दू के कुछ लेखकों का हाल पढ़िए। ये लोग सैयद महफ़ूज़ अली 'बस्बूक़' हैरत और 'हाजीसाहब' के बाद आए।

## प्रोफेसर रशीद अहमद

रशीद अहमद साहेब अलीगढ़ में उर्दू के प्रोफ़ेसर थे, हास्य लिखने वालों में इनका स्थान ऊँचा है। इनकी भाषा में साहित्य से अधिक पांडित्य है इस कारण मूल पढ़ने वालों को अधिक आनंद मिलता है। इनके रहस्यपूर्ण संकेत 'बिंदु में सिंधु' का आनंद देते हैं। साधारण बातों और घटनाओं पर विचारपूर्ण दृष्टि डाल कर सुधार की ओर ध्यान दिलाते हैं। ढंग रोचक है और स्तर ऊँचा। आलोचना करते हैं; परन्तु इनके लेख प्रायः लम्बे होते हैं इस कारण यहाँ इनका पूरा लेख नहीं दे रहा हूँ। एक 'सफ़र' में लिखते हैं :—

रेल में सफ़र करने वालों की विचार धारा अनोखी होती है। टिकट ख़रीदने के पश्चात वह यह समझ लेते हैं कि वे अब प्रत्येक ऐसे कार्य के करने के लिये स्वतंत्र हो गये जिससे डिब्बे में गंदगी फैलती हो, या झगड़ा बलवा होने की सम्भावना हो। डिब्बे में घुसे तो इस विचार और निश्चय के साथ जैसे और तमाम मुसाफ़िरों ने उनके सुख के अधिकारों को हड़प कर लिया है और ये 'असहयोगी ढंग के दुखियारे हैं

अर्थात इनको अधिकार है कि ये जितना चाहें उतना अत्याचार करलें; दूसरों को कोई शिकायत करने या रोकथाम करने का हक़ नहीं है। लेकिन दूसरी तरफ़ मुसाफ़िर इस पर तुले हुये है कि 'असहयोग' सफल हो या असफल नवआगन्तुक की जान की खैर नहीं। परिणाम यह होता है कि दोनों अपनी अपनी ऐसी क्रर गुज़रते हैं और बाद में ऐसे घुलमिल जाते हैं मानों अँग्रेजी पार्लेमेन्ट के सदस्य हों।

हाँ, तो तज़करा था एक वृद्ध महाशय के वज़ू बनाने का अव्वल तो जहाँ तक देखा गया है वज़ू करने का लोटा प्रायः टपकता होता है और मैला भी होता है। मैला होना और न होना तो पूर्णतः धर्म का प्रश्न है अर्थात जब तक कोई वस्तु प्रकट है दृष्टि में आती है उस समय तक उसके मैले होने न होने का प्रश्न निरर्थक है। यदि कोई मौलवी इसके विचार के विरुद्ध हो तो उसको अपने "तहमद में मुँह डाल कर" इस बयान की महत्ता पर सोचना चाहिये। मुहावरा तो गरेबान में मुँह डालने का है परन्तु काव्य की आवश्यकता से यदि कविता का कोई नियम टूट सकता है तो सत्य की आवश्यकता से मुहावरा से अलग होना कोई अपराध नहीं। तात्पर्य यह कि आप देखेंगे कि मौलवी का तहमद धार्मिक दृष्टि से सदैव 'प्रकट' है परन्तु स्वास्थ रक्षा के विचार से उसका निरीक्षण किया जाय तो मुझे विश्वास है कि इसमें रसायन शास्त्र और जीव विज्ञान-दोनों प्रकार के पदार्थ अधिकता से मिलेंगे।

तात्पर्य यह कि वज़ू बनाया जा रहा है। 'ग़ुसलख़ाने' का दरवाज़ा खुला है और वज़ू इस तौर पर किया जा रहा है कि कुछ पानी ग़ुसलख़ानेके फ़र्शपर गिर रहा है और कुछ उससे बाहर और कदाचित दोनों का मिश्रण शरीर पर। वज़ू बन गया और अब वे इसविजयी ढंगसे खड़े हुये जैसे कोई देहाती

दफ़ा ४४ के अपराधी को पकड़ने में सफल होगया हो। पानीकी बूँदें इधर उधर गिर रही हैं। इस पर यदि किसी ने आपत्ति की तो ऐसे बिगड़े और झगड़े पर फेंट बाँधी मानो 'इस्लाम खतरे" में है और यही एक मुसलमान इसकी आहुति के लिये बाक़ी रह गये हैं।

गाड़ी कानपूर पहुँची। इत्तफ़ाक़ से यह समय निमाज़ का था। दोनों वृद्ध गाड़ी से उतर पड़े। इनको देख कर दूसरे धर्मवीर भी झपटते हुये आन पहुँचे और प्लेट फार्म से L कोण बनाती हुई 'नमाज बा जमाअत' आरम्भ हो गयी। यह भी एक अनोखी दुर्घटना थी कि उसी दिन कोई महान आत्मा असहयोग आदिके अभियोगमें पकड़ गये थे और प्लेटफार्मसे गाड़ीमें लाये जारहे थे। वह हल्ला और भीड़ और गड़बड़ था कि प्रत्येक सभ्य पुरुषको अपना मान और अपनी कुशलता खतरेमें दिखाई पड़ती थी। मैं नहीं समझ सकता इस वक्त, नमाज़ बाजमाअत अदा करने से इस्लाम किस प्रकार खतरे में था। मैं यह मानता हूँ कि संग्राम क्षेत्र में भी नमाज़बाजमाअत हुआ की है और होनी चाहिये परन्तु मैं इसको कभी नहीं मान सकता कि इस समय कानपूर के प्लेटफार्म पर बाजमाअत नमाज़ अदा करना आवश्यक था। और फिर यह भी क्या आवश्यक है कि नमाज़ बाजमाअत केवल ऐसे स्थान पर हो जहां भीड़ हो और आदमियों का अधिक आना जाना हो और प्रत्येक व्यक्ति को जिसमें मुसलमान भी शामिल हैं सुख और स्वतंत्रता से चलने फिरने में कठिनाई या भय हो। फिर इस प्रश्न का क्या उत्तर है कि यदि इस 'संग्राम भूमिपर' नमाज़ अदा की जा सकती है तो फिर मसजिद के सामने बाजा बजने पर मुसलमान नमाज़ क्यों नहीं अदा कर पाता?

मैं अभी इन्हीं विचारों में मग्न था और प्रत्येक नया और

अनाड़ी सुधारक आरम्भ में इसी प्रकार की मुंह जोरी से काम लेता है और अकारण ही जूझने के लिये तैयार रहता है। अपने इस क्रांतिकारी विचार की प्रशंसा लेने की इच्छा से मैंने मुर्शिद (साथी थे) की ओर मुंह फेरा तो यह देख कर कि 'निंदिया' की गोद में हैं झल्ला गया। कहां एक मैं कि सुधारक और धर्म पर बलिदान होने वालों की प्रथम पंक्ति में बैठने के लिये क्या कुछ नहीं कर रहा हूँ और थोड़ी सी सराहना हो तो ईश्वर जाने क्या न कर डालता ; और कहां ये हैं कि ऊंघ रहे हैं। मैं झल्ला पड़ा और उनको झंझोड़ कर बोला "देखते नहीं भारत माता के सपूत महाभारत मचा रहे हैं और मुसलमान योद्धाओं की केवल अंतिम पंक्ति रण भूमि में रह गयी है। महमूद और अयाज़ सब एक क़तार में खड़े हैं। यह सोने का समय है कि सरकार को गाली सुनाने का और ख़ुद मर जाने का"। उन्होंने आंखें खोल दीं " लाहौल विला कुव्वत " सामने से एक खोंनचे वाला जा रहा था उस से कुछ दही बड़े चुकाने लगे। पूछा 'कौन सा स्टेशन है ? बड़ी भीड़ है। कोई बड़ा ही स्टेशन होगा ?" उसने कहा 'कानपुर है'। फ़रमाया "यही वह कानपुर वाली मसजिद है ?" मैंने कहा "यह भय आप को कैसे उत्पन्न हुआ ?" फ़रमाया "कुछ नहीं। यही प्लेट फार्म के नमाज़ियों को देख कर ख़्याल आया। और हां, देखियेगा वह हमारे दोस्त भी तो जमाअत में शामिल हैं। उनके नाश्ते का जाने क्या परिणाम हुआ ?" मैं ने कहा "खाने और सोने दोनों से नफ़रत ! ज़रा यह बताओ इस समय प्लेटफ़ार्म पर बाजमाअत नमाज़ अदा करने की क्या आवश्यकता आ पड़ी।"

कहने लगे भई सुनो ! यह नमाज़ी और तुम, दोनों बौड़म पन में फंसे हैं। नमाज़ी समझते हैं जब तक नमाज़ पढ़ते जांय तब तक बुद्धि से काम लेन की नहीं, और तुम को

यह भ्रम है कि जब तक बुद्धि है उस वक्त तक नमाज़ पढ़ना व्यर्थ है। आखिर यह कहां की सौजन्यता है कि आप हर उस आदमी के पीछे डंडा लिये फिरें जो आपके विचारों तथा कामों के विरुद्ध हों। प्रत्येक मनुष्य भिन्न इच्छा, स्वभाव और भिन्न ध्येय रखता है फिर यह क्या आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य आपका अनुयायी हो। आप न तो इमाम व रसूल हैं न 'अंग्रेजी राज्य' कि जिनसे त्रुटि और अपराध होना सम्भव ही न हो। फिर लोग आपके आचरण व भावनाओं को क्यों मानें? भला-मानस वह है जो अधिक से अधिक लोगों के साथ रह सके अर्थात बहुतों को लाभ पहुंचाये और कम से कम लाभ उठाये। जिस पर ईश्वर की कृपा चाहिये उसको दूसरे की कृपा की क्या आवश्यकता? मैं तो इस्लाम से यही अर्थ समझता हूँ।" मैंने कहा "मैं इस्लाम के बारे में आप से पाठ नहीं पढ़ना चाहता। मुझे आपत्ति तो इस प्रकार के मुसलमानों से है जो प्रत्येक कार्य केवल इस विचार और आशय से करते हैं कि लोग उनको मुसलमान समझें।" बोले "जैसे?" मैंने कहा "पहले तो यही देख लीजिये। इस प्लेटफार्म पर नमाज़ बाजमाअत की क्या जरूरत थी? और इसको भी जाने दीजिये। आपने कुछ वृद्ध महाशयों को देखा होगा। वह इस अभिमान और अकड़ के साथ नमाज़ के लिये तैयार होंगे मानों उनको छोड़ कर सारे मुसलमान जो इस समय उनके पीछे नमाज़ न पढ़ेंगे वह नारकी हैं और यही नहीं, यह महाशय अपनी खैरियत के बजाय दूसरों को नरक भेजने की प्रार्थना करेंगे। वह भी इस शान और अकड़ के साथ जैसे भारतीय मुसलमान अंग्रेजों से अपने अधिकार माँगते हैं। इत्यादि-इत्यादि।

इसी में आगे चल कर कहते हैं।

मेरे विचार में भारतकी औरतें मजमुआ (जोड़) हैं तीन

चीज़ों का। घूंघट, गंदगी और गहना। कमज़ोर धारी ऐसे होंगे जिन पर सोने चाँदी और गंदगी का इतना भार हो। उनको देख कर मुझे अक्सर वह चित्र स्मरण हो आते हैं जो टाइम्स वीकली के मुख पृष्ठ पर दिखाई पड़ते हैं। ज़ेवर का अभिप्राय कदाचित शरीर का सिंगार होगा फिर वह धन में गिना जाने लगा होगा लेकिन इसमें संदेह नहीं कि मारवाड़ियों ने इसको केवल धन ही मान लिया। यही नहीं, बल्कि अपनी औरतों को उन्हों ने ज़ेवर का बोझ लादने के लिये एक घरेलू जानवर समझ लिया है। स्त्रियों ने ज़ेवर के प्रथम अभिप्राय को लात मारदी। यदि उसको ज़ेवर कहा जा सकता है तो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि ज़ेवर का ऐसा भद्दा और भोंडा नमूना शायद ही कहीं मिले।

औरतें अगर रंगीन कपड़ों की शौक़ीन होती हैं तो मारवाड़ी औरतों के बारे में कह सकते हैं कि वह केवल रंगीन कपड़ों को नहीं पसंद करतीं बल्कि वह एक प्रकार से रंगीन कपड़ों का बंडल हैं। घूंघट का काम यदि केवल मुँह का छिपाना है तो इसमें मारवाड़ी औरतें सब से आगे निकल गयी हैं। लेकिन उनके घूंघट का अर्थ यह है कि शरीर के अन्य अंग घूंघट और परदा से उदासीन रहें। नहाना भी शायद स्त्रियों का एक कर्तव्य है। रेल के सफ़र में नहाने की सुविधायें तो मिल नहीं सकतीं लेकिन यह सत्य है कि इन मर्दों और स्त्रियों ने स्वयं नहाने में इतनी सुविधायें पैदा करली हैं कि रेल के कर्मचारियों को इस ओर ध्यान देने की कदाचित आवश्यकता भी नहीं है। यह जिस कपड़े में बैठी होंगी उसीके साथ प्लेटफार्म पर उतर आयेंगी और पानी वाले महराज दो तीन लुटिया पानी की सर पर डाल देंगे और यह काफी है। इसको नहाना क्या कहिये यह तो सूखी गंदगी को तर बनाना और उसको फैलाने का

केवल एक माध्यम है। फिर इस भीगे हुये कपड़े के साथ डिब्बे मे घुसना एक ऐसी दुर्घटना है जिसपर असेम्बलीमें बमका गोला गिरना आश्चर्य जनक नहीं है।

इन स्त्रियों के साथ जितने मर्द देखे गये हैं उनके चरित्र का एक अंग बहुत शोचनीय है। यदि भाग्यवश दो तीन मर्द साथ हुये तो फिर यह अपनी मारवाड़ी भाषा में बात चीत का ऐसा ताँता बाँधेगे कि जो कभी टूटे ही नहीं और इतने जोर और ऊँचे स्वर में बोलेंगे कि आप पर जीवन के तमाम सुख हराम हो जायेंगे। यही हाल बंगालियों का है। सफ़र में इनका सर्व प्रिय अकेला काम खाना और बकना है। दुनियाँ की खराब से खराब और कम से कम दामों वाली चीजें ढेर सी खरीदेंगे और खायेंगे। दो चार पैसेसे अधिककी चीज नहीं लेंगे और बेचने वाले से इतना तर्क करेंगे कि गोया भारतवर्ष की स्वतंत्रता पर अंग्रेजों के प्रतिनिधियों से बहस कर रहे हैं। यदि हर स्टेशन पर गाड़ी ठहरने का समय सीमित न हो तो मुझे विश्वास है इन लोगों का सौदा अभियोग और पुलिस की कार्यवाही पर समाप्त हो। स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो यह खाने की वस्तु खरीदेंगे ; चलती रही तो गुसलखाने में स्वास्थ सुधार नियमों की तोड़ फोड़ मे भिड़े रहेंगे। इन दोनों से छुट्टी पाई तो अन्य मुसाफिरों के आराम में भगड़ा लगायेंगे यानी खाते होंगे, बकते होंगे या बीड़ी पीते होंगे। या इन सब का नतीजा ईश्वर जाने क्या करते होंगे।

बंगालियों, मार वाड़ियों और बनियों में एक बात और ध्यान देने योग्य है। वह यह कि यदि उनके साथ औरतें या बच्चे होंगे तो यह सदैव औरतों और बच्चों के सुख को अपने आनंद पर निछावर कर देंगे। मैंने हमेशा यह देखा है कि यह अपने सोने और बैठने के लिये स्थान ढूढकर रिजर्व कर लेगा

औरतें और बच्चे तंग सेतंग जगहपर बैठे होंगे। धूप और हवासे उनको कष्ट होता होगा परन्तु इसको इसकी परवाह नहीं। यह सब कपड़े उतार कर केवल धोती बाँध कर पूरी सीट पर लेटेगा और उस समय तक पड़ा रहेगा जब तक फिर भूक न लगे या गुसलखाना न जाना हो।

मारवाड़ी को सोता पाकर मुरशिद जगे . . . इत्यादि . ।

## फ़रहतउल्ला बेग देहलवी

फ़रहत उल्ला बेग देहली के रहने वाले हैं। इनकी भाषा टकसाली होती है इस लिये मूल उर्दू पढ़ने से इसका अधिक आनंद आता है। साधारण विषय को भी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से मनोरंजक और साहित्य का सुन्दर अंग बना देते हैं इनका स्थान ऊँचा माना गया है, और इनके यहाँ ग्राम्य दोष शायद ही मिलता है। इनका यह 'लघु निबंध' देखिये :—

### "ऊँह"

ईश्वर इस 'ऊँह' ! से बचाये। जिसकी ज़बान पर आया उसको तबाह किया; जिसके घर में घुसा उसका सत्यानाश किया और जिसराष्ट्र में फैला, उसमें गधेके हल चलवा दिये। सबूत चाहिये तो संसार का इतिहास उठा कर देख लो ; इस 'ऊँह' ने संसार के क्या क्या रंग बदले हैं। जनरल 'गूशे' को नेपोलियन आज्ञा देता है कि अंग्रेजों की फ़ौज के पीछे अभी पहुँच जाओ और पौ फटने से पहले उसके पृष्ठ भाग पर दबाव डालो। सामने से मैं आक्रमण करता हूँ। 'ब्लूशर' के आने से पहले इस फौज को रगड़ डालेंगे। जनरल 'गूशे' 'ऊँह' कर देता है। सवेरे नौ बजे 'ब्रेकफास्ट' से फ़ारिग़ हो कर रवाना होता है। 'वाटरलू' की लड़ाई न सिर्फ यूरोप का बल्कि सारी दुनियाँ का नक़शा बदल देती है।

हिन्दुस्तानमें भी 'ऊँह' का कुछ कम-ज़ोर नहीं रहा है

मिडिल के इम्तिहान में दो चार बार फेल हो ही चुके हैं तो हर्ज क्या है । तीस साल की उम्र तक भी इन्टरेन्स पास कर लिया तो सिफारश के बल पर कहीं न कहीं चिपक ही जायेंगे या कम से कम विलायत जाने का कर्जा तो जरूर मिल जावेगा और जरा कोशिश की तो बाद में माफ भी हो जायेगा । इस फेल होने पर इधर इन्होंने 'ऊँह' ! की और उधर माँ बाप ने ऊँह' की । तो इस दशा में माँ बाप की 'ऊँह' ! को दूसरा अभिप्राय है अर्थात यह कि बचा' अभी फेल हुआ तो कहीं ऐसा न हो कि रो रो कर जान हल्कान कर ले या कहीं जा कर डूब मरे। बस इस 'ऊँह' ! ने साहबजादे की शिक्षा की इति श्री कर दी।

घर वाली की 'ऊँह' ! सब से ज्यादा भयानक 'ऊँह' ! होती है । किसी दासी पर रुष्ट हो रही है वह बराबर जवाब दिये जाती है। वह 'ऊँह' ! करके चुप हो जाती है । लीजिये नौकर शेर हो गया । घर का सारा प्रबंध अस्त व्यस्त, इनके अधिकार छिन गये । घर के शासन का सूत्र नौकरों के हाथ में चला गया। कोई चीज चोरी हो गई, घर की मालकिन ने इधर उधर ढूंढ़ा, कुछ थोड़ा बहुत हल्ला भी मचाया, आखिर 'ऊँह' ! कर के बैठ गईं । अब क्या है पिटारी में से कत्था, छालियाँ गायब, कैश बक्स में से रूपये पैसे गायब, सन्दूकों से कपड़े गायब । शनैः शनैः सारे घर का सफाया हो गया । बच्चों ने कोयलों से दिवारों पर लकीरें खींची, दरवाजों पर पेन्सिल से कीड़े मकोड़े बनाये, पहले तो श्री मती जी कुछ थोड़ा बहुत बिगड़ी फिर 'ऊँह' ! करके चुप हो गईं । अब जाकर देखो तो थोड़े दिनों में सारा मकान भाँति-भाँति की चित्रकारी से अजन्ता की गुफाओं को मात कर रहा है।

अब रहे स्वामी सो इनकी 'ऊँह' ! सब से ज्यादा तेज है। श्री मती जी किसी बात पर बिगड़ी यह 'ऊँह ' करके बाहर

चले गये। अब न इनकी कोई प्रतिष्ठा नौकरों में रही और न श्री मती जी की दृष्टि में। रसोई बनाने वाली ने पन्द्रह दिन में दस रूपये की लकड़ियाँ जला दीं। मालिक को क्रोध आया और क्यूं न आता, परिश्रम की कमाई इस तरह जलती देख कर क्यूं दिल न जले। कुछ बड़बड़ाये, घर वालो की तरफ़ सहायता की दृष्टि से देखा, उन्होंने 'ऊँह' कर दी। रोटी बनाने वाली मिसरानी जी ने यह रंग देख दूसरे पखवारे में बीस रूपये की लकड़ियाँ फूँक दीं।

अब यह बात भी है कि दम्पति की यह 'ऊँह'! कभी कभी वह काम कर जाती है जो चाणक्य जैसे नीति निपुण मंत्री भी नहीं कर सकते। श्री मती को क्रोध आया, पति जी ने 'ऊँह' कर दी, चलो लड़ाई का ख़ात्मा हुआ। पतिदेव किसी बात पर बिगड़े देवी जी ने 'ऊँह' कर दी उनका क्रोध शान्त हो गया। यदि 'ऊँह' की जगह जवाब दिया जाता तो पति देव को घर छोड़ना और श्री मती को अपने मायके जाना पड़ता। हिंदुस्तान के बहुत से घराने इस 'ऊँह' ही ने बचा रक्खे हैं।

प्रत्येक विषय के दो पक्ष होते हैं जय या पराजय और इन दोनों दशाओं में 'ऊँह' हानिकारक सिद्ध होती है। पराजय पर जिसने 'ऊँह' की उसने मानो अपनी हार को हार ही न समझा। ऐसी दशा में वह अपनी दशा सुधारने की क्या चेष्टा करेगा? जिसने विजय पर 'ऊँह' की उसने मानों अपने साहस और पराक्रम की क़द्र नहीं की। वह आज नहीं डूबा तो कल डूबेगा। दुनियां में वे लोग कुछ कर सकते हैं जो जीत को जीत और हार को हार समझें। अब रहे यह 'ऊँह' वाले जो बेपरवाही और उपेक्षा से विजय और पराजय को बराबर समझते हैं। जिनकी दृष्टि में हार जीत में कोई भेद नहीं उनका बस ईश्वर ही मालिक है।

यह उचित प्रतीत होता है कि अन्त में इस 'ऊँह' के क्रमिक विकास पर भी कुछ प्रकाश डाला जाय और यह बताया जाय कि यह पहले क्या था और क्या से क्या हो गया। हम लोग पुरुषार्थ रहित प्रारब्ध के अनुयायी हो गये हैं और इस प्रारब्ध की बात से हमको यह लाभ हुआ कि कोई ज़िम्मेदारी या उत्तर दायित्व हम पर बाकी नहीं रहा। इसलिये हमारी कोशिश हमेशा यह रही है कि इस भोगवाद या प्रारब्ध के जितने भी भाग बढ़ाये जा सकें उतने बढ़ा दें। पहले हमने इस भोगवाद को संताप, ईश्वर की मर्ज़ी और निरीहता इन तीन सीढ़ियों तक पहुँचाया था पर जब इससे भी हमारी तृप्ति न हुई तो चौथा दर्जा 'ऊँह' का निकाला। भोगवाद के कैवल्य का यह अन्तिम सोपान है। हमारे साहस की प्रशंसा करनी चाहिये कि हम इस आखिरी सीढ़ी को भी तय कर चुके हैं। अगर ज़माने की यही हालत रही तो थोड़े दिनों में इस 'ऊँह' से भी कोई ऊँचा स्थान ढूढ़ कर वहाँ पहुँचने की कोशिश करेंगे और ईश्वर ने चाहा तो सफल होंगे।

मेरी ओर से कोई हिन्दुस्तान के लीडरों को सुना दे कि स्वराज्य प्राप्त करना है तो पहले अपने भाइयों में से इस 'ऊँह' को निकालो। यह कर सको तो हिन्दुस्तान ही क्या सारा संसार तुम्हारा है। यह नहीं हो सकता तो व्यर्थ चीख चीख कर क्यों अपना गला फाड़ते हो। हम 'ऊँह'! कर देंगे और तुम चीखते चीखते मर जाओगे!।

## पितर्स

श्री ए. एस. बोखारी, एम.ए. भारत के डाइरेक्टर जनरल ब्राडकास्टिंग थे अब इस समय पाकिस्तान में विराजमान हैं। इन की कहानियां और इन के लेख अच्छी और प्रायः शुद्ध भाषा में हैं यद्यपि कम हैं, परन्तु उनका स्तर ऊँचा है और साधा

रण हास्यरस की कहानियों के मुक़ाबिले में प्रशंसनीय हैं। छोटी छोटी साधारण घटनाओं और विचारों को अच्छे ढंग से प्रस्तुत करते हैं। इनके यहाँ साहित्य है। चरित्र चित्रण इनकी विशेषता है। कुछ लिखते रहे तो सर्व श्रेष्ठ माने जांय। पढ़िये—

कुत्ते

इल्मुल हैवानात ( जीव विज्ञान ) के प्रोफेसरों से पूछा, स्लोतियों से दरियाफ्त किया, खुद सर खपाते रहे लेकिन कभी समझ में न आया कि आखिर कुत्तों का फ़ायदा क्या है? गाय को लीजिये दूध देती है। बकरी को लीजिये दूध देती है और मेंगियां भी। यह कुत्ते क्या करते हैं? कहने लगे कि कुत्ते वफ़ादार जानवर हैं। अब जनाब वफ़ादारी अगर इसीका नाम है कि शाम के सात बजे से जो भौंकना शुरू किया तो लगातार बग़ैर दम लिये सुबह के छः बजे तक भौंकते चले गये, 'तो हम लंडूरे ही भले'। कल ही की बात है कि रात के कोई ग्यारह बजे एक कुत्ते की तबीयत जो ज़रा गुदगुदाई तो उन्होंने बाहर सड़क पर आकर † तरह का एक मिसरा दे दिया। एक आध मिनट के बाद सामने के बंगले में से एक कुत्ते ने "मतला अर्ज़ कर दिया"। अब जनाब एक पुराने कवि सम्राट को जो गुस्सा आया एक हलवाई के चूल्हे में से बाहर लपके और भिन्ना के पूरी ग़ज़ल मक़ता तक कह गये।

इस पर उत्तर पूरब की ओर से एक काव्य मर्मज्ञ कुत्ते ने ज़ोरों की दाद दी। अब तो हज़रत वह मुशायरा गर्म हुआ कि कुछ न पूछिये, कमबख़्त बाज़ तो दो ग़ज़ले सेह ग़ज़ले लिख लाये थे, बहुतों ने तो आशु कविता कही और क़सीदे पे क़सीदे कह गये। वह शोर मचा कि ठंडा होने में न आता था। हमने

† मुशायरों में एक मिसरा दे देते हैं और उसी पर सब लोग ग़ज़लें लिखते हैं उसी को तरह का मिसरा कहते हैं

खिड़की में से हज़ारों दफ़ा "आर्डर आर्डर" पुकारा लेकिन ऐसे मौक़ों पर सभापति की भी कोई नहीं सुनता। अब इन से कोई पूछे कि "मियां! तुम्हें ऐसा ही ज़रूरी मुशायरा करना था तो दरिया के किनारे खुली हवा में जाकर "काव्य की सेवा" करते। यह घरों के बीच में आकर सोतों को सताना कौन सी शराफ़त है?"

और फिर हम देसी लोगों के कुत्ते भी कुछ अजीब बद-तमीज़ होते हैं। बहुधा तो इनमें से ऐसे देश-भक्त हैं कि पतलून कोट को देखकर भौंकने लग जाते हैं। खैर यह तो एक हद तक प्रसंशा के योग्य है। इस का ज़िक्र ही जाने दीजिये। इसके अतिरिक्त एक और बात है। यानी हमें बहुधा डालियाँ लेकर साहब लोगों के बंगलों पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। खुदा की क़सम उनके कुत्तों में वह शायस्तगी देखी है कि आश्चर्य करते हुये लौट आये।

ज्यों ही हम बंगले के दरवाज़े में दाखिल हुये कुत्ते ने बरामदे ही में खड़े खड़े एक हलकी सी 'बख़' कर दी और फिर मुँह बंद करके खड़ा हो गया। हम आगे बढ़े तो उसने भी चार कदम आगे बढ़ कर एक नाज़ुक और पाकीज़ह आवाज़ में फिर 'बख़' कर दी। चौकीदारी की चौकीदारी, संगीत का संगीत। हमारे कुत्ते हैं कि न राग न सुर, न सर न पैर। तान पर तान लगाये जाते हैं, बे ताले कहीं के। न मौका देखते हैं, न वक़्त, पहिचानते हैं, गले बाज़ी किए जाते हैं। घमंड इस बात पर है कि तानसेन इसी मुल्क में तो पैदा हुआ था।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारा संबंध कुत्तोंसे ज़रा खिचाव का रहा है लेकिन हम से क़सम ले लीजिये जो ऐसे मौक़े पर हमने कभी सत्याग्रह से मुँह मोड़ा हो। शायद आप इसको अपनी प्रशंसा आप समझें, परन्तु ईश्वर साक्षी है कि आज तक

कभी किसी कुत्ते पर हाथ उठही न सका। अक्सर दोस्तों ने सलाह दी कि रात के समय लाठी छड़ी जरूर हाथ में रखनी चाहिये कि कष्ट निवारण है; लेकिन हम किसी से खामखाह अदावत पैदा करना नहीं चाहते। कुत्ते के भौंकते ही हमारी स्वाभाविक शराफ़त हम पर इस क़दर जोर पकड़ जाती है कि आप हमें अगर उस वक्त देखें तो अवश्य यही समझेंगे कि हम कायर हैं। शायद आप उस समय यह भी अन्दाजा लगा लें कि हमारा गला सूखा जाता है। यह अलबत्ता ठीक है। ऐसे मौक़े पर कभी मैं गाने की कोशिश करूँ तो खुज के स्वरों के सिवा और कुछ नहीं निकलता। अगर आपने भी हमारी जैसी तबियत पाई हो तो आप देखेंगे कि ऐसे मौक़े पर गीता के श्लोकों की जगह पर शायद आप हनुमान चालीसा पढ़ने लगेंगे।

बाज दफा ऐसा मौक़ा भी हुआ है कि रात के दो बजे छड़ी घुमाते थियेटर से वापस आ रहे हैं और नाटक के किसी न किसी गीत की तर्ज जहन में बिठाने की कोशिश कर रहे हैं। चूँकि गीत के बोल याद नहीं और नौसिखिये की अवस्था है इस लिये सीटी पर ही संतोष कर लिया है, कि बे सुरे भी हो गये तो कोइ यही समझेगा अंग्रेजी संगीत है। इतने में एक

पर से जो मुड़े तो सामने एक ब करी बंधी थी। जरा मेरे विचार पर ध्यान दीजिये। आँखों ने उसे भी देखा। एक तो कुत्ता और फिर बकरी की जसामत का, गोया बहुत ही बड़ा कुत्ता। बस हाथ पांव फूल गये। छड़ी की गर्दिश धीमी होते होते एक निहायत ही भद्दे कोण पर हुवा में कहीं ठहर गई। सीटी का संगीत भी थरथरा कर चुप हो गया। लेकिन क्या मजाल जो हमारी थोथनी की घुमावदार सूरत में जरा भी फ़र्क पड़ा हो। जैसे कि एक बे आवाज लै अभी तक निकल रही है। वैद्यक का सिद्धान्त है कि ऐसे मौक़ों पर अगर सर्दी के मौसम में भी

पसीना आ जाय तो कोई हर्ज नहीं। बाद में फिर सूख जाता है।

चूँकि हम स्वभावतः ज़रा अहतियात के क़ायल हैं। इस लिये आज तक कुत्ते के काटने का कभी अवसर नहीं आया। यानी किसी कुत्ते ने आज तक हमको कभी नहीं काटा। अगर ऐसी दुर्घटना कभी हुई होती तो इस कहानी के बजाय आज हमारा मर्सिया छप रहा होता। तारीख़ी मिसरा दुबाइया होता कि उस कुत्ते की मिट्टी से भी कुत्ता घास पैदा हो। लेकिन—

कहूँ किससे मैं कि क्या है सगे ‡ रह बुरी बला है।
मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता॥

जब तक इस दुनियाँ में कुत्ते मौजूद हैं और भौंकने पर उतारू हैं समझ लीजिये कि हम क़ब्र में पाँव लटकाये बैठे हैं। और फिर इन कुत्तों के भौंकने के नियम भी तो कुछ निराले है। यानी एक तो जीर्ण रोग है और फिर बच्चों बूढ़ों सभी को लागू है। अगर कोई भारी भरकम भीमकाय कुत्ता कभी कभी अपने रोब और दब दबे को क़ायम रखने के लिये भौंक ले तो हम भी चार ना चार कह देंगे कि भाई भौंक ( अगर्चे ऐसे समय में उसको जंजीर से बँधा होना चाहिये ) लेकिन यह कमबख़्त दो दिन तीन दिन वाले दो दो तीन तीन तोले के पिल्ले भी तो भौंक ने से नहीं रुकते। बारीक आवाज़ ज़रा सा फेफड़ा, इस पर भी इतना ज़ोर लगा लगा कर भौंकते हैं कि आवाज की लहर पूंछ तक पहुँचती। है और फिर भौंकते हैं चलती मोटर के सामने आकर गोया उसे रोक ही तो लेंगे। अब अगर यह सेवक मोटर चला रहा हो तो बिल्कुल हाथ काम करने से इनकार कर देंगे। लेकिन हर कोई यों ही इनकी जीव रक्षा थोड़ा ही कर देगा।

कुत्तों के भौंकने पर मुझे सब से घोर आपत्ति यह है कि इनकी आवाज़ सोचने के तमाम अंगों को शिथिल कर देती है।

‡ वग़ैरह, रास्ते का कुत्ता

विशेष कर जब किसी दुकान के त.ख्ते के नीचे से इनका एक पूरा .खुफिया जलसा बाहर सड़क पर आकर तबलीग़ का काम शुरू करदे तो आपही कहिये होश ठिकाने रह सकते हैं ? हर एक की तरफ बारी बारी से ध्यान देना पड़ता है। कुछ उनका शोर कुछ हमारी विरोध की आवाज़ ( अन्दर ही होठों पर ) बेढंगी हरकात व सकनात ( हरकात उनकी सकनात हमारी ) इस हंगामें में दिमाग़ भला ख़ाक काम कर सकता है ? अगर्चे मुझे भी नहीं मालूम कि अगर ऐसे मौक़े पर दमाग़ काम करे भी तो क्या तीर मार लेगा। अतएव कुत्तों की यह परले दर्जे की ना इन्साफी मेरे नज़दीक हमेशा घृणा के योग्य रही है। अगर इनका एक प्रतिनिधि शराफ़त के साथ आकर हम से कह दे कि 'आली जनाब ! सड़क बंद है' तो .खुदाकी क़सम हम बग़ैर कुछ कहे वापस लौट जाँय, और यह कोई नई बात नहीं। हमने कुत्तों की दर.ख्वास्त पर कई रातें सड़कें नापने में गुज़ार दी हैं। लेकिन पूरी मजलिस का यों मिलकर एक मत होकर सीना ज़ोरी करना एक कमीना हरकत है। ' कृपालु पाठक की सेवा में निवेदन है कि अगर उनका कोई प्रिय और श्रद्धेय कुत्ता कमरे में मौजूद हो तो यह लेख ऊँचे स्वर से न पढ़ा जाय। मैं किसी का दिल दुखाना नहीं चाहता।

.खुदा ने हर क़ौम में नेक व्यक्ति भी पैदा किये हैं। कुत्ते भी इस नियम से अलग नहीं। आपने परमहंस कुत्ता भी अवश्य देखा होगा। साधारणतयः उसके शरीर पर तपस्या का प्रभाव प्रकट रहता है। जब चलता है तो इस दीनता और हीनता से मानो पापों का बोझ उसे आँख उठाने नहीं देता। सड़क के बीचों बीच सोच विचार के लिये लेट जाता है और आँखे बंद कर लेता है। सूरत बिल्कुल फ़िलासफ़रों की सी और शजरा देव जानसन कल्बी से मिलता है किसी गाड़ी वाले

ने लगातार बिगुल बजाया, गाड़ी के अनेक अंगों को खटखटाया लोगों से कहलवाया, खुद दस बारह दफ़ा आवाज़ें दीं तो आपने सर को वहीं ज़मीन पर रखेमुखे नशीली आँखों को खोला। स्थिति पर दृष्टि डाली और फिर नेत्र मूंद लिये। किसी ने एक चाबुक लगा दिया तो आप निहायत इत्मीनान के साथ वहाँ से उठ कर एक गज़ दूर जा लेटे। और विचार के तार को जहाँ से वह टूट गया था वहीं से फिर शुरू कर दिया। किसी बाइसकिल वाले ने घंटी बजाई तो लेटे लेटे ही समझ गये कि बाइसकिल है। ऐसी छोटी छोटी चीजों के लिये वह रास्ता छोड़ देना फ़क़ीरी की शान के ख़िलाफ़ समझते हैं।

रात के वक्त यही कुत्ता अपनी सूखी पतली सी दुम को यथा संभव सड़क पर फैलाकर रखता है। इससे केवल ईश्वर के सच्चे सेवकों की परीक्षा की इच्छा है। जहाँ आपने ग़लती से उस पर पांव रख दिया उन्होंने क्रोध के स्वर में आप से पूछ ताछ आरम्भ की 'बच्चा फ़क़ीरों को छेड़ता है! नज़र नहीं आता हम साधू लोग यहाँ बैठे हैं?' बस उस फ़क़ीर की बद दुआ से उसी समय कंपकंपी शुरू हो जाती है। बाद में कई रातों तक यही स्वप्न दिखाई पड़ते रहते हैं कि अनगिनत कुत्ते टांगों से लपटे है और जाने नहीं देते। आँख खुलती है तो पांव चारपाई की अदवान में फँसे हुये हैं।

अगर ईश्वर कुछ अर्से के लिये आला किस्म के भौंकने और काटने की ताक़त दे तो बदले की भावना मेरी कुछ कम नहीं है, धीरे धीरे सब कुत्ते इलाज के लिये कसौली पहुँच जाय एक शेर है

दो॰—†दुश्मन चिल्लाते रहें उसकी मत कर सोच।
साधू को भोजन मिले, भौंकें कुत्ते पोच॥

यह प्रकृति विरुद्ध कविता एशिया को बदनाम करती है। अंग्रेजी में एक मसल है कि "भौंकते हुये कुत्ते काटा नहीं करते" यह ठीक सही; लेकिन कौन जानता है कि एक भौंकता हुआ कुत्ता कब भौंकना बंद कर दे और काटना शुरू कर दे।

## स्वर्गीय अज़ीम बेग चोग़ताई

चोग़ताई बी.ए. एल. एल. बी वकील, जोधपुर के रहने वाले थे। सुन्दर लेख, कहानियाँ और उपन्यास लिखते थे। साधारण घटना से हास्य पैदा करते हैं। भाषा प्रायः अच्छी और बोल चाल की होती है। भद्दे हास्य और अश्लील भाषा से दूर रहते हैं। घटनायें भी स्वाभाविक लेते हैं बल्कि उनमें सुधार का भी कुछ पुट दे देते हैं। घरेलू मामले भी लिखते हैं; परन्तु उन में किसी प्रकार की गंदगी अथवा नग्न गवाँरू बातें नहीं आने पातीं। हर बात में मज़ा है, हास्य है परन्तु सादगी है, भोलापन है, सादगी भी वही जिसके लिये कहा गया है कि

इस सादगी पे कौन न मरजाय ऐ ख़ुदा!
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं॥

कोलतार, चम्की, रूहेज़राफत, रूहेलताफत, ख़ानम आदि पुस्तकें लिखीं। यह कहानी देखिये—

### —पट्टी—

१

पट्टी एक तो होती है जो चार पाइयों में लगाई जाती है दूसरी वे जो सिपाहियों के पैरों पर बांधी जाती हैं फिर और भी

† उसकी का शेर फ़ारसी का है कि 'ऐ उसकी वैरियों के चिल्लाने स्र मत जो। कुत्तों के चिल्लाने से फ़कीर की रोज़ी कम नहीं हो जाती॥

बहुत किस्म की पट्टियाँ हैं; लेकिन मेरा मतलब यहाँ उस पट्टी से है जो फोड़ा फुन्सी और चोट चपेट के सिलसिले में डाक्टरों के यहाँ बाँधी जाती है।

मेरी स्त्री की मिलने वालियों में एक लेडी डाक्टर थी मिस ओरमा लिपड्से। मैं ससुराल जाने वाला था। मिस ओरमा ने मुझसे कह दिया था कि जिस रोज तुम ससुराल जाओ मुझसे जरूर मिल लेना। इसलिये मैं सुबह तड़के ही मिस साहिबा के बँगले पर पहुँचा।

यह बतलाने के पहिले कि बँगले पर क्या हुआ दो एक बातें मैं कुत्तों के बारे में कहना चाहता हूँ। वह छोटे छोटे कुत्ते जो खूब सूरत कहे जाते हैं और बँगले में अदबदा के पाले जाते हैं, चाहे 'कटखन्ने' न हों मगर इधर आप बँगले में दाखिल हुये और उधर ये सीधे आपके ऊपर, जाहिरा तौर पर काट खाने के लिये मगर वास्तव में आपको दौड़ाकर और रपटाकर' चित्त करने की नीयत से निकले। अतः आप सच मानिये कि यही हुआ। मिस ओरमा के तीन छोटे छोटे कुत्तों ने इस बुरी तरह मेरे ऊपर हमला किया कि मेरे होश जाते रहे। गुलाब के एक काँटों भरे दरख्त पर मैंने ऐसे पैर रख दिये जैसे कोई रेशमी गद्दे पर रखता है। वहाँ फँस कर बदहवासी के साथ गमले फाँदा। एक फाँद गया, दो फांद गया, तीसरे पर पर ऐसा लगा कि मुँह के बल गिरा और साथ ही कुत्ते सिर पर। जनाब क्या बताऊँ? किस तरह बेतहाशा फिर उठा कि कुत्तोंने ऐसी टाँग ली कि एक कुत्ते पर पैर पड़ गया और अबकी सड़क पर जा गिरा। वहाँ से घबराकर सीधा उठ कर बरामदे में आया। कुत्ते पीछे पीछे थे। चिक उठाने की मोहलत किसे थी? चिक समेत तोप के गोले की तरह कमरे में दाखिल। उधर से मिस साहिबा

चीखती आरही थीं मैं इस बुरी तरह मिस साहिबा

से जाकर टकराया कि वे कुरसी पर चीख़ मार कर गिरी। मैंने सहारा देकर जल्दी से उठाया। कुत्ते खड़े अब दुम हिला रहे थे, वह मूज़ी जो पल भर पहिले मेरी जान लेने को तैयार थे।

२

जब ज़रा होश दुरस्त हुये तो हम दोनों ने बातें करनी शुरू कीं। मिस साहिबा ने अपनी सहेली से मिलने का आग्रह प्रकट किया। कुछ और इधर उधर की। बातें की इतने में मिस साहिबा की निगाह मेरे हाथ पर पड़ गई जो सड़क पर गिरने से रगड़ खाकर अँगूठे की जड़ के पास से छिल गया था।

"ओह—यह यह क्या" यह कह कर उन्होंने मेरे इस नाम मात्र के ज़ख़्म की परीक्षा की और कहा "मैं अभी इसे लोशन से धोकर ड्रेस किये देती हूँ" मैंने कहा "अजी रहने दीजिये कोई बात भी हो" मिस साहिबा परेशान सूरत बनाकर बोली' मिर्ज़ा साहब "यह मामूली बात नहीं। इसको फ़ौरन ड्रेस करना चाहिये वरना कहीं—"

"वरना कहीं ?" मैंने पूछा। मिस ओरमा ने भौंहें चढ़ाकर और भयभीत-सी शक्ल बना कर कहा "टिट-टिटनेस" 'टिटनेस' यह मेरे लिये बिलकुल नया शब्द था। एकाएक ख़्याल गुज़रा कि यह कहीं शेक्सपियर की नायका टैटानियाँ का भाई बंद तो नहीं है। और मैंने तफ़सील पूछी तो मालूम हुआ कि यह ज़हरबाद की क़िस्म का रोग है। सड़क की मामूली रगड़ से संभव है कि ख़राश में कुछ सूजन हो जाय, रात ही रात हाथ सूज कर डम्बेल बन जाय और सुबह होते होते ज़हर बाद शुरू हो जाय, और फिर राम नाम . . ."

मैं कुछ सहम सा गया। इस भयंकर रोग की दिल दहलाने वाली बातें सुनता जाता था और मिस ओरमा की नाज़ुक उँगलियों से पट्टी बँधवाता जाता था बँगले से जो निकला तो

हुलिया यह था कि गले में एक झूला पड़ा हुआ था और उसमें जकड़ बंद किया हुआ हाथ। ख़ैरियत यह थी कि ताँगे पर आया था अगर साइकिल पर होता तो और भी मुसीबत होती।

३

रास्ते में एक जान पहिचान वाले मिले। दुआ सलाम के साथ ही उन्होंने ताँगा रुकवाया "अरे मियाँ यह क्या! ख़ैर तो है?" उन्होंने कहा। मैंने इसके उत्तर में पूरा क़िस्सा सुनाया कि जनाब सड़क पर रगड़ लग गई और इस डर के मारे कि टिटनेस न हो जाय यह कार्रवाई की है। 'लाहौलविला क़ुवत' उन्होंने ज़ोर से क़हक़हा लगाया और टिटनेस तथा उसकी कल्पना पर लानत भेजते हुये कहा "खोल खाल के पट्टी फेंक दो और इसकी जगह सिन्दूर और तेल रगड़ कर लगा दो।"

इसके बाद एक साहब और मिले। उन्होंने भी ताँगा रुकवाया। वही बातचीत हुई। उन्होंने भी टिटनेस पर लानत भेजी। ख़ूब हंसे, मज़ाक उड़ाया और कहने लगे "टूटे हुये घड़े की मिट्टी रगड़कर नीम की छाल के साथ लगालो।"

संक्षेप में यह कि रास्ते में चार आदमी और मिले। सभी ने टिटनेस पर लानत भेजी और मुझ पर हँसे। किसी ने काली मिर्च बताई किसी ने चन्दन बताया किसी ने कहा कुछ न बाँधो यों ही सूख जायेगा। घर पहुँचा, तो पिता जी ने पट्टी का हाल पूछा। माँ ने पूछा, भाई बहनों ने पूछा। ग़रज़ सबको हाल बताना पड़ा। फिर नौकरों की बारी आई। घर की बूढ़ी नौकरानी ने सहानुभूति से सुने सुनाये का ब्योरा पूछा "बेटा, यह टिटनेस क्या है, जो तुम्हारे दुश्मनों को होने का डर है। बूढ़ी ने जब लड़को से सुना था तो शायद टिटनेस को तरकारी की क़िस्म की कोई चीज समझी थी। ख़ैर जिस तरह हो सका उनको भी समझाया। इतने में बाहर एक मिलने वाले आगये

उनसे किसी ने सुनी सुनाई उड़ा दी। बहुत परेशान और सहानु-भूतिपूर्ण स्वर में उन्होंने सारा ब्योरा पूछा जो बताना पड़ा। वे चले गये तो खरबूजे वाला आया, रोज आता था भला कैसे बिना पूछे रह सकता था। मैंने कह कर टालना चाहा कि चोट लग गई है कि नौकर का लड़का बोल उठा "टीटंस" हो गया। इधर मैंने लड़के की तरफ घूम कर देखा उधर खरबूजे वाला चकराकर बोला "मियाँ यह टीटंस क्या है ? क्या कोई फुड़िया का नाम डाक्टरों ने रक्खा है ? ' मैंने जलकर कहा" बेहूदा मत बको।" इससे फुरसत पाई थी कि अन्दर गया तो देखा माता जी दो चार औरतों को टिटनेस पर लेक्चर दे रही हैं। मैं पहुँचा तो मुझसे प्रार्थना की गई कि मैं इस टिटनेस पर "कुछ अधिक रोशनी डालूं"। अब मैं तंग आ गया था। टिटनेस के नाम से गुस्सा आता था। खैर ज्यों त्यों करके बला टली।

४

शाम को चार बजे की गाड़ी से रवाना होने वाला था इस बीच में लोगों ने मेरा नाकका बंदकर दिया। अब मैं सिर्फ यह कहकर टालना चाहता था कि चोट लग गई है, मगर जनाब पूछने वाला बिना टिटनेस की बात चीत के भला काहे को मानता। वह फौरन कहता कि फलाँ साहब से सुना कि टिटनेस होने का डर है। मजबूरन जिस तरह बन पड़ता जान छुड़ाता।

ताँगा आया। असबाब लादा तो ताँगे वाले ने भी पूछा "मियाँ, हाथ में पट्टी कैसी ?" मैं झुंझाकर रह गया। स्टेशन पर अलबत्ता मेरा नाक में दम आ गया। बहुतों को यह कहकर टाला कि चोट लग गई है, बहुतों को कुछ न कुछ टिटनेस का हाल बताना पड़ा। गाड़ी छूटने से पहले ही एक सज्जन से इस विषय पर कुछ "बुरा मनोमल" भी हो गई।

"अरे मियाँ यह हाथ में पट्टी कैसी है ?" यह उन्होंने

पूछा। 'मामूली चोट लग गई है" 'कैसे लग गई।' 'सड़क पर गिर पड़ा था, खराश आगई" 'फिर कोई बात तो नहीं?' "कोई बात नहीं।" "मगर अब्दुल हमीद साहेब मिले थे वे कहते थे कि खुदा न करे टिटनेस हो जाने का डर है। यह टिटनेस क्या होता है?" अब मुझे ऐसा गुस्सा आया कि उनका मुँह नोच लूं। क्योंकि वे मुझे केवल तंग कर रहे थे। आपही विचार कीजिये कि पहिले तो उन्होंने शुरू से पूरी तफ़सील पूछी, यद्यपि वे अब्दुल हमीद साहेब का अच्छी तरह मग्ज़ खा चुके थे, और फिर टिटनेस को पूछते हैं कि क्या होता है? गोकि खूब अच्छी तरह पूछ चुके थे।

मैंने जल कर कहा "टिटनेस एक तरह का बोखार होता है जिसमें छींकें आती हैं।" 'हैं" वह बोले "अब्दुल हमीद साहेब तो कहते थे कि जहरबाद होता है।"

"माफ़ कीजिये" मैंने कहा—'तो फिर आप जब जानते हैं कि टिटनेस क्या बला है तो मेरा दिमाग चाटने से फायदा?'

जाहिर है कि ऐसी बात चीत का फल क्या हो सकता है। उन्होंने बुरा माना। मैंने और भी बुरा माना, जिससे उन्होंने और भी बुरा माना।

मेरे डब्बे में वैसे तो कई आदमी थे मगर बिल्कुल पास ही बैठने वाले एक तो ज़मींदार सूरत लखनऊ की तरफ़ के मुसलमान थे, और एक साहेब कुछ फ़ौजी नुमा मालूम होते थे। खाकी क़मीज़ और नेकर पहने थे। इनके पास ही एक मेरे शहर के मारवाड़ी महाजन बैठे थे। इनके अलावा दो एक और सज्जन भी थे। गाड़ी चली। दो एक इधर उधर की जबरदस्ती की बातें पूछ कर इन फौजी सज्जन ने आखिर पूछ ही तो लिया "आपके हाथ में यह पट्टी कैसी बंधी है?"

मैं कह नहीं सकता कि मैं दिल में कितना भुनाया मज

फ़ूरन कह दिया ।

"ज़ख्म हो गया है।" "कैसे !" उन्होंने पूछा। मारे गुस्से के मैंने कहा "बात दरअसल यह है कि मगरने काट खाया है।"

"मगर ने। मगर ! मगर ने काट खाया !" "जी हाँ" मैंने लापरवाही से कहा।

"कैसे ?" उन्ह ने बड़ी उत्सुकता से अब ब्यौरा पूछना चाहा कि मैं किस तरह पानी या दलदल में घुसा। मगर से कैसे साबक़ा पड़ा आदि। मगर मैंने तंग आकर दूसरी तरकीब सोची। "मुँह से काट खाया" मैंने कहा। "जी हाँ" उन्होने सिर को कुछ हिलाते कहा—"मुँह से तो काटा ही होगा, 'मगर कहाँ पर आख़िर" ? जहाँ चोट लगी थी और पट्टी बंधी थी मैंने दूसरे हाथ से वह स्थान पकड़कर कहा 'यहाँ पर काट खाया और मुँह फलाकर काट खाया' मैंने हाथ से मुँह दबाने की नक़ल करते हुये कहा। 'नहीं साहब' वह दूसरे ज़मींदार साहब बोले—इनका मतलब यह है कि आख़िर वह कौन मुक़ाम था जहाँ मगर ने काट खाया ; क्या घटना हुई थी ?"

मैंने उसी तरह रूखे मुँह से कहा 'मैंने कहा न कि इसी मुक़ाम पर हथेली के पास" मैंने फिर दोबारा उस जगह को पकड़कर दिखाया–इसी मुक़ाम पर मूंज़ी ने काट खाया और कोई घटना तो हुई नहीं।

कुछ चिड़चिड़ा कर उन्ह ने कहा 'अजी हज़रत, क़िस्सा सुनाइये कि किस तरह कौनसी नदी या तालाब में क्या मामला पेश आया जो मगर ने आपकी हथेली को काट खाया'। 'अब मैं समझा आप का क्या मतलब है' 'मैंने कहा–सुनिये, घटना वास्तव में यह हुई कि हमारे पड़ोस में एक नदी है वहाँ एक बड़ा सा मगर रहता था। एक रोज़ मैंने एक बड़ा ज़बरदस्त मछली का सा कांटा कोई दस सेर वज़न का बनवाया उसे एक

मोटे तार के रस्से में बांध कर पेड़ से बांध दिया। कांटे में गोश्त लगाकर नदी में डाल दिया। उसमें मगर रात को आठ बजकर तीन मिनट पर फंस गया '।

इस संक्षिप्त वृतान्त को भला लोग काहे को पसन्द करते चारों ओर से सवालों की झड़ी बंध गई। किसी ने पूछा साहब कांटा कैसा नोक का था। किसी ने कहा क्या वह निगल गया ? गरज यह कि तरह तरह के सवाल पैदा हो गये। मजबूरन मुझे मगर के शिकार के कुछ क़िस्से गढ़ कर सुनाने पड़े। अब मैंने अपने बयान को कहानी का रूप देकर सुनाना शुरू किया और उस स्थान पर पहुँचा कि दस बारह आदमियों ने रस्सा खींचा। मगर ने ज़ोर से तड़पकर पलटा खाया ही था कि दूसरा स्टेशन आ गया।

स्टेशन आने से भला मेरी कहानी क्या रुकती। लेकिन यहाँ यह मुसीबत आई कि एक सज्जन ने कोई छकड़े भर असबाब के साथ इसी डब्बे पर हमला किया। इस गरमा गरमी के साथ उन्होंने और उनके नौकरों ने असबाब की फेंकाफेंक और ठूंसाठूंस की कि सबको अपने अपने बोरिया बिस्तरे और जगह की पड़ गई। ये हज़रत शायद पुलिस के सब-इन्सपेक्टर थे और किसी दूसरे थाने पर तबादिले के सिलसिले में लद रहे थे। हट्टे कट्टे जवान थे और उनकी मूंछें बड़ी बड़ी थीं। सामने ही दूसरों की जगह पर कब्ज़ा करके इधर उधर सरकाकर बैठ गये और फ़ौरन मुझे पान पेशकिया। मेरी कमबख़्ती कि मैंने धन्यवाद के साथ ले लिया। इसके साथ ही फ़ौरन मौसम की शिकायत की। मैं जानता था कि अब यह मुझे छेड़ेंगे। हुआ भी ऐसा ही। मौसम की शिकायत के बाद ही उन्होंने भी आखिर को गोला दे मारा "क्यों जनाब, यह आपके हाथ में पट्टी कैसी है ? सूखे मुँह से मैंने कहा 'परसों काले साँपने काट खाया '

"अरे काला साँप ?"

मैंने कहा " जी ! काला " यह कह कर मैंने इधर उधर के उन लोगों पर नज़र डाली जिनको मैं मगर की कहानी सुना रहा था। और जो शायद अब बाकी कहानी को पूरा करने की फरमाइश करने ही वाले थे। किसी के चेहरे पर गंभीरता थी तो किसी के चेहरे पर मुस्कराहट ।

कहा—कैसे ? कहां काट खाया ? कैसे काट खाया ? कब ?– " मैंने कहा तो परसों काट खाया । "

"कहां ? आप क्या कर रहे थे ? "

"यहां," मैंने पट्टी पर हाथ से बताते हुये कहा–"यहां काट खाया । मैं खाना खा रहा था।"

"तो फिर क्या हुआ ?" "फिर सांप ने काट खाया," मैंने सादगी से कहा।

"कैसे ?" "ऐसे"- मैंने उंगली से चुटकी लेकर सांप के काटने की नक़ल बनाते हुये कहा-ऐसे काट खाया । "अजी साहब" यह मतलब नहीं । आखिर क्या हुआ था ? सांप कैसे आया और वाक़या पूरा पूरा क्या है ?"

इस के बाद मैंने सांप काटने का क़िस्सा बयान करना शुरू किया जो बद क़िस्मती से इस वक्त मुझे याद नहीं। मगर यह अच्छी तरह याद है कि मैंने अपना क़िस्सा बहुत ही अच्छी तरह से पूरा किया था। जो लोग मगर का किस्सा सुन चुके थे उनके सवालों का मैंने निहायत सादगी से जवाब दिया। मैंने कहा 'मगर भला किस तरह काट सकता है ? मुझे मगर ने कभी नहीं काटा'। मेरी गम्भीरता पर पहले तो वे कुछ मुस्कराये, फिर उनके चेहरे से कुछ संशय प्रकट हुआ, मगर मैं प्रत्यक्ष रूप से गंभीर था, मेरे दिल को

पहुँचा रहा था। दिन भर के ठीक उत्तरा से मन

में जो जलन पैदा हो गई थी वह मिट गई। पहले की बनिस्बत अब मैं खुश था। अब मैं एक निस्पृह भाव से अखबार पढ़ने में व्यस्त हो गया।

कई स्टेशन निकल गये। कोई नया आगन्तुक ऐसा न आया जो मेरी पट्टी का हाल पूछता। किसी ने ठीक ही कहा है कि 'कभी नाव गाड़ी पर कभी गाड़ीपर नाव'। अब मेरा नम्बर था। मैं इस प्रतीक्षा में था कि कोई मुझ से पूछे तो; मगर किसी ने न पूछा यहां तक कि मैं घर यानी ससुराल पहुँच गया।

५

रात को साढ़े ग्यारह बजे होंगे। सास साहिबा के सामने जाकर अदब से फर्श पर बैठ गया। सलाम दुआ के बाद पहला सवाल जो उन्हों ने किया वह यह था 'खैर तो है। यह तुम्हारे हाथ में पट्टी कैसी बंधी हुई है?' गोली लग गयी है,' मैंने जल कर कहा। 'या अली गोली।' वे चौंक कर बोलीं, 'गोली! खुदा खैर करे। कैसे लग गई?'

''बन्दूक की नाल से' मैंने कहा। 'बेटा आखिर क्या हुआ था, कैसे बन्दूक चल गई?'। क्या बताऊँ कि मुझे इस सवाल से अब कैसी जलन हो रही थी। अब मालूम हुआ कि किसी ने ठीक ही कहा है '.नही दौड़ता है घोड़ा हर एक जगह पर'।

.. मुझे जलन हो रही थी। क्यों कि छतवाले कमरे पर बिजली की रोशनी गायब थी। 'जिसका अर्थ यह था कि कमरे वाली शायद नहीं बल्कि निश्चित रूप से अनुपस्थित थी। इस लिये जवाब देने के बजाय मैं मन में सोचने लगा कि शायद अपने मामा के यहां गयी होंगी। मेरे एक मूर्ख मित्र ने सलाह दी थी कि बिना पहिले से खबर दिये ससुराल पहुच

और वहां श्रीमती से मिलना विशेष आनंददायक होता है। जवाब देने के बजाय मैं मन ही मन उन्हें मूर्ख कह रहा था कि एका एक चौंक सा पड़ा। एक सूखा संक्षिप्त सा क़िस्सा सुनाया कि बन्दूक अचानक चल गई और गोली छूती हुई निकल गई; मगर सास साहबा ने मेरीजान खाना शुरू किया।

इसी बीच में छोटी साली साहिबा लजाती बलखाती आई। मैं बयान नहीं कर सकता कि उस समय मैं कैसी उलझन में था। सास साहबा दुनियाँ भर की बातें तो कर रही थीं; मगर यह न बताती थीं कि मेरी श्रीमती जी हैं कहां? अपने मामा के यहां या घर में? खैर बात चीत में छोटी साली से इतना तो मालूम हुआ कि घर में नहीं हैं। सास साहबा बोलीं, 'दोनों गई थीं, यह तो शाम ही को लौट आई और उसने खाना खाकर आने को कहा था। मगर रह गई. बहन ने पकड़ लिया होगा। दोनों में बड़ी मुहब्बत है। अक्सर बुला भेजती हैं।'

यह कहकर सामने मेरी श्रीमती की ममेरी बहन के मुहब्बत का कानों में चुभने वाला किस्सा शुरू किया और उधर मैंने मुंह बनाया और लापरवाही से जम्हाइयां लेनी शुरू कीं; क्यों कि मुझे अपनी श्रीमती से इस तरह की मुहब्बत करने वालियों से सख्त नफ़रत है। खैर, शुक्र है कि सास जी मेरा मतलब समझ गईं और कहने लगीं—'अच्छा अब जाओ सो रहो।'

मैं थके हुये पैरों से अंधेरे में अनमने भाव से ज़ीने पर चढ़ा। छत पर पहुंचते ही बत्ती जलाई, नौकरानी कम-बख्त ने मेरा बिस्तरा ज्यों का त्यों पलंग पर रख दिया था। मैंने खोल कर बिछाया, बत्ती बुझाई और लेट कर बहुत जल्द सो गया।

आखिरी रात का पहला हिस्सा और गर्मियों की ठन्डी हवा में मतवाली नींद। लेकिन कुछ आहट कुछ गर्मी और खुश्बू इस नींद को भी गायब कर सकती है। मैं बिजली की रोशनी में खड़बड़ा कर उठा !-"कौन" ? मेरे मुँह से निकला। जवाब देने वाली मुस्करा रही थी, वह मेरी मौजूदगी पर और मैं उसकी मौजूदगी पर। गलती मेरी ही थी। कमरे के दूसरे बाजू के सामने ही तो चरपाई पड़ी थी। मैंने देखी ही न थी। न दुआ न सलाम सीधे, "यह हाथ में आपके क्या हुआ ? पट्टी कैसी बंधी है ?"

या खुदा ! भला क्या जवाब देता। मैंने कहा -

नज़र से तीर चलाकर मुझे किया घायल। सवाल फिर ये तुम्हारा कि यह हुआ क्या है !॥

और उसी वक्त से तै कर लिया कि अब पट्टी कभी न बाँधूंगा। ख़ुदा इस इरादे की शर्म रक्खे।

शौकत थानवी थाना भवन जिला मुज़फ्फर नगर के रहने वाले थे, आज कल पाकिस्तान की शोभा बढ़ा रहे हैं। इंट्रेंस पास करने में जिस धैर्य्य और साहस का प्रदर्शन किया उसके सामने हिटलर और नेपोलियन खड़े हुये दांतों उँगली दाब रहे हैं। लखनऊ में प्रायः रहे और एक उर्दू पत्र के सम्पादकीय विभाग से सम्बन्ध रहा। एक कहानी मीठे चावल लिखी, फिर हिम्मत पड़ गयी। इनकी कहानी 'स्वदेशी रेल' बहुत प्रसिद्ध हुई और इसी से हास्य के लेखकों में इनका नाम आने लगा। फिर तो मौजे तबस्सुम, बहरे तबस्सुम' तूफाने तबस्सुम आदि कहानियों के संग्रहनिकाले। उलटी गंगा एक उपन्यास लिखा और जनता प्रियता ने आपको अपनी जीवनी लिखने का साहस दिला दिया। इनकी हंसी केवल हंसी के लिये है इनके यहां गहराई नहीं भाषा शैली और हास्य

है और जनसाधारण के लिये है । उस में न तो पांडित्य है न साहित्य । आज कल कुछ दिनों से रेडियो के लिये 'प्रहसन लिखते हैं, शायद नौकर भी हों । इनकी कहानियां काफी बड़ी बड़ी हैं इस कारण यहां नहीं लिख रहा हूँ । फिर इनकी धर्म पत्नी भी इस से प्रसन्न हो होंगी, क्योंकि उन्हीं के सहारे से बहुत सी कहानियां लिखी गई हैं । और उनको पर्दे के बाहर लाना मुझे उचित नहीं मालूम होता ।

मुल्ला रमूजी की कहानियां कम, परन्तु सुन्दर हैं। इन के यहां भाषा का आनन्द लीजिये । भाषा से ही हास्य पैदा करते हैं । इनकी भाषा को लोग "गुलाबी उर्दू" कहने लगे थे। इस में सन्देह नहीं कि इनकी भाषा में एक विशेष प्रकार का रस है । इस प्रकार का हास्य दूसरी भाषा में बदल जाने पर अपना हास्य, अपना व्यंग, जोर और मजा खो देता है । ये हंसी हंसी में कभी सीमा पार भी कर जाते हैं ।

श्री इम्तियाज अली 'ताज' लाहौर में हैं । इनकी कहानियां कम निकलीं । 'चचाछक्कन' से बातें करके चुप होगये अब कदाचित ऐसी बातें करना या लिखना उचित नहीं समझते और अवकाश भी कहां है ? इनकी कहानियां भी घरके अन्दर ही तक सीमित हैं । बाहर की बातों, बाहर की दुनिया के चक्कर मे नहीं पड़ते । अब लिखते भी नही ।

व्यंग लिखने वालों में कन्हैयालाल कपूर, सालिक और अख्तर अधिक प्रसिद्ध हुये । कपूरकी पुस्तक शीशा व तेशा सुन्दर है । अख्तर साहब पैरोडी लिखने में दक्ष हैं । इनकी ग़ालिब की जीवनी पढ़ने योग्य है । हिन्दू लेखकों और कवियों के बारे में मुझे मालूम नहीं कि अगर हैं तो आज कल कहां हैं और क्या कर रहे हैं

इन सब के अतिरिक्त और भी बहुत से प्रसिद्ध हास्यरस लेखक होंगे या हैं जिनके बारे में मैं कुछ नहीं लिख सका† । सच तो यह है कि मैं डरके मारे उनके नाम ही भूल गया, लिखूं क्या ? अब आइये जरा शेर व शायरी की बातें हों ।

## पद्य

कथा कहानी सुनते सुनते जी उकता गया होगा, कान पक गये होंगे । अच्छा आइये अब मुशायरे की तरफ़ चलें। ऐं ! यह क्या ? मुशायरा नहीं, कवि सम्मेलन । अरे भाई मुशायरा और कवि सम्मेलन कोई दो चीजें नहीं हैं और अगर हैं भी तो हम एक ही समझते हैं । यहां इसको चाहे आप मुशायरा कहिये या कवि सम्मेलन । यहां सब कवि और शायर एक ही जगह मिलेंगे । और आप को अपनी कविता सुनायेंगे । यह देखिये जो दुबले पतले से पतली दाढ़ी वाले साहब पढ़ने जा रहे हैं इनको आप पहचानते हैं । इनके देखने से ज्यादा आप इनकी कविता से हसेंगे । ये छोटी नौकरी से बढ़कर जज हुये और कविता में बड़ा नाम कमाया । ये न तो दिल्ली के हैं न लखनऊ के ; मगर दोनों जगह वाले इन पर गर्व करते हैं । ये इलाहाबाद से आये हैं । इनकी लेखनी में जादू है । इनको सुन लीजिये क्योंकि इन के बराबर हास्य में श्रेष्ठ कवि न तो उर्दू में हैं और न हिन्दी में । इनकी शैली भी अनोखी है । जो बात कहते हैं दिल में सीधी उतर जाती है । ऐसे ऐसे शब्द जिनको साहित्य लेनेसे हिचकिचाये यह मोती की भांति पिरोते चले जाते हैं । क़ाफ़िये का क़ाफ़िया तंग किये रहते हैं । व्यंग तीक्ष्ण परन्तु मीठा है । इनके "मत"

---

† जैसे मौलाना अब्बुलकलाम आजाद ( २ ) हसन निजामी ( ३ ) माजिद दरयाबादी ( ४ ) जफ़र अली आदि ने व्यंग या हास्य लिखा परन्तु यह उनका असली रंग नही था । मुहम्मद हुसेन आजाद का स्वतन्त्र रूप नहीं मिलता परन्तु शैली अवश्य है विनोद पूर्ण ।

का विरोधी भी कविता सुनकर प्रशंसा किये बग़ैर नहीं रहता। ग्राम्य दोष शायद ही कहीं आया हो; हालांकि बहुत कुछ कहा और शायद ही कोई विषय छूटा हो जिस पर न कहा हो और भिन्न भिन्न प्रकार से न कहा हो। इनकी ख्याति केवल हास्य के भरोसे पर नहीं टिकी है। इनके व्यंग में सुधार छिपा है। अंग्रेजी सरकार, सरकारी कर्मचारी, लीडर, समाज, पर्दा, विद्यार्थी, धर्म, इत्यादि कोई विषय नहीं जिस पर अपने विचार न प्रकट किये हों और सुधार की दृष्टि से चोट न की हो। इनकी भाषा में प्रवाह और माधुर्य है। ये हैं महाकवि अकबर। सुनिये, पढ़ते हैं।

## एकता पर

१ हम उर्दू को अर्बी क्यों न करें, उर्दू को वो भाषा क्यों न करें,
झगड़े के लिये अख़बारों में, मज़मून तराशा क्यों न करें।
आपस में अदावत कुछ भी नहीं, लेकिन एक अखाड़ा क़ायम है,
जब इससे फ़लक का दिल बहले, हम लोग तमाशा क्यों न करें॥
२ आता है वज्द मुझको हर दीन की अदा पर।
मस्जिद में नाचता हूँ नाक़ूस की सदा पर॥
३ ऊंट ने गायों की ज़िद पर शेर को साझी किया।
फिर तो मेंढक से भी बदतर सब ने पाया ऊंट को॥

## राजनीति

१ मुल्क पर तासीरे चश्मे वोट तारी हो गई।
मुफ्त शैख़ो बरहमन में फ़ौजदारी हो गई॥
मेम्बरी पर जंग हो इसमें गऊ का क्या क़ुसूर।
मुल्क में बदनाम नाहक़ ये बिचारी हो गई॥
२ नौकर को सिखाते हैं मियां अपनी ज़ुबान।
मतलब ये है कि समझे उन के फ़रमान

मक़सूद नहीं मियां की सी अक़्लो तमीज़ ।
इस नुक्ते को क्या समझें वे जो हैं नादान ॥
३ क़ौम पर मेम्बरी का फ़ैर हुआ ।
कल जो अपना था आज ग़ैर हुआ
शैख़ जी मर गये कमेटी में ।
ग़ुल मचा, ख़ात्मा बख़ैर हुआ
४ फिरंगी से कहा पेंशन भी लेकर बस यहीं रहिये ।
कहा' जीने को आये हैं यहां मरने नहीं आये' ॥
५ गोलियों के ज़ोर से करते हैं वो दुनियां को हज़्म ।
इससे बेहतर इस ग़िज़ा के वास्ते चूरन नहीं ॥
६ ताप खिसकी तो प्रोफ़ेसर पहुँचे । जब बसूला हटा तो
७ उनका मेरा ताअल्लुक़ इससे है साफ़ ज़ाहिर ।
उनका इशारा देखो मेरा सलाम देखो ॥

## स्त्री शिक्षा

१ तालीम लड़कियों की ज़रूरी तो है, मगर ।
ख़ातूने ख़ाना हो वो सभा की परी न हों ॥
२ कुल स्टेशन को उसने मेरे घर से कर दिया वाक़िफ़
ये देखो बरकते तालीमें बीबी इस को कहते हैं
३ उन से बीबी ने फ़क़त स्कूल ही की बात की ।
ये न बतलाया कहां रक्खी है रोटी रात की ॥
४ ख़ुदा के फ़ज़्ल से बीबी मियां दोनों म.हज़्ज़ब हैं ।
हिजाब उनको नहीं आता इन्हें ग़ुस्सा नहीं आता ॥

## विभिन्न

१ दिल मेरा जिससे बहलता कोई ऐसा न मिला ।
बुत के बंदे मिले अल्लाह का बंदा न मिला ॥
सय्यद उट्ठे जो गज़ट लेके तो लाखों लाये ।
शेख़ क़ुरआन दिखाते फिरे पैसा न मिला ।

८ दिन गुज़रते ही चले जाते हैं। लोग मरते ही चले जाते
जानते हैं कि ये ग़फ़लत के हैं काम।
फिर भी करते ही चले जाते हैं॥
९ जुस्तजू हमको आदमी की है। वह किताबें अबस मंगाते
७ तमाशा देखिये बिजुली का मग़रिब और मशरिक़ में।
कलों में है वहां दाख़िल, यहां मज़हब पे गिरती है॥
१ अस्ल अल्लाहसे लगावट है। वरना मज़हबमें सब बनाव
६ ख़ुदा का घर बनाना है तो ले नक़्शा किसी दिल का।
ये दीवारों की क्या तजवीज़ है ज़ाहिद, ये छत कैसी ?
७ चिपकूं दुनियाँ से किस तरह मैं, औरतने कहा कि गोंद हूँ
८ नहीं कुछ इसकी पुरसिश, उल्फ़ते अल्लाह कितनी है।
यही सब पूछते हैं आपकी तनख़ाह कितनी है॥
९ मेरे हवास इश्क़ में क्या कम हैं मुंतशर।
मजनूं का नाम होगया क़िस्मतकी बात है॥
१० उन्हें शौक़े इबादत भी है औ, गाने की आदत भी।
निकलती हैं दुआयें उनके मुँह से ठुमरियाँ होकर॥
११ ये इतनी गोशमाली तिफ़्ले मकतब की नहीं अच्छी।
ज़ुबाँ आती है उसको सच है, लेकिन कान जाता है॥
१२ कर दिया करज़न ने ज़न मर्दों की सूरत देखिये।
आबरू चेहरे की सब फ़ैशन बना कर पोंछ ली॥
सच यह है इन्सान को योरुप ने हल्का करदिया।
इब्तदा दाढ़ी से की और इंतहा में मोंछ ली॥
१३ इस क़दर था खटमलों का चारपाई में हुजूम।
वस्ल का दिल से मेरा अरमान रुख़सत होगया॥
१४ निगाहे चश्मे मुरौवत कहाँ रही बाक़ी।
ज़रीआ बातोंका जब सिर्फ़ टेली फ़ोन हुआ॥
१५ पाकर ख़िताब नाच का भी शौक़ होगया

'सर' होगये तो बाल का भी शौक़ होगया ॥
१६ मोलवी साहब न छोड़ेंगे ख़ुदा गो बख़्श दे ।
घेर ही लेंगे पुलिस वाले सज़ा हो या न हो ॥
१७ दाढ़ी ख़ुदा का नूर है बेशक मगर जनाब !
फ़ैशन के इन्तज़ामे सफ़ाई को क्या करूं ॥
१८ रक़ीबों ने रपट लिखवाई है जा जा के थाने में ।
कि अकबर नाम लेता है ख़ुदा का इस ज़माने में ॥
१६ हम क्या कहें अहबाब क्या कारे नुमायाँ कर ग
बी० ए० किया नौकर हुये पिन्शन मिली और मर ग
२० शेख़ जी के दोनों लड़के बाहुनर पैदा हुये ।
एक हैं ख़ुफ़िया पुलिस में एक फांसी पागये ॥
२१ क़ाबिले रश्क है ज़माने में ।
दिन वकीलों का, रात आशिक़ की ॥
२२ शौक़े लैलायेसिविल सर्विस ने इस मजनून को ।
इतना दौड़ाया लंगोटी कर दिया पतलून को ॥
२३ हुये इस क़दर मुहज़्ज़ब कभी घर का मुंह ना देखा
कटी उम्र होटलों में मरे हस्पताल जाके ।
२४ बताऊँ आपको मरने के बाद क्या होगा ?
पोलाव खायेंगे अहबाब फ़ातेहा होगा ॥
२५ सीने पे बुतों के दस्तरस मुश्किल है ।
प्वाइन्ट यह सख़्त है इसे टच न करो ॥
२६ क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ ।
रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ ॥
२७ शेख़ साहब का ताअस्सुब है जो फ़रमाते हैं ।
ऊँट मौजूद है फिर रेल पे क्यों चढ़ते हो ॥
२८ गोशये मस्जिद में कारे शेख़ अब बनता नहीं ।
पेट गो तस्कीन पजाये मगर तनवा नहीं ॥

२९ बेपर्दा नजर आईं जो कल चन्द बीबियां।
अकबर ज़मी में ग़ैरते क़ौमी से गड़ गया॥
पूछा जो उनसे आप का पर्दा वो क्या हुआ?
कहने लगीं कि अ़क्ल पे मर्दों की पड़ गया॥
३० यह न पूछो मुझसे ये क्या हैं औ' ऐसा क्यों नहीं।
शेख यह सोचो तुम्हारे पास पैसा क्यों नहीं॥
३१ मदख़ूलये गवरमेंट अकबर अगर न होता।
उस को भी आप पाते गाँधी की गोपियों में॥
ख़ूब तालियाँ बजरही हैं।

अब देखिये ये चौड़े चकले चेहरे वाले ज़रा सांवले से जो पढ़ने जारहे हैं ज़रीफ़ लखनवी हैं, सफी लखनवी के छोटे भाई हैं। यह भाषा बहुत मधुर और सुन्दर लिखते हैं। हज़लें अधिकांश में लिखीं और माशूक को खूब लिथाड़ा है। प्रेमी के दुखों और 'माशूक' के जुल्म और उसकी उदासीनता व सुन्दरता के वर्णन में जो अतिशयोक्ति से काम लिया जाता था उसकी खिल्ली उड़ाई है। इनकी सर्वश्रेष्ठ कवितायें 'होम रूल' चुनाव 'गोल मेज़ कान्फ्रेंस' आदि विषयों पर हैं, हज़लों में नहीं—यहां इनके भी दो चार शेर तो सुन ही लीजिये।

१ फुरक़त में हर एक नक़्शा उलटा नज़र आता है।
मजनूं नज़र आती है लैला नज़र आता है॥
२ ख़्याले हिज्र में फ़र्ज़ी मरीज़े ग़म का मर जाना।
ये सब क्या हैं? सलामत झूट के पुल से उतर जाना॥
३ एक ठोकर से उड़ादे जो मज़ारे उश्शाक़।
वो तो माशूक़ न होगा कोई हाथी होगा॥
४ ये हुस्न निराला है कि दो अज़्व नदारद!
माशूक़ वो है जिसके दहन भी हो कमर भी॥

इधर सुनिये। इनके बारे में यह चिरकीन के ढंग का

क़िस्सा मशहूर है, सुना आपने ? लोग कहते हैं कि यह भी फ़िलबदीह शेर ( आशु कविता ) खूब कहते थे। एक दफ़े इनके बड़े भाई सफ़ी साहब एक मिसरे को लिये हुये कल्पना की तरंगों मे उतरा रहे थे कि आपने पूछा "भाइ साहब गुस्ताख़ी मुआफ़। कोई शेर सोच रहे हैं आप ?" उन्होंने कहा "भैया, एक मिसरा बहम पहुचाया है दूसरे की फ़िक्र में हूँ। मौज़ूं नहीं हो रहा है।" आपने कहा "इरशाद हो। मैं भी सुनना चाहता हूँ।" सफ़ी साहब ने मिसरा पढ़ा "वह आके फिर गये मेरे बैते हज़न के पास।" जिसका अर्थ यह था कि "मेरा 'माशूक़' उस जगह तक आया जहाँ मैं मातम कर रहा था रो रहा था ; मगर वापस चला गया ( फिर गया )। मेरी अभिलाशा दिल ही दिल में रह गयी। मिल न सका" ज़रीफ़ साहब ने फ़ौरन गिरह लगाई कि:—

शिद्दत तो देखिये न गये बस पुलिस तलक।
वो आके फिर गये मेरे बैते हज़न के पास॥

सफ़ी साहब मुस्कराकर चुप हो गये, मगर अन्दर अन्दर उनका शायराना दिल अपने मिसरे की दुर्गति पर मातम कर रहा होगा।

ख़ैर. इसे छोड़िये। वह देखिये टेढ़ी टोपी पहिने लाल बिंदी लगाये बड़े अन्दाज़ से पढ़ने आ रहे हैं, जनाबे 'बिस्मिल' इलाहाबादी। इनका नाम है मुंशी सुखदेव प्रसाद सिन्हा। वैसे कविता अच्छी लिखते हैं, मगर हास्य में कभी कभी दिल बह-लाने के लिये कहते हैं। जहाँ अकबर रंग जमा चुके हों वहाँ अब इनका रंग न जमे तो कोई आश्चर्य नहीं। वह बात भी नहीं, न इस विचार से लिखते ही है। ज़बान अपनी है। दोस्त पसंद करते हैं, तो दो चार शेर ऐसे भी ( हास्य रस के ) लिख देते हैं, वरना इलाहाबाद तो अब सूना है कुछ शेर इन के भी सुन

लीजिये ।

१ आज कल बदला हुआ मज़मून है।
हर क़दम पर एक नया क़ानून है॥
२ बात यह मुझ को पसंद आई जनाबे पोप की।
इस जमाने में हुकूमत रह गई है तोप की॥
३ नज़्म में यों ही जो अल्फ़ाज़ तराशी होगी।
बिल यक़ीं आप की भी खाना तलाशी होगी॥
४ यह समझकर सोचकर भरिये असर मज़मून में।
आपने कुछ लिख दिया और आ गये क़ानून में॥
५ कुछ लिख नहीं सकते हैं बेकार निकलते हैं।
किस वास्ते फिर इतने अख़बार निकलते हैं॥

अब उर्दू से आप की तबियत ऊबने लगी। अच्छा तो चलिए, न सुनिये। सच बात तो यह है कि अब लखनऊ या इलाहाबाद में उर्दू का ऐसा कोई बड़ा कवि है भी नहीं जिसको आप सुनें। कुछ लोग 'माचिस' या 'सिगार' के उपनाम पर चल रहे हैं। परन्तु न वह गहराई है न वह विस्तार। अब मज़ाह (हास्य) केवल तमस़ख़ुर रह गया है। इन लोगों से तो छोटे शहर बहराइच के रहने वाले 'शौक़' साहब तगड़े पड़ते हैं। ये कवि लोग केवल सम्मेलनों में भूचाल मचाते हैं। और चाय की प्यालियां फोड़ते या फर्श ख़राब करते हैं। ये समाज, राष्ट्र या साहित्य को कुछ भेंट नहीं करते। न वह विद्वता है न कल्पना की विलक्षणता। रोशनकी ढिबरी है जरादेर मुस्कराकर चुप हो जायगी। ऐसे बहुत से कवियों के नाम भी आप को याद नहीं होंगे। मुझे याद होते भी तो क्या कर लेता। क़ुल्फ़, ताला, चिलम आदि इकट्ठा करने से क्या लाभ?

अच्छा अब कविसम्मेलन आरम्भ होने जारहा है जिस की आप बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे विश्वास है

कि आपको यहाँ भी संतोष न मिलेगा। यहाँ बहुधा न तो गहराई है न विस्तार। न कल्पना में विलक्षणता है न कोई नवीनता। भाषा अपनी चादर में कल्पना के कुसुम और उद्गारों के गजरे लेकर शर्माती हुई आती है। कुछ कवि लोग घनाक्षरी और सवैया सुनायेंगे जो समस्यापूर्ति के लिये लिखे गये होंगे और कुछ लोग नवीन स्वतंत्र विषयों पर पढ़ेंगे। भाषा भी ब्रज भाषा, खड़ी बोली अथवा मिश्रित होगी। हाँ, कुछ नये कवि केवल अवधी में पढ़ेंगे वह अवश्य आपको प्रसन्न कर सकते हैं; क्योंकि अवधी यहाँ की भाषा है जिसको रामायण के सिवा आप कहीं न तो पढ़ते हैं न लिखते। इस लिये यह नवीनताभी है। गोस्वामी तुलसीदासजी के बहुत दिनो बाद अवधी साहित्य कुनमुनाया है। अच्छा सुनिये। देखिये यह कवि जी जो पढ़ने जा रहे हैं श्री प्रताप नारायण जी मिश्र हैं। यह सीधे उन्नाव से चले आरहे हैं। यह बड़े सरस, बड़े फिकेबाज़, मगर तुनुक मिज़ाज हैं। यह मन मौजी जीव हैं। इनकी लावनी, इनका आल्हा, और इनकी कवितायें 'हर गंगा', तृप्यंताम्, 'बुढ़ापा' आदि प्रसिद्ध हैं। गद्य और पद्य दोनों को रगड़ा है, ग्रामीण शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं और भाषा की शुद्धता को रस और प्रवाह में बहा देते हैं, इन के निबंध 'बात' 'वृद्ध', 'भौं' 'धोखा' आदि हास्य और व्यंग के अच्छे नमूने हैं। इनकी कविताएं सुनिये :—

## १ हरगंगा

आठ मास बीते जजमान, अबतो करो दच्छिना दान।
आजु कालिह जो रुपया देव, मानो कोटि यज्ञ करिलेव॥
माँगत हमका लागै लाज, पर रुपया बिन चलै न काज।
जो कहुँ दैहौ बहुत खिझाय, यह कौनिउ भलमंसी आय॥
हंसी खुशी से रुपया देव, दूध पूत सब हमसे लेव

काशी पुन्नि गया माँ पुन्नि, बाबा बैजनाथ माँ पुन्नि ॥

२ अब 'बुढ़ापा' पर कविता सुनिये ।

हाय बुढ़ापा तोरे मारे अबतो हम नकन्याय गयन ।
करत धरत कछु बनतै नाहीं कहाँ जान औ कैस करेन ॥
छिन भरि चटक छिनै माँ मद्धिम जस बुझात खन होय दिया ।
तैसे निख वख देख परत हैं हमरी अकिल के लच्छन ॥
अस कुछ उतरि जाति है जीते बाजी बेरिया बाजी बात ।
कैस्यों सुधि ही नाहीं आवति मूड़ुइ काहे न दे मारेन ॥
कहा चहौं कुछ. निकरत कुछ है जाँभरांडका है यह हाल ।
कोऊ यहिको बात न समझै चाहै बीसन दाँय कहेन ॥
दाढ़ी नाक याक माँ मिलिगै बिन दातन मुंह, अस पोपलान ।
दढ़िही पर बहिबहि आवत है कबौं तमाखू जो फाँकेन ॥
बार पाकिगै रीरौ झुकिगै मूड़ौ सासुर हालन लाग ।
हाँथ पाँव कुछ रहे न आपन केहिके आगे दुख रोवन ॥
यही लकुटिया के बूते अब जस तस डोलित डालित है ।
जेहि का लै के सब कामेन माँ सदा खँखारत फिरत रहेन ॥
जियत रहैं महराज सदा जो हम पेस्यन का पालन हैं ।
नाहीं तो अब को धौं पूंछ केहि के कौने काम के हन ॥

ये दूसरे कवि हैं पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' । ये अलीगढ़ से पधार रहे हैं । कानपुर के कवि सम्मेलनों में इनकी बड़ी धाक जमी रही । समस्यापूर्ति में सदा सब से अच्छे रहे, बहुत से पदक और बहुतसी उपाधियाँ भी पाईं । इनके यहाँ विभिन्नता है, अभ्यास है और ओज है । आर्य समाज से संबंध रखने के कारण समाज सुधार पर भी कवितायें लिखी हैं । यह अच्छे चक्का भी हैं । इन 'शंकर' जी के व्यंग से "त्रिशूल" शर्माता रहा है इनको सुनिये तो

१

भरिबो है समुद्र को शम्बुक में छिति को छिगुनी परधारिबो है।
बाँधिबो है मृणाल सो मत्त करी जुही फूलसों सैल विदारिबो है॥
गनिबो है सितारन को कवि शंकर रेणु सो तेल निकारिबो है।
कविता समुझाइबो मूढ़न को सविता गहि भूमि पै डारिबो है॥

२

बोझ लदे हय हाथिन पै खर खात खड़े नित जात खुजाये।
बंधन में मृगराज पड़े शठ स्यार स्वतंत्र पुकारत पाये॥
मानसरोवर में विहरैं बक, शंकर मार मराल उड़ाये।
मान घटो गुरु लोगन को, जग बंचक पामर पंच कहाये॥

३

ईस गिरिजा को छोड़ ईशु गिरिजा में जाय,
शंकर सलोने मेन मिस्टर कहावेंगे।
बूट, पतलून, कोट, कम्फर्टर, टोपी डाट,
जाकटकी पाकटमें वाच' लटकावेंगे॥
घूमेंगे घमंडी बने रंडी का पकड़ हाथ,
पियेंगे बरंडी मीट होटलमें खावेंगे।
फारसी की छारसी उड़ाय अंगरेजी पढ़,
मानो देव नागरीका नामही मिटावेंगे॥

४

बाहर बाँध गिरीश गये हरिको मुख हेरन नन्द गली को।
ढील फुलाय कुडौल भयो हम रोक सके न विजार बली को॥
लाखन गाय रम्हायं रहीं खुल खाय गयो सब न्यार खली को।
हाँ! अब चूँस न जाय कहू, यह शंकर को बृष भानु लली को॥

अब सुनिये बाल मुकुन्द जी गुप्त को। यह रोहतक के रहने वाले हैं पहिल उर्दू में लिखते थे फिर हिन्दी में उसी

प्रकार आगये जैसे प्रेमचंदजी। यह बड़े तेज आदमी अच्छे ज्ञाता हैं। इनकी भाषा में प्रवाह है। गद्य और सुन्दर, व्यंगमय और हास्य पूर्ण लिखते हैं। इनकी उर्दू का अधिक प्रभाव रहा है। 'शिवशम्भु का चि तमाशा आदि पुस्तकें लिखी हैं। कहते हैं कि :—

( सभ्य बीबी की चिट्ठी )

प्रीतम संगी होन की, तुम्हरे मन है चाह।
हमरो तुमरो होय पै, कैसे मित्र! निबाह॥ १॥
हमरे अंग लगी रहत पोमेटम परफ्यूम।
सौरभ और सुगंध की, पड़ी चहूं दिसि धूम॥ २॥
धूल अंग तुम्हरे रहत वायू ताहि उड़ात।
हमरो अति दुर्गन्ध सो, माथा फाट्यो जात॥ ३॥
हमरे कोमल अंग कंह, ढाके राखत 'गौन'।
तुम्हरे अंग धोती फटी, नाम मात्र की तौन॥ ४॥
मेरे सिरपै कप अरू, मोर पुच्छ लहरात।
तेरे सिर लिपड़ी फटी, सारु मजूर दिखात॥ ५॥
मेरे चरन बिलायती, चिकनो सुन्दर बूट।
नागौरा तव पाय मैं, ठांव ठांव रहे टूट॥ ६॥
मम मुख ढंग विलायती, निकसत धीरे बात।
बबर तुम्हारी जिह्वा है, गोरो सम डकरात॥ ७॥
भूमी अरू आकाश जिमि, हम तुम भेद अथाह।
हमरो तुम्हरो होयगो, कैसे मित्र निबाह?॥ ८॥

पेट महिमा

साधो पेट बड़ा हम जाना।
यह तो पागल किये जमाना॥
माय पिता दादा दादी घरवाली नानी नाना।

सारे बने पेट के खातिर बाकी फकत बहाना ॥
पेट हमारा हुण्डी पुर्जी पेटहि माल खजाना।
जब से जन्मे सिवा पेट के और न कुछ पहचाना ॥
लड्डू पेड़ा पूरी बरफी रोटी साबूदाना।
सब जाता है इसी पेट में हलवा ताल मखाना ॥
बाहर धर्म्म भवन शिव मन्दिर क्या ढूंढे दीवाना।
ढूंढो इसी पेट में प्यारो तब कुछ मिले टिकाना ॥

'उर्दू को उत्तर' सुनिये।

(अवध पंच में 'उर्दू की अपील' निकली थी जिसमें हिन्दी को 'गँवारिन' और सौत बनाया गया था। वह उसी का उत्तर है :—

न बीबी बहुत जी में घबराइये। सम्हलिये जरा होशमें आइये ॥
कहो क्या पड़ी तुमपे उफ्ताद है। सुनाओ मुझे कैसी फ़रियाद है ॥
किसी ने तुम्हारा बिगाड़ा है क्या। सुनूं हाल मैंभी तो उसकाजरा ॥
न उठती में यों मौत का नाम लो। कहां सौत मत सौतका नामलो ॥
बहुत तुम पे हैं मरने वाले यहाँ। तुम्हारी है मरने की बारी कहां ॥
बहुत बहकी बहकी न बातें करो। न साये से तुम आप अपने डरो ॥
जरा मुंह पे पानी के छींटे लगाव।
यह सब-रात भर की ख़ुमारी मिटाव ॥
तुम्हारी ही है हिन्द में सब को चाह।
तुम्हारे ही हाथों है सब का निबाह ॥
तुम्हारा ही सब आज भरते हैं दम।
यह सच है तुम्हारे ही सरकी क़सम ॥
तुम्हारी ही खातिर हैं छत्तीस भोग।
कि लट्टू हैं तुम पे जमाने के लोग ॥
जो हैं चाहते उनपे रीझो रिझाव।
कोई कुछ जो बैठी कहे सो सुनाव

वही पहनो जो कुछ हो तुमको पसन्द।
कसो और भी चुस्त महरम के बंद॥
करो और कलियों का पाजामा चुस्त।
वो धानी दुपट्टा वो नकसक दुरुस्त॥
वो दांतों में मिस्सी घड़ी पर घड़ी।
रहे आंख आइने ही से लड़ी॥
कड़े को कड़े से बजाती फिरो।
वो बांकी अदायें दिखाती फिरो॥
मगर इतना जी में रखो अपने ध्यान।
वो बाजारी पोशाक है मेरी जान॥
जना था तुम्हें माने बाजार में।
पली शाह आलम के दरबार में॥
मिली तुम को बाजारी पोशाक थी।
वो थी दांगले काट की कारसी॥
वो फिर और भी कटती छटती चली।
वजा रोज़ उसकी पलटती चली॥
वही तुम को पोशाक भाती है अब।
नहीं और कोई सोहाती है अब॥
मगर आज सुन एक मतलब की बात
न पिछला वो दिन है नपिछला वो रात
किया है तलब तुमको सरकार ने।
तुम आई हो अंग्रेजी दरबार में॥
सो अब छोड़िये शौक़ बाजार का।
अदब कीजिये कुछ तो दरबार का॥
अदब की जगह है ये दरबार है।
कचहरी है, ये कुछ न बाजार है॥
यहां आई हो आंख नीची करो

मटकने चटकने पे अब मत मरो ॥

यहां पर न झांझों को झनकाइये, ।
दुपट्टे को हरगिज़ न खिसकाइये ॥

न कलियों की यां अब दिखाओ बहार ।
कभी यां पे चलिये न सीना उभार ॥

वो सब काम कोठे पे अपने करो ।
यहां तो अदब ही को सर पर धरो ॥

ये सरकार ने दी है जो नागरी ।
इसे तुम न समझो निरी घांघरी ॥

तुम्हारी यह हरगिज़ नहीं सौत है ।
न हक़ में तुम्हारे कभी मौत है ॥

समझलो अदब की ये पोशाक है ।
हया और इज्ज़त की ये नाक है ॥

अदब और हुर्मत की चादर है यह ।
चढ़ो गोद में मिस्ले मादर है यह ॥

यही आप की मांकी पोशाक थी ।
ये आज़ाद से पूछना तुम कभी ॥

इनायत है तुम पे यह सरकार की ।
तुम्हें दूसरी उसने पोशाक दी ॥

बुराई न इस की करो दूबदू ।
बढ़ायेगी हरदम यही आबरू ॥

पुरानी भी है वह तुम्हारे ही पास ।
उसे भी पहनलो रहो बे हिरास ॥

करो शुक्रिया जी से सरकार का ।
कि उसने सिखाई है तुमको हया ॥

बड़ी तालियां बज रही हैं । अब ये कौन साहब आरहे हैं ? ये हैं प० बद्रीनाथ जी भट्टआगरे वाले लखनऊ विद्यापीठ

मे नियुक्त हैं। इन्हों ने विवाह विज्ञापन और लड़्धों
कई पुस्तकें लिखी हैं। 'स्वामी जी' पर कविता पढ़ रहे

इसे ही कहते हैं वैराग्य ?

तो विरागता के सचमुच ही फूटे समझो भाग।
निर्मल वसन बिगाड़ा उसपर धरा सुनहरा रंग
लज्जित हुआ जाल माया का देख जटा का ढंग।
क्रोध कमंडल मोहमाल; कर लिया द्रोह का दंड।
लोभ लंगोट बांध फैलाते हो प्रचंड पाखंड॥
तन में भस्म रमाई, करके भस्म सभी घरबार।
अब चिमटा ले निकल पड़े हो करने जग उद्धार॥
घर घर टुकड़े मांग रहे हो तप के बलको धन्य।
दर दर नित धक्के खाते हो अहो कष्ट तप जन्य॥
चोरी जुवा लफंगेपन में हो तुम गुरु घंटाल।
गांजा,भाग अफीम,चरस,रस मदिरा के हो काल॥
संसृति में खुद फंसे हुये हो हमें दिखाते मुक्ति।
धन्य धन्य अध्यात्म शक्तिको धन्य मुक्तिकी युक्ति॥
बहुत हो चुकी 'गुरुडम लीला' अब इस से मुंह मोड़।
बाबा जी ! अब बन मनुष्य तू बनमानुस पन छोड़॥

अब यह लीजिये बचनेश जी आरहे हैं। कवि स
मे अच्छा रंग जमाते हैं। वही घनाक्षरी. सवैया का
ढंग है ! धारा प्रवाह पढ़ेंगे। सुनिये:—

१-चाह में खड़े हैं सब बाहर न आते आप
माया मदमाती हाथ सौंपा निज पद है।
बचनेश चाहे कोई हंसे या बहावे अश्रु,
करती स्वच्छन्द चाहती जो नेक बद है।
पूछे जो पता तो बता देती नहीं लेती मन,
दिखलाके हाथ भाव जिनकी न हद है

रीति ये अनोखी यार ! आप ही के घर देखी,
परदे में मरद लुगाई बेपरद है ॥
पंगु भये ऐसे चलि सकैं न सवारी बिनु,
लुंज भये ऐसे पट पहिर पराये हात ।
बधिर हैं ऐसे नहिं काहू की पुकार सुनें,
गूंगे भये ऐसे नहि बोलत समूची बात ॥
अंधे भये ऐसे नहीं देखत उठाय नैन,
बैठे रहैं निपट अपंग ऐसे दिन रात ।
लोग कहैं साहब सुखी हैं बचनेस पर,
मेरीजान साहब को साहिबी ही खाये जात ॥
२ घर की किसानी करि आवे न करैं तो कैसे ?
परत बिरुद्ध है पुजीशन औ ठाट के ।
दौरि दौरि जात दफ़तरन तो खाली जगा,
मिलत न साहब, हटाय देत डाट के ॥
पास किये बी० ए० बाप दादा की खपाथ पूंजी'
बची खुची बचनेश बैठे अब चाट के ।
पढ़ि अंग्रेजी पछितात भये कहूं के न,
धोबी के से कूकूर न घर के न घाट के ॥
लोग बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं ।

आधुनिक काल के पुराने लोग पढ़ चुके अब वे लोग आ रहे हैं जिनके साहित्य-जीवन में अभी तरंग आ रही हैं । जिन के हाथों में अभी लेखनी है । यह सामने आने वाले हैं । श्री कृष्ण देव प्रसाद जी गौड़, एम. ए.-बेढब । ये बनारस डी. ए. वी. कालिज के प्रिंसपल हैं । यह बार बार अकबर की तरफ़ देख रहे हैं ; मगर इसका तजकरा न कीजियेगा बुरा मान जायेंगे । भाषा में अंग्रेजी शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं इससे ग्राम्य दोष नहीं आने पाता । उर्दू वाले भी समझ

सकते हैं। अनोखी नई उपमायें और सूझ बूझ मुनासिब ही कम लिखना भी इनका एक विशेष गुण है, कविता में चमत्‌ और विभिन्नता के बारे में मुझे कुछ कहने का अधिकार न गद्य में इनकी कहानियों का संग्रह बनारसी इक्का प्रसिद्ध है। इनका 'कलाम' सुनिये।

१ बुला लेंगे मुझे भी लाट साहब बाल में अपने।
अगर धोती को मैं पतलून के अन्दर निहां करलूं॥
२ 'बिज़ी हैं' आज कल बीबी को हम टेनिस खिलाने में।
लगा है ध्यान सारा 'लवका सेट' उनको जिताने में॥
३ डिग्रियां कालिज की कुछ निकलीं न मेरे काम की।
काम कुछ आई अगर तो बन्दगी हुक्काम की॥
४ लाट ने हाथ मिलाया है जो मौलाना से।
रश्क पंडित को है अब वह भी मुसलमां होंगे॥
५ बहुतहै इंकम दिलोंकी तुमको कहीं न लगजाय टैक्स तुम
बृटिश गवरमेंट के ज़माने में कोई इससे बरी नहीं
६ फ़ीस लेकर भी बहाने वह सदा करते रहे।
डाक्टर माशूक़ से क्या कम जफ़ा करते रहे॥
७ हैं आप भी अजीब पुराने ख़्याल के।
चौके में खाने बैठे हैं जूता निकाल के॥
८ पकड़कर हाथ झकझोरो किसी से जब मिलो बेढब।
नमस्ते बंदगी की जंगली आदत पुरानी है॥
९ कोई मारा है अदा का कोई चितवन का शिकार।
मेरे सीने पर लगी है चोट मोटर कार की॥
१० उनका लड़का लन्दन के कालिज में एल.एल.बी. हो गय
अब नही परवाह गर बी. ए. में बरसों फ़ेल हे
११ गालियां इंगलिश में देते थे मज़ा आता रहा।
फूल कह कर हस दिये सारा गिला जाता रहा॥

१२ उन्हें स्कूल की धुन है हमें है ध्यान आफ़िस का।
पकाये कौन खाना है बहस यह काम है किस का॥
१३ घर हमारा पर हमारा कुछ नहीं,
हिन्द में हिन्दू बिचारा कुछ नहीं।
दूध घी गायब तो टानिक क्या करे?
जब नहीं ईंटें तो गारा कुछ नहीं॥
रेत तो फाँकी अरब की शेख ने,
और उसे गंगा की धारा कुछ नहीं।
१४ मेरा छाता उठाकर चल दिये वह,
यह सावन की घटा है और मैं हूँ॥
१५ सोशलिस्टों को कि जैसे है नहीं राजा पसंद।
जिस तरह बिस्कुट के आगे है नहीं खाजा पसंद॥
टेस्ट में उनके भी सुनता हूँ हुआ है चेंज यह।
आजकल अल्ला मियां को ह नहीं बाजा पसंद॥
अब एक पराडी सुनिये:—

। गीत ।

बीती बिभावरी जागरी।
छप्पर पर बैठे कांव कांव करते हैं कितने कागरी।
१ तू लंबी ताने सोती है, बिटिया 'मां मां' कह रोती है
रो रो कर गिरा दिये उसने आंसू अब तक दो गागरी
२ बिजली का भोंपू बोल रहा, धोबी गदहे को खोल रहा
इतना दिन चढ़ आया लेकिन तूने न जलाई आग री
३ उठ जल्दी दे जलपान मुझे, दो बीड़े दे दे पान मुझे
तू अब तक सोई है आली, जाना है मुझे प्रयागरी
अब यह दूसरे कवि जो आ रहे हैं ये भी बना
प्रोफेसर हैं। इनका नाम है पं॰कांतानाथ जी पांडे 'चोंच'।
~ " सम्मेलनों के लिये ठीक रहती हैं और कदाचित

ध्येय से लिखते भी हैं। पैरोडी अच्छी लिख सकते हैं। इनक
भाषा जनता की भाषा है, यद्यपि अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयो
करते हैं। शिष्टता की परवाह नहीं करते। यदि कुछ कम
लिखते तो और अच्छा होता। गद्य में कहानियांभी लिखते हैं।
इनकी कविता सुनिये।

## पैरोडी

कैसे होगा ब्याह हमारा, मैं तो तुम से छोटा हूँ सखि।
१ तेरी बिजली ऐसी गति पर, मेरा हृदय हो गया लट्टू।
पर तू प्राइवेट कार सरीखी, मैं सड़ियल भाड़ेका टट्टू॥
तू चांदी की चारु तश्तरी, मैं तांबे का लोटा हूँ सखि। कैसे
२ तू है आम सफेदा प्यारी, मैं कटहल का कोआ।
तू है परवल फांक लोचना, मैं हूँ पालक सोआ।
तू बनारसी साड़ी सुन्दर, मैं तो फटा लंगोटा हूं सखि। कैसे
३ मुझे छोड़ तुम नाच रही हो, घर घर तागड़ धिन्ना।
मैं हूं तुम्हें मनाता जाता, मैं गांधी तुम जिन्ना।
तू चेक हजार रुपये की मैं तो एक पैसा खोटा हूं सखि। कैसे

## दोहा

१ साहब से सब होत है बंदे ते कछु नाहिं।
नाई को बाम्हन करे, नाई बाम्हन माहिं॥
२ यह घर थानेदार का, खाला का घर नाहिं।
नोट निकारे पग धरे, तब पैठे घर माहिं॥
३ गये खरीदन आम वह, ले रुपया बेकाम।
दुविधा में दोऊ गये, पैसा मिला ना आम॥
४ बिना पान सब व्यर्थ है, जानत सकल जहान।
तब लगनर इन्सान हैं जब तक मुँह में पान॥

यह लीजिये श्री शारदा प्रसाद जी एम ए, भुशुण्डि पढ

आरहे हैं। आज कल लखनऊ म्योनिसिपलिटी के ठेले के नीचे इनकी चोटिया दब गई है, कसमसाते हैं तो चोंटिया भी जाती है। ये दोहे कुण्डलिया, गीत, ग़ज़ल, स्वछन्द आदि सभी में कुछ न कुछ लिखते हैं। गद्य में भी कहानियां लिखते हैं। 'उसने कहा था' की परोडी 'चिमिरखी ने कहा था' एक अच्छा और सफल प्रयास है। इनकी प्रतिभा उस कमल के समान है जिस को मुस्कराने के लिये सूर्य का पूर्ण प्रकाश नहीं मिलता। राह राह चलें तो हिन्दी साहित्य जगत बहुत कुछ आशा कर सकता है। भिन्न भिन्न विषयों पर भिन्न भिन्न छन्दों में लिखने का प्रयत्न किया है और भाषा भी उन्हीं के उपयुक्त लिखी है। उपमाओं में नवीनता, है, खोज है; भाषा में ओज है। व्यंग चुटीले होते हैं और ग्राम्यदोष प्रायः नहीं आने पाता। सुनिये, कहते हैं।

## दोहा

१ नवयुग सावन मास में मिस मिस्टर हैं लीन।
फैशन झूले के लिये घर पटरा कर दीन॥
२ फैशन में ऐसी यहां लगी हुई है होड़।
लड़के भी चलने लगे चाल बताशा फोड़॥

## १ गीत। ( परोडी )

साहब मोरे अवगुन चित न धरो।
वैसे ही सर्विस दे डालो इंटरव्यू न करो॥
इक ब्राह्मण इक वैश्य कहावत इक घर शूद्र परो।
दफ़्तर में मिलि एक बरन भे बाबू नाम परो॥
करिया अच्छर भैंस बराबर बी ए० एक करो।
सो अवगुन फैशन नहिं देखत मिस्टर करत खरो॥
जल्दी ही चिप्काय कहूं पै तन की ताप हरो।
नाहीं सरटी फ़िकट हमारो श्रम है जात सरो॥

२—तब रुक न सके मेरे आंसू

जब अपने बच्चों को लेकर भरती करने स्कूल गया।
धक्कों के मारे मेरा दम भैंसे सा इकदम फूल गया ॥
जब हेड मास्टर के सम्मुख करदिया खड़ा अपना लड़का
'है जगह नहीं' कह के बिदके मानों बिगड़ैल बैल भड़का।
जब मेरी इस लाचारी पर भारत का शिक्षा दिवस हंसा
तबरुक-

जब क्षुधा त्रास से पीड़ित हो छोटी सी चुहिया एक मरी।
हिल गया स्वास्थरक्षा बिभाग मंत्री की तबियत हुई हरी॥
चल पड़े मूस घातक जवान 'है प्लेग' शहर में कर हल्ला।
चूहों को मारा व्यर्थ न सोचा इन्हें मिल रहा कम गल्ला॥
जब प्रथम अहिंसा वादी पर योरुप का हिंसा वाद हंसा
तब रुक न सके-

जब देखा अपने कर्णधार चोंचों से चोंचें जोड़ रहे।
जो चले तोड़ने का बन्धन वे बैठे कुर्सी तोड़ रहे ॥
जिन लोगों ने निज देश मुक्त करने की थी मन में ठानी।
वे थोड़े लालच में फंस कर अब छोड़ रहे अपना पानी॥
जब इनके उन आदर्शों पर रशिया का लेनिन वाद हंसा
तब रुक न सके-

जब शब्द सुमन चुन चुन मैंने रच डाली गीतों की माला।
जनता ने समझा नहीं किन्तु अश्लील इन्हें झट कह डाला॥
जब यों मेरे अरमानों की जग ने की हत्या मनमानी॥
जैसे अब हिन्दी के ऊपर चढ़बैठी है हिन्दुस्तानी ॥
जब मेरी कृत कविताओं पर फिल्मी गानों का भाव हंसा
तब रुक न सके मेरे आंसू॥

कविता समाप्त होते ही यह मंच पर कैसा शोर मच रह है। अच्छा, कविलोग श्री श्रीनारायण जी चतुर्वेदी को भेज रहे है। यह लीजिये' कालिज के लड़कों ने भी करतल ध्वनि

कान फोड़ना आरम्भ किया। 'महाश्वेता' एक कविता खड़ छन्द में है उसको ये लोग बहुत पसन्द करते हैं। चतुर्वेदी जी ने कविता से अधिक कवियों की सेवा की है, प्रोत्साहन दिया है, और इस प्रकार साहित्य की भी सेवा की है। जब भाव मे बहने लगते हैं तो भाषा और छन्द दोनों से आगे निकल जाते हैं। ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों में लिखते हैं। गद्य भी लिखते हैं। उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग में इन्सपेक्टर और फिर दिल्ली में रेडियो के डायरेक्टर रह चुके हैं इस कारण मित्रों का घेरा बहुत बड़ा है। इन के पढ़ने का ढंग बहुत रोचक और आकर्षक है। सुनिये:-

### एक विदेशी महिला का 'हुस्न'

ऊंटनी की चाची, सगी मौसी ताड़िका की मानों
काकी हैं कबंध की कि पूतना की पोती हैं।
बल्ली सी हैं टांगे; ललकारैं ताड़ व्रक्षन को,
घुटने लौं गाउन सों सोभा खूब होती हैं॥
द्वै गज की गर्दन-औ नाक पूरी बीता भर
रूज अरु पाउडर की पालिस सों पोती हैं।
ताहू पै 'ईटन क्राप' फैशन के कटे बाल
देखि के चुड़ैलैं करि डाह हाय रोती हैं॥

चूंकि शिथिलता आजाती है इस कारण अब आगे वह पढ़ेंगे नहीं। अब पढेंगे बाबू महादेव प्रसाद जी बी० ए० 'देव' फैजाबादी। ये ब्रज भाषा की अच्छी कविताएं लिखते थे। अब खड़ी बोली में भी लिखते हैं। 'खुशमिजाज' जीव हैं। इनकी लोकोक्तियाँ अच्छी हैं। सुनिये:-

### १ रंगे सियार

जाके रहीं शिमले में
कभी आके निवास किया नई दिल्ली

गोद में पिल्ली लिये फिरतीं
जो उड़ाती थीं देश अनुरागकी खिल्ली ॥
खद्दर धारि पधारीं सभा में
उतारि धरी वह रेशमी झिल्ली ।
देखिये सत्तर चूहे उड़ाकर
आज चलीं करने हज बिल्ली ॥

२ लात के देव

शान्तिमय नम्रता से कहो बात
तो यह थहराय पड़ेंगे प्रपात से ।
ज्यों ज्यों करो बिनती कर जोड़ यों
क्रोधित होंगे उसी अनुपात से ॥
अस्त्र अमोघ न भूलियेगा कभी
काम पड़े जो इन्हीं हजरात से ।
सत्य सनातन का यह नेम है
लात के देव न मानते बात से ॥

३ सुधारक जी

घर की सुधि भूलके लेते न थे
उन्हें देशका गम बहुतेरा रहा ।
बस बाहर जोर सुधार का था
घर में अनाचार का डेरा रहा ॥
पत्नी अपनी घर भूखी पड़ी
विधवाश्रम नित्य बसेरा रहा ।
हर ओर प्रकाश का घेरा रहा
पे चिराग़ के नीचे अंधेरा रहा ॥

४ ढोल के अन्दर पोल

छिछले जल में तरनी तट पै

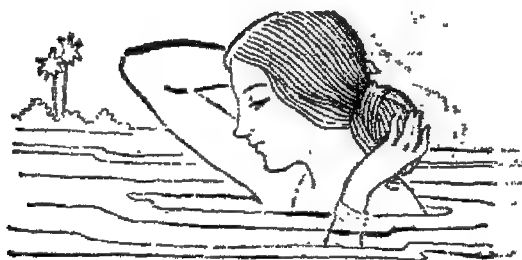
कुछ पाया तो सीप का खोल ही पाया ॥
गहरे जो प्रशांत समुद्र मिले
वहां मोतियों को अनमोल ही पाया ।
सत्‌वादियों की खरी बातें सुनीं ।
बकवादियों को सदा गोल ही पाया ।
बढ़के बड़े बोल जो बोला कहीं ।
वहां ढोल के अन्दर पोल ही पाया ॥

बड़ी मुश्किल तो यह है कि आप का न तो कवि सम्मेलन में जी लगता है न मुशायरे में । यह माना कि जी लगने वाली कोई बात नहीं ; मगर ज़रा देर और ठहर जाते तो हर्ज ही क्या था । अभी वह देखिये श्री गोकुल दास जी 'व्यास' अपनी कंट्रोल की कवितायें और "बीबी-गाथायें" सुनाने के लिये कसमसा रहे हैं । बेधड़क, अद्भुत, रमाकान्त त्रिपाठी, प्रकाश प्रतापगढ़ी इत्यादि अपनी अपनी कवितायें लिये बैठे हैं और आप हैं कि मैदान से भागने के लिये तय्यार । अच्छा, चलिये साहब । आप वहां से चले तो आये ; मगर एक बात कहूँ ? अवधी की कवितायें आपने सुनी ही नहीं । उसमें आप को शायद कुछ आनन्द मिलता । श्री वंशीधर शुक्ल धारा प्रवाह लिखते और पढ़ते हैं । उनमें प्रतिभा है, भाषा पर अधिकार है और काव्य में चमत्कार । प्रकृति वर्णन बहुत सुन्दर करते हैं । झल्ला जाते है तो व्यंग में ग्राम्य दोष को भी समेट लेते हैं । दल संचालन से अवकाश कम मिलता है । फिर भी दूसरा कोई भी कवि इनके जोड़ का यहाँ नहीं है । एक 'देहाती' जी हैं जो विहारी के ज़ोरदार दोहों की भांति हास्य रस में दोहे लिखते हैं । उनके यहां भी कल्पना, अभ्यास और प्रयत्न है । और वह श्री व्रज भूषण जी-'रमई काका' लखनऊ में आल इंडिया रेडियो के पंचायत घर में रहते हैं और इस लिये अच्छे कवि तो हैं ही 'बौछार'

से रस बरसाने का प्रयत्न करते हैं। कुछ भीग जांय तो आश्चर्य नहीं। श्री केशव चन्द्र जी वर्मा इलाहाबाद रेडियो में हैं। इनमें उमंग है, उत्साह है और अभी उम्र है । अच्छा लिखते और पढ़ते हैं। और यही अभ्यास रहा तो अवश्य उन्नति करेंगे और लोग भद्दे उपनाम वाले कवियों को भूल जायेंगे । अच्छा अब बहुत देर हो गई।

'चलो सो रहें आधी रात गई'।

**जय हिन्द ॥**



# परिशिष्ट

यह तो आप जानते ही हैं कि उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ है ( इलाहाबाद नहीं ) ; परन्तु आप सभों ने कदाचित उसे देखा न होगा। लखनऊ के पश्चिमी भाग में चौक है, जहां प्राचीन मुस्लिम सभ्यता के द्योतक इमाम बाड़े हैं। उत्तरी भाग में हजरत गंज है जहां अंग्रेजी सभ्यता की कुछ खुरचन है और मंत्रियों और राज्य के उच्च कर्मचारियों के अड्डे हैं । और बीचो बीच में अमीना बाद है जिसको बाहर वाले अवश्य जानते है ; क्योंकि लखनऊ की 'शुभ' यात्रा अमीना बाद गये बगैर सफल नहीं मानी जाती । अमीना बाद में पार्क है, घंटाघर है, बड़ी बड़ी दूकानें हैं, चौराहे पर भीड़ है, पार्क के एक कोने में हनुमान जी भी हैं, मगर फिर भी मजा अधूरा है जब तक आप इसके दक्खिनी भाग को न देखें । यहां एक छोटा पार्क सा है, कुछ छोटी छोटी दुकानें भी हैं । यहां हर समय हल्ला' मचा रहता है । प्रायः सस्ती, कम दामों वाली, या एक ही भाव वाली—टकासेर भाजी टकासेर खाजा वाली-वस्तुएं मिलती है। कभी कोई सस्ती मगर अच्छी चीज भी मिल जाती है । इस पार्क को-हमलोग-गड़बड़ झाला पार्क कहते हैं। सच पूछिये तो अमीना बाद की शोभा इस पार्क से और बढ़ गई है । आइये अब आप भी इस गड़बड़ झाले की सैर कर लीजिये ।

यहां कायस्थकुल कलाधर कलंक कृष्णकुमार के क्रूर करों से काव्य कमल नाली के किनारे कुम्हलाया, नोंचा खसोटा मिलेगा। जो आदमी ठीक से बात न कर सके, भाषा के शब्दों का शुद्ध उच्चारण तक न कर सके, बिच्छू के काटे का मंत्र न जाने और सांप के बिल में हाथ डाले, और जिसको बातों में न

तो आकर्षण और चमत्कार हो और न गहराई, न विस्तार
माधुर्य, न विशुद्धता, उस को यहां का एक 'सौदाई' समझ
क्षमा कर देने के सिवा और आप कर ही क्या सकते हैं ?
से कम आप को तो अपनी शराफ़त क़ायम रखनी ही है।
चुपके से एक कोने से प्रवेश करके दूसरी ओरसे निकल जा
यहा जेब को संभाले रहने की आवश्यकता रहती है। 'जेब
बहुत रहते हैं। कहीं दिल को ठेस न लगे देखिये :—

## सरस्वती वन्दना

मेरी वीणा वादिनि अम्मां। मेरी . . .
कृपा कोर करदे मुस्कादे, सुप्त स्वप्न संसार जगादे।
हंस हंस मोती चूर उड़ाऊँ, फिर क्यूं फिरूं निकम्माँ।
मेरी—अम्मां।
ढोल पोल के खोल खालदूं, कीचड़ से मोती टटोलदूं।
हंस को तेरे उल्लू सनकें, उनका करूं भड़म्मां।
मेरी—अम्मां।
मेरी वीणा वादिनि अम्मां। मेरी .



## क. रुबाइयाँ

### ॥ वन्दना ॥

जब सामने अकड़ा बैठा हो बुलडाग।
क्या खायं जो मिल भी जाये रोटी साग।
ए चीर चुराने व बढ़ाने वाले !
अब खेल रहे हम हैं लगोंटी में फाग ॥ १ ॥

यां पेट मे चूहे कूदे दोनों जून
और आप वहां छांट रहे है क़ानून।

हम चीर बढ़ाने की सुनें क्या बातें ?
जब घिस के सुथन्ना सा हुआ है पतलून
क्या तुम से कहूं बात है छोटी भगवन ?
किस मुंह से कहूं दीजिये रोटी भगवन ?
क्या जानिये किस युग में किसे देकर वस्त्र ?
खुद बांध के बैठे हो लंगोटी भगवन ॥ ३ ॥
क्यूं शब्द सुनूं सुनता हूं भाषण उसका ?
क्या ध्यान करूं ? सामने जीवन उसका ।
उस तेज को अब देख के ढूंढूं क्या ज्योति
सच पूछिए तो हो गया तन मन उसका ॥

**परिचय और कविताः-**

पृथ्वी पे जहां रूख नहीं रंडा हूं ।
कविता का भी ऊंचा रखता झंडा हूं ।
कवि लोग हैं किस खेत की मूली मुझको,
अभिमान है फैजाबादी बंडा हूं ॥ १ ॥
अपना भी समय नष्ट करूं देर करूं ।
कविता पढ़ूं हिन्दी की यह अंधेर करूं ।
आशा है क्षमा मुझको करेंगे कवि लोग,
हिन्दी के अगर छन्द उलट फेर करूं ॥ २
उर्दू, न खड़ी बोली, न भाषा होगी,
छन्दों के उदधि बीच बताशा होगी ।
टूटी बीना में से बची है लौकी
वह ढोल न मिर्दंग न ताशा होगी ॥ ३ ॥
आता नहीं कुछ भी है तमन्ना लिक्खूं ।
कविता में चलूं एक ही पन्ना लिक्खूं ।
कविगण मेरी त्रुटियों पे क्षमा दृष्टि करें,
धोती की जगह पर जो घुटन्ना लिक्खू

कविता की अगर बीन बजाता हूँ मैं।
पागुर करते लोगों को पाता हूँ मैं।
नाशा, खंजड़ी, झांझ, चिकारा करताल,
बेताल हैं वह तान सुनाता हूँ मैं॥ ५॥

कविता मेरी मोटर नहीं ठेला भी नहीं
मिश्री नहीं तो गुड़ का वह ढेला भी नहीं
जो जौहरी हैं व्यर्थ है कहना उनसे
गिन्नी न समझिये वो अधेला भी नहीं।

कविता मेरी सुन्दर भी भयंकर भी है।
वह कामधेनु भी भैंसा सुर भी है।
सीधी सादी बात भी है टेढ़ी खीर
कर्जन फैशन भी है मुछन्दर भी है॥ ७॥

आता है जो कुछ सामने जाता हूँ समेट
कहता हूँ कोई बात तो देता हूँ लपेट।
भगवान की माया है, वो मेरा क्या दोष
दिल है मेरे सीने में मगर दिल पर पेट

रोटी का सदा ध्यान किया करता हूँ।
और भूख का अपमान किया करता हूँ।
मस्तिष्क में बिद्रोह जो करते हैं बिचार,
उन सबका मैं चालान किया करता हूँ॥ ६॥

वो मेरे खरे नोट को जाली समझे।
सीधी मीठी बात को गाली समझे।
ख़ुद तो डूबे मुझको भी ले डूबे साथ,
पावन सरयू को जो वो नाली समझे॥

कविता है कामधेनु मेरी सांड नहीं।
है प्रेम का सागर लबां कांड नहीं

यदि हो मनोरंजन तो है मेरा सौभाग्य
भंडा अवश्य फोड़ूंगा पर भांड नहीं ॥ ११ ॥

फुटकल

धोखा:- मानव है कि है ढोल बताओ दादा।
पोशाक है या खोल बताओ दादा।
कुर्सी वाले छोड़ गये हैं इसको।
या तुमने लिया मोल बताओ दादा ॥ १ ।

भ्रम हो गया, गलती खाई, मिस समझा।
और अपने को बीडी उन्हें माचिस समझा।
इस पाउडर औ पेंट की तह में क्या है?
भाई मैंने इसको तो घिस घिस समझा ॥ १ ।

अन्दर बाहर लाल ख़ुदा की क़ुदरत।
तरबूज़ में औ बाल ख़ुदा की क़ुदरत।
क्या ठोंक बजा के इसे देखे कोई,
ख़ुद बजता है घड़ियाल ख़ुदा की क़ुदरत

रंगे सियार:-मुंहसे सीताराम ही चिल्लाते हैं।
मद्य मास तो क्या? प्याज से गश खाते हैं
भगवान की माया से किये आंखें बन्द,
वो पूरी छछूंदर को निगल जाते हैं ॥४॥

वह:- उनके नख़रों की कोई नाप भी है?
कामा ही रहेंगे कि फुलस्टाप भी है?
इस बात पे बिगड़े हैं जो मैंने पूछा
अम्मी नानी तो हैं कोई बाप भी है? ॥

इन्सान को धोखे में भी होती है मात।
उलटी समझी जाती है सीधी सी बात।
उनके चरणों से जो लगे हाथ मेरे-
क्या जानिये क्यूं सर पे जमाई एक लात ६ ॥

घर को सत्या नाश समझती हैं वह।
मूछें दाढ़ी घास समझती हैं वह।
नौकर को भी कहती हैं गधा देवी जी,
मुझको चंडी दास समझती हैं वह ॥ ७ ॥

हम नाजो अदा में गये फांसे उसके।
औ' हुस्न के खाते रहे झांसे उसके।
जब कस के दिये गालों पे थप्पड़ हमने,
तो धंस गये हाथों में मुहांसे उसके ॥ ८ ॥

वे अन्त समय तक करते 'वेट' गए,
घर घर से अगर निकले तो भरपेट गए।
उठती हैं उगंलियां तो उन्हें क्या परवाह,
वे तो गये जिस ठौर वहीं 'लेट' गये ॥ ९ ॥

कुर्बान गये अक़्ल है मोटी कितनी।
खाते हैं मगर गिनते हैं रोटी कितनी।
कल चौक में दर्जी से उन्होंने पूछा,
पतलून में होती हैं लंगोटी कितनी ॥ १० ॥

कहिये तो नाक भौं को वो लेते हैं सिकोड़,
जैसे ऊसर खेत को कोई दे गोड़।
इस देश के और प्रेम के सिक्के हैं एक,
लातें घूंसे चलते हैं या तावड़ तोड़ ॥ ११

जाड़े गर्मी औ बीतीं बरसातें। सुनतेही नहीं आप हम
गम हमने बहुत खाया है शायद अब आप,
मानेंगे कि जब खायंगे घूंसे लातें ॥ १२ ॥

कोई न फुल-स्टाप है न कामा है
बस उनकी अदाओं ही का हंगामा है।
हों जिसके हर इक 'पेंच' में सब दिल हारे
बतलाइये दिलदार है या गामा है

जिनसे मिलने के लिये दौड़ें भटकें।
दर पर उनके मोटे से पर्दे लटकें।
बाहर से पुकारें तो है दिल में यह खौफ,
हमको भी न मूसा की तरह धर पटकें॥ १४॥
घरको कारावास समझता हूँ मैं भूगोलको इतिहास समझकर
बीबी बी. ए. पास हों बाबू हों फेल,
(भई) उनको कन्या रास समझता हूँ मैं॥ १५
घर की मुर्गी दाल समझता हूँ मैं।
औ' बीबी को जंजाल समझता हूँ मैं।
कहते हैं कि बिन भय के नहीं होती प्रीत,
हर मेम को कोतवाल समझता हूँ मैं॥ १७॥
मेरी खोपड़ी :—महफ़िल में हुई उनसे शकर रंजी मुफ्त
नीली पीली आंख हुई कंजी मुफ्त
ए प्रेम! तुझे क्या कहूँ? तेरे कारण
मेरी खोपड़ी आज हुई गंजी मुफ्त।
उनका प्रेमी :—हिन्दुस्तानी बोर्ड का टीचर होगा।
या पावों में फिर उसके सनीचर होगा
नंगे पैरों दौड़ के जाये घर पर,
आशिक़ उनका कोई फटीचर होगा॥१८॥
कंट्रोल:—धृतराष्ट्र ने सजय से कहा बैठो आओ,
युरुप के महायुद्ध का भी हाल बताओ।
बोला कि अभी जाना है राशन की दूकान
कहती हैं कि 'पहले गेहू'-धोती लाओ॥१६॥
सीख : —साधू बाबा ने ये कहा चिल्ला कर।
तू सोने व चाँदी पे न मन मैला कर।
आज़ाद अगर रहने की इच्छा है तुझे,
लोहा लेने की हिम्मत पैदा कर॥२०॥

साहब :—हर चीज पे कंट्रोल हो या हो राशन।
कवि 'जापानी मेक' हुआ अमरीकन।
अमरीकन जापानी न होगा हरगिज,
उसको तो अभी करने हैं कितने खंडन॥

:—बुढ़िया मुझको फाँस ले मुझको धिक्कार।
पर आप भी फन्दे में फँसे थे सरकार।
कुबड़ी गँवारिनों ने नचाया घर घर,
क्या करते जो मिलती कोई सिनेमास्टार ॥२२

—बाहर काला मैं हूँ तुम अन्दर काली,
मैं लोहे का ताला तुम सुवरण ताली।
मैं नाक रगड़ता हूँ, न कटने पाये,
दीवाला हूँ मैं और हो तुम दीवाली ॥२३॥

:—मुह बन्द करो खूब हुई चोट झपट।
मीटिंग में धरे जाओगे होगी जो रपट।
ए हिन्दू व मुस्लिम येकरो मिलकर पास,
घरवाली तो घर में न कर डांट डपट ।।२४॥

—बीबी अपने घर पे है औ 'साला भी'।
मकड़ी भी है अर्थात वहीं जाला भी।
महंगी से हुईं प्रेम की दूकानें बन्द,
दीवाला है और सूख गये लाला भी ॥२५॥

साहेब :—चेहरे लालों लालो मुच्छुन्दर होगें।
पूर्वज भी न फिर आपके बन्दर होगें
डार्विन साहब कहिये तो मैं बतलाऊँ
शायद वो टिमाटर व चुकन्दर होगें

पर बुरा न मानो :—हर ढंग के जब लोग इकट्ठे
बरगद-भाँखर, साखू के लट्ठे

तुमको जो चिड़ीमार कहें यह
बेचारे कोई उल्लू के पट्ठे हैं

मैं :—कलकत्ते को मुल्तान समझता हूँ मैं।
औ, झेंपको अभिमान समझता हूँ मैं।
घर में बी. ए. पास हुई. दूर हुईं,
अब शक्ति को भगवान समझता हूँ मैं ॥२८॥

पेट :—ऐ पेट ! तेरी खाल में भर दूगाँ रेत।
इन्सान के जामें में तू निकला है प्रेत।
क्या खा के लड़ाई पे उतारू है मूढ़,
अब तक केवल नाज से पाटे हैं खेत ॥२६॥

जूतानाथ :—चलते हो जहाँ लेते हैं सब हाथों हाथ।
दानव मानव तुमको नवाते हैं माथ।
मन्दिर मस्जिद में भी तुम्हारा है ध्यान,
है तुमको सासटाँग ए श्री जूता नाथ ॥३०

हल्का सरका 'बार' भी कर देते हो।
औंधी नौका बीच भँवर खेते हो।
इससे बढ़ कर क्या हो तुम्हारी तारीफ़,
तुम रूठने वालों की खबर लेते हो ॥३१॥

पैरों फिर के कष्ट को टाला तुमने।
और चुटकियों में काम निकाला तुमने।
नेकों के लिये नाम तुम्हारा काफ़ी,
बन्दे ! पूरा बार संभाला तुमने ॥३२॥

हजामत :—नन्हा बच्चा दूर से देखे चिल्लाय।
जिससे बोलूं प्रेम से, वह भी घर खाय।
प्रतिदिन प्रातः काल जो दाढ़ी न घुटे,
तो बासी कचौड़ी में फफूंदी लग जाय ॥३

-अब इश्क की सरकार हटी जाती है।
बरछी, छुरी तलवार हटी जाती है।
आज़ाद हैं गल्ला न जमींदारी है,
माशूक की बेगार हटी जाती है ॥२४॥

-आखें हैं कि बीना की है कड़वी झनकार।
या ऊषा की मुस्कान ने खाया है अचार।
मेरे दिल का उनसे है सीधा सा हिसाब,
कम्बल किसी आग़ा से लिया जैसे उधार ॥२५॥

मैं :—आखें मसीं जवानी ने अँगड़ाई ली।
सौन्दर्य की सरकार से मंहगाई ली।
यह हाल किसी का है; मगर बन्दे ने,
पैसे लिए, बाज़ार से बालाई ली ॥२६॥
मेरे घर में आके मचाओ ऊधम।
मुझको तो सभी चाहिये अलम गल्लम।
यौवन भी है इक भार, मगर ए मैडम
क्या मैं हिरोशिमा हूँ जो तुम ऐटम बम।

द :—छाया है घटा टोप अंधेरा चहुँओर।
सुनसान है, नीरव है न चातक, न चको
ऐसे में छछूंदर का है यह तांडव नृत्य,
या दिल में किसी याद की उट्ठी है हिलोर

—ठंडे रहो मिज़ाज को मत गर्म करो।
समझो मानव धर्म को शुभ कर्म करो।
अधिकार पे सरकार से लड़ने वालो;
कर्तव्य का दर्पण देखो शर्म करो ॥२९॥

राज्य का इतिहास :—चालीसे जो घरमें कुत्ता घुस
रोटी छीनी, शोर हुआ, :

चुम्कार के दुत्कार के बाहर भेजा।
छुट्टी तो मिली; पर लेकिन गंधाया।

## ३० गीत

( पैरोडी )

गीत:— ( कैसे भेंट तुम्हारी ले लूं ? बच्चन )

कैसे भैंस तुम्हारी ले लूं ?

भैंस तुम्हारी बड़ी पुरानी, त्रेतायुग की बची निशानी।
दूध नहीं देती है बिल्कुल, खाती है सानी पर सानी।
ऐसे सत्या ग्रही को लेकर, अपनी जान पे खेलूं। कैसे ?
इसकी जन्म कुण्डली लाओ, जीवन का बीमा करवाओ।
स्थान छोड़ कर चल सकती है, इसका तो विश्वास दिलाओ
पग पग पर जब यह बैठेगी, तब क्या इसको ठेलूं। कैसे ?
दूध की इससे आस नहीं है, मांझे में भी घास नहीं है।
तुमसे मैं क्या झूठ उड़ाऊँ पैसा मेरे पास नहीं है।
आशा से उधार भी लेलूं, तो नित झंझट झेलूँ। कैसे ?

गीत:- रसना रोटी रोटी बोल।

ब्राह्मण रोटी ही करता है, शूद्र भी रोटी से डरता है।
वैश्य तो रोटी पर मरता है, देता कम कम तोल ॥रसना . . .
भाई हो या चचा भतीजा, भैया कोई नहीं पसीजा।
भूखे पेट का यही नतीजा, हो जाते हैं गोल ॥रसना . . .
चीन रूस जापान जर्ममी, देश देश में यही सन सनी।
भक्ति कर्म औ' ज्ञान वर्धिनी, रोटी है अनमोल ॥रसना . . .
रोटी के कारण झगड़े हैं, नाक, कभी माथा रगड़े हैं।
पाते हैं वह जो तगड़े हैं, देख ले आँखें खोल ॥रसना . . .
दुनिया में है कौन किसी का ? रोटी के बिन जग है फीका।
रोटी एक सहारा जी का, बाकी है सब भोल ॥रसना रोटी

## नौटंकी (व्यंग)

करो भाई संतो, नौटंकी गुण गान ।
जीवन भर यह कथा श्रवण कर, प्राप्त करो निर्वाण ॥
भेद भाव इसमें नहीं कोई, यह है यज्ञ पुनीत ।
घर बाहर घंटा घर नीचे, गा सकते हो गीत
यह सबको सम फलदायक है, पंडित हो कि पठान ॥ करो
पूजा हो कि नमाज़, सामने इसके हैं सब फीके,
इसको तो सब सुन सकते हैं, ताड़ी गाँजा पी के,
भक्तों ने ह.फ्तों देखी है, बिना शौच व स्नान ॥ करो भाई
रहस, सपेरा नाटकादि, थे पहले यज्ञ निराले,
इसके आगे सिनेमा के भी, पड़े जान के लाले,
यह विन दाम गुलाम बनाती, सबको एक समान ॥करो भाई
नौटंकी दुनियाँ में आई, भाग्य हमारे जागे,
राधेश्याम की रामायण से भी, यह निकली आगे,
हिन्दू जनता आँख बन्द कर देखे, है कल्याण ॥करो भाई
इससे विमुख किसी पूजा में, जो हैं चित्त लगाते,
पांच मिनट में मुँह बाए, बैठे बैठे सो जाते,
यहाँ रात भर जागें प्रेमी, नींद का नहीं निशान ॥ करो भाई
भक्तों का यदि समारोह हो, हों पंच मेल इकट्ठे,
नर नारी, लड़की लड़के, बूढ़े जवान औ' पट्ठे,
चक्रव्यूह वेधो घुस जाओ, हो चाहे चालान ॥करो भाई ॥
अगर नगाड़े की ध्वनि तुमको, बीस कोस से आए,
तो जाके सत्संग करो, यह जन्म सफल हो जाए,
श्रुतियों ने गाया कलियुग में, 'यहि सम यज्ञ न आन' ॥करो

काल की चाल निराली ! मैडम ! काल की चाल निराली
सिनेमा के आकाश की जो थीं, एक दिन अद्भुत तारा,
कालेज के लड़कों के जीवन का इक मात्र सहारा,

म्युनिसिपल्टिी भी न धुलायेगी, अब उनसे नाली ।।मैडम क
जो मुखड़े थे चाँद और सूरज को शर्म दिलाते,
शहरों को निज सुन्दरता से क़ब्रिस्तान बनाते
काल चक्र से घिस कर वे हैं जैसे फूटी थाली ।।मैडम काल
जाड़ों में शिमला जाते थे, जो गबरू मुस्तंडे,
सुबह हुई मुर्गा चिल्लाया, यह खाते थे अंडे,
दिन ढलते उनकी खटिया भी, पहुँची आन भुआली ।। मैड
झगड़ू पासी का सुपुत्र, अब है अफ़सर सरकारी,
पंडित जी भी चपरासी हैं लाते हैं तरकारी,
चुप रहते, गद् गद् होते हैं, खा कर उसकी गाली ।।मैडम क
बाबू जी निज मातहतों का, लेते थे न सलाम,
सरकारी चपरासी करते थे, सब घर का काम,
पेन्शन हुई चौक में गाते फिरते हैं क़व्वाली ।।मैडम काल
मत फूलो सौन्दर्य और सौरभ पर प्यारे फूल,
सदा व्योम के नीचे यों तुम नहीं सकोगे झूल,
जिस पर अकड़े बैठे हो, सूखेगी वह भी डाली ।।मैडम का

## वीर रस (व्यंग)

भारत के वीर ! भारत के वीर !!

मुर्गा बोला अब गई रात । जागो, उठो, आया प्रभात ।।
मुँह धो लेना, लो पियो चाय; तैयार है रोटी दाल भात ।।
और हज़म कर सको खाओ खीर ।। भारत के वीर
कुछ फ़ैशन का भी ध्यान करो । श्री कर्ज़न का आह्वान करो
मुँह देख रही है बैस तीन, पानी है गर्म स्नान करो ।।
यदि स्वस्थ आपका हो शरीर ।। भारत के वीर
ए वीर भयंकर धुआंधार । करता हूँ तुमको नमस्कार ।।
यदि बीड़ी सिगरेट हो न ठीक । तो सुलगाओ ले कर सिगार
क्या भारत को समझे फ़क़ीर ।। भारत के वीर

बी. ए. एम. ए. सब पास करो। सम्पति माया है नाश करो॥
नित विज्ञापन का करो पाठ। जी को मत कभी उदास करो॥
वेकार रहो गाओ कबीर॥ भारत के वीर
निज पुरखों पर अभिमान करो। बीरता का मत अपमान करो
हैं शेर और भालू पूजनीय, घर के बकरे बलि दान करो,
चिल्लाएँ तो दो टांग चीर॥ भारत के वीर
अब तुम पर निर्भर है समाज, रख लो भारत माता की लाज,
ठन गन दिखलाओ मस्त रहो, खुद दौड़ के आयेगा स्वराज,
तुमसे मिलने को है अधीर॥भारत के वीर! भारत के वीर!॥

पैरोडी:—

(ए चाँद छिप न जाना)

ए रेल छुट न जाना, जब तक मैं आ न जाऊँ।
जाऊँगा बेटिकट ही, मैं चाहे मार खाऊँ॥
भूले से एक टी. टी. ई. इस तरफ है आया,
सिगरेट पिला पिला कर, कुछ मित्र है बनाया,
वह शान से चले औ' मैं पीछे दुम हिलाऊँ॥१॥
मैं तुमसे क्या छिपाऊँ, जेबें हैं मेरी खाली,
कुछ सैर औ' सपाटे की, राह यह निकाली,
तुम आज 'मिस' हो फिर यह मिस्टर कहाँ से लाऊँ॥२ जब॥
दुनियाँ के सारे धन्धे, चलते हैं यूँ ही बन्दे,
या दूसरों को फांसो, या माँग लाओ चन्दे,
जब हथ कंडे हैं आते, क्यों घर में गिड़गिड़ाऊँ॥
जब तक मैं आ न जाऊँ।
जाऊँगा बे टिकट ही, मैं चाहे मार खाऊँ॥

गीत :— याद उनकी आ रही है।
मैंने चौराहे से इक नाई महाशय को बुलाया।
और दो पैसे में कुल मैदान को चटियल कराया

वह तो गद् गद् हो, गए, दाढ़ी अभी कहा रही है ॥याद उनकी
उनकी मोटर देखते ही, साइकिल मैंने संभाली।
औ' चला इस वेग से क्रमशः पहूँचा कोतवाली।
बाल फिर से उग रहे हैं, खोपड़ी खुजला रही है ॥याद उनकी
वह दशहरे में गईं घर रह गया हूँ मैं अकेला।
अब रसोईं और बर्तन माँजने का है झमेला।
स्वान बाहर रो रहा है, घर में मैंना गा रही है ॥याद उनकी
मेरा स्टेशन पे उनसे, प्रेम काफी बढ़ गया था।
भीड़ में सामान अपना, साथ उनके चढ़ गया था।
मैं कहीं भी चढ़ न पाया, और गाड़ी जा रही है ॥ याद उनकी

गीत :— क्यों आज हृदय मेरा चंचल ?

सत्तू खा कर आया हूँ टहल, माँगे के पहिने था चप्पल।
मुँह ढाँपे ओढ़े हूँ कम्मल।
फिर भी क्यों नींद नहीं आती, क्या जाने क्या है उथल पुथल।
वह प्रेम के मारे झपट पड़ीं। आँगन में आ के रपट पड़ीं।
औ' वहीं से मुझको डपट पड़ीं।
चश्मा लगा के मैंने देखा, तो मुँह क्या था पक्का कटहल ॥ क्यों॥
अब मुनुवाँ एक दम पड़ा चौंकि, वह समझा कोई रहा भौंकि।
लेकिन वह उठ बैठा था क्यों कि,
खटिया पर देखा इधर उधर, औ चिल्लाया खटमल खटमल।
क्यों आज हृदय मेरा चंचल ?

( स्वछंद पर व्यंग )

रेल

१ रेल गाड़ी ! रेल गाड़ी !! है सुन्दर वन की खाड़ी
में
यह कांटों की झाड़ी। रेल गाड़ी।
पृथ्वी के सीने के ऊपर उड़ती है यह जैसे मच्छर।

भक भक करती चिल्लाती। रोती औ धुआँ उड़ाती।
जाती है,
यह मनमोदक सी अवगुंठित।
बिठलाए सब मेहतर चमार, यह शक्तिमान।
ज्यों कवियों के उद्गार महान्॥
नहीं करती हैं कुछ संकोच। कि देखले बाट, है ऐसी पोच
जरा होलें बेटिकट सवार,
हा अंधकार! ए धुंआधार!!
२ फेनिल में बुद बुद के समान। है पृथ्वी पर यह वायुयान
पाषाण हृदय, अलबत्ता, कलकत्ता,
के लिये धरातल उथल पुथल करती है।
तन मन सब मेरा कुचल। गई स्टेशन से वह निकल
इधर मैं प्लेट फार्म पर मुँह बाए घबराये था खड़ा।
रेल बाबू ने मांगा टिकट समस्या विकट, पड़ी
मजबूर हुआ, क्या कहता था वह सुनत
( भई )
था गाड़ी छूट उसने तो देखा गई; पर झूठ।
दिया इलजाम बूट था पहने भारी वह मैं फौरन देकर दाम
शाम
को घर आया निश्चिन्त मगर फिर पकड़े कान
'न करना देर अगर हो जाना वरन् होगा पछताना॥'

गीत

बयालोजी से भी निर्भीक, रहा मेढक नाली में बोला
१ सघन घन घेरे हैं आकाश। खटाई में पड़ गया प्रकाश॥
हवा से चलते हैं ये चाल। अभी वह कर देगी मुंह लाल।
बहेगा तब नैनों से नीर, उधर बजवएगी वह ढोल॥ रहा मैं
२ चढा जब जूलाई का मास कृषक के मन उपजा उल्लास

खुले विद्यार्थियों के नेत्र। जो करते थे बागों में चैन ॥
चले स्कूलों को 'निष्काम' किताबें, कापी लेकर मोल॥ रहा
३ प्रकृति ने अपना किया शृंगार। गई म्यूनिस्पालिटी से हार।
पहुंच जाओ सड़कों के बीच। तो फिर चिमटेगी ऐसी कीच।
मचे जूते की खैंचा तान, हाथ में झोल खीच में सोल। रहा
४ हुई वर्षा जो दस बजे प्रात। तो स्कूलों की छोड़ो बात॥
कचहरी के बाबू गंभीर सड़क पर पहुँचे मानो तीर॥
तैरने का उनको अभ्यास कीच में करने लगे किलोल। रहा .
५ वहां मेंढक ने अपना खून। खिलाए नव विज्ञान प्रसून॥
सुगंधित है जिनसे संसार। मनुज के भागे विषय विकार॥
अरे तू किस के आया काम अधमनर अब तो आंखें खोल॥
रहा मेंढक नाली में बोल।

( मैं तुम्हारी मूक करुणा का सहारा चाहता हूं
की ज़मीन में। 'रामकुमार' )

गीत:-मैं तुम्हारी मूक वाणी का इशारा चाहता हूं।
१ खोपड़ी उनकी घुटी है, तेल की मालिश हुई है।
तांबे का लोटा मुरादाबाद की पालिश हुई है,।
मैं तो इस पर एक कस कर टीप मारा चाहता हूं॥ १ ॥मैंतुम्हारी
२ सामने बैठी हुई है रूप यौवन की दिवानी।
घूरती है वह मुझे और मर रही है मेरी नानी।
सिटपिटाया हूं पुलिस को अब पुकारा चाहता हूं॥२॥मैंतुम्हारी
३ चित्रपट पर सामने लैला व मजनूं बड़ बड़ाते।
और अंधेरे में बग़ल में कौन हैं ये खड़बड़ाते।
अब रहा जाता नहीं, मैं भी खंखारा चाहता हूं ॥ ३ ॥ मैंतु
४ भीड़ थी दूकान पर घुस पैठ के जब सर निकाला।
पायजामे पर बन आई; हाथ से उसको संभाला'
अब तो मैं धोती नहीं, केवल किनारा चाहता हूं ४॥

५ प्रेम से पूड़ी कचौड़ी, पेटभरके खा चुका हूं ।
पान की इच्छा नहीं है दक्षिणा भी पा चुका हूं।
अब तो हे यजमान, उठने को सहारा चाहता हूँ ॥ ५ ॥
६ मूसला धार आपकी करुणा की वर्षा हो रही है।
और मानवता धड़ाधड़ फूट घरघर बो रही है।
मैं भी शक्करक़न्द बोने को फुहारा चाहता हूँ ॥ ६ ॥
मैं तुम्हारी मूक वाणी का इशारा चाहता हूँ ॥

डियर मैं सिनेमा जाती हूं । (व्यंग)

आप भी जायें खाना खायें । बच्चे जागें तो बहलायें।
घर देखे भाले रहियेगा, ऐसा न हो आप सो जायें ।
अभी मैं वापस आती हूँ ॥ १ ॥ डियर मैं०
बुधुवा ने है भँग चढ़ाई । शोफर को आज ही मौत आई ।
खैर अकेली हो जाऊंगी । कार तो बाहर है मँगवाई ।
चलूँ स्टार्ट कराती हूँ ॥ २ ॥ डियर मैं०
आपकी बातें हैं अलबेली । कौन वहां है मेरा मेली ?
हां जिनसे वादा कर आई, चिर परिचित हैं सखी सहेली
कभी मैं झूठ बताती हूँ ॥ ३ ॥ डियर मैं
डियर हुआ क्या चश्मा मेरा । हाल में रहता बड़ा अंधेरा
बिन खाए न आप मानेंगे, मैंने समझाया बहुतेरा ।
इसी से मैं झल्लाती हूं ॥ ४ ॥ डियर मैं
'दिस पिक्चर इज वेरी फाइन' । क्लोसिंग समझिये इसे डिअ
आप मैटनी में कल जायें, अच्छा चलूँ 'डारलिंग माइन'
मै नाहक़ देर लगाती हूँ ॥ ५ ॥
डियर ! मैं सिनेमा जाती हूं ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती (व्यं

सुनो ऋषि दयानन्द महराज ।
तुमसे मैं ऐसा बिगड़ा हूं गर्मा गया मिजाज । सुनो०

तुमने हम पोपों की तोपों के मुंह बन्द कराये।
ढीले हुए सभी फन्दे, जितने भी जाल बिछाये।
सर्वनाश हो गया, वेद पढ़ना सबको सिखलाया,
धर्म कर्म मिट गया, हरिजनों ने जब तिलक लगाय
अब प्रणाम करने में भी, उनको आती है लाज ॥
जो पद दलित हमारे पैरों को धो कर पी जाते।
जूठे टुकड़े पा जाते, तो फूले नहीं समाते।
अब सब वह मेहतर चमार अपने भाई बन बैठे।
पुण्य दान, पूजा, भोजन पर भी हैं दांत लगाते।
पित्र पक्ष में यदपि अभी तक है कुछ अपना राज
स्त्री है मनुष्य की सम्पति परम्परा अनुसार।
हम दो चार ब्याह कर लें तो क्या है अत्या चार।
बूढ़े पति परमेश्वर जब थे बढ़ कर टिकट कटाते
निर्धन पत्नी या व्रत रखती या व्यार व्यवहार।
आज बाल विधवाओं का भी करता ब्याह समाज।
धर्म च्युति हो, मुसलमान या इसाई हो जाता।
ऐसे पतित जीव को हिन्दू छूता अगर नहाता।
महा घोर कलयुग है जब म्लेच्छों को शुद्ध बनाया,
है सन्तोष यही उनके संग अभी न कोई खाता।
धर्म नष्ट हो गया हाय क्या इसका करूं इलाज।
करे प्रसंशा वही आप की अपना पेट न जाने।
देश जाति, दुखियों की सेवा के गाता हो गाने।
बिना परिश्रम जिन पेटों में लड्डू भरती होते।
उन्हें देखकर खाली कोई आता नहीं बुलाने।
अब इसकी आशा भी क्या है जब चढ़ गया अना

सुनो ऋषि दया नन्द म

व्यंग) जीवन है हज्जाम बन्दे। ले पैसे से काम बन

जीवन को नइया मत समझो। घर में है गइया मत समझो।
नैया पानी में बहती है। गइया भी चरती रहती है।
मगर यहां दाना पानी का, झगड़ा आठो याम। वन्दे०
सात बजे दफ्तर से लौटा। जैसे भीगा हुआ बिलौटा।
पैर जो घरके अन्दर रक्खा। ओखली में मानो सर रक्खा
देखा डिक्टेटर 'फरन्ट है' मुंह में नहीं लगाम॥ वन्दे
लम्बी कुछ तनख्वाह नहीं है। औ' खर्च की थाह नहीं है
डेढ़ सेर का गेहूँ लाऊँ। भूखा रह कर उन्हें खिलाऊं।
फिर भी प्रतिक्षण अल्टी मेटम, मचता है कोहराम॥ वन्दे
एक मित्र मेरे, दस उनके। हसूं कहो रोऊं, सर धुन के।
मित्र सभी के बच्चे मेरे। वह हरदम रहते हैं घेरे।
जिनकी मां को इक सिनिमा ही, है चारों धाम॥ वन्दे

## अगर हम धोबी ही होते।

१ तो फिर एम० ए० पास कर भूखे पेट न यूं सोते॥ अगर
प्रात समय पैत्रिक बाहन पर चढ़ते करके ठाठ।
लाद फांद कर बिरहा गाते जाते सीधे घाट।
बाहन को स्वराज्य दे कर पहिले रंगरलियां करते,
फिर मन मुदित वस्त्र क्या, हम दुनिया के पाप, धोते। अ
२–बारह एक बजे तक जब वह घर से भोजन लातीं।
मीठी चितवन से हंस हंस कर, कर अनुरोध खिलातीं।
सिनिमा के रोमांस वहां कल्पित, प्रत्यक्ष दिखलाते,
चण्डी दास देख पाते तो फूट फूट रोते। अगर०
३– बड़े लाट यदि सुन पाते हम हैं एम० ए० पास।
मोस्ट ओबीडियन्ट की चिठ्ठी आती अपने पास।
हम ऐश्वर्य और आदर के पात्र बनाए जाते,
खद्दर धारी नेताओं को भी देते गोते। अगर०
४ आज उन्हों ने खेद खाए कर हमें कचहरी भेजा।

'नो वकैंसी' सुनते सुनते गर्म हो गया भेजा।
यदि हम भूखे रहें, काम दुनियां के बन्द न होंगे,
क्या खाएंगे मगर वीर घरके बेटे पोते ।

अगर हम धोबी ही

## मैं और तुम (पैरोडी)

तुम नाज़ुक मैं मुस्तण्डा। रस भरी हो तुम मै बग
१–तुम छाया वादी की वीना, मैं टूटा हुआ चिकारा।
तुम होम्योपैथिक की गोली, मैं कड़ुआ अमृत धारा।
मैं कन कौआ तुम आंधी, तुम ब्रिटिश नीति मैं गांधी।
२-मैं आर्य समाजी उपदेशक, तुम जगत तारिणी गीता।
तुम छुई मुई हो हरी भरी, मैं सूखा हुआ पपीता।
म कम्मल हूं तुम साड़ी, मैं कूड़ा हूं तुम गाड़ी॥
३-मैं तो हूं इक हब्शी गुलाम औ' तुम हो रजिया बेगम।
तुम लंदन की ललना ललाम, मैं हिन्दुस्तानी बौड़म।
तुम फेल्ट कैप मैं भौआ। तुम बुल बुल हो मैं कौआ॥
४-तुम शेक्स पियर की काव्यकला, और मैं हूं लाल बुभक्क
तुम शैम्पेन की प्याली हो मैं ठर्रा सेवी फक्कड़।
डुग डुगी हो तुम मैं बन्दर, तुम चौक हो मैं घंटा घर।
५- तुम ऊषा की सुन्दर लाली, मैं सावन का अंधियारा।
तुम मिस की चंचल घोड़ी हो औ' मैं धोबी का सहारा।
तुम प्रेममूर्ति मैं हौआ। तुम पंसेरी मैं पौआ॥
६–तुम हो सिनिमा स्टार और मैं सिनिमा 'फैन' फटीचर
तुम पावन एकादशी हो, मैं हूं अष्टम चरण शनीचर'।
तुम कामधेनु मैं कंडा। तुम पुलिस और मै पंडा॥

## (पैरोडी) लूट रहा है कोई शायद

रूठ रहा है कोई शायद, रूठ रहा है कोई

१-गैर से मीठी मीठी बातें। हंसी हंसी में चोहलें घातें।
मैंने क्या जाने क्या समझा, थे उनके बहनोई शायद।
रूठ रहा है कोई शायद।

२-उनका गर्म मिजाज बहुत है। लकड़ी गीला आज बहुत है।
नौकर हो तो डांट बताऊँ, करनी पड़ी रसोई शायद। रूठ रहा
३-ए नीले आकाश के तारो। मुंह ढाँपो मत शान बघारो।
चेचक वाले साँवलिया की, याद मे शबनम रोई शायद। रूठ
४-हिन्दू हिन्दुस्तान में रोए। मुस्लिम पाकिस्तान में रोए।
अभी मूंडने को नाई ने, दाढ़ी सिर्फ भिगोई शायद।
रूठ रहा है कोई शायद।

## (वह भोला बालम क्या जाने के छन्द में)

वह भोला बौड़म क्या जाने !

१—क्यों गीदड़ रात को रोते हैं। क्यों गदहे लादी ढोते हैं।
क्यों अनायास यह सचरित्र,बैसाख में लगते चिल्लाने। वह
२—'लकड़ी का आंटा खाता हूं। टूटी खट्टी चटखाता हूं।
क्यों उसकी मरम्मत को सोची, पैसे लेता है मनमाने। वह
३—क्यों गुड़ से चिमटे हैं चींटे। क्यों मुझ पर पड़ते हैं छींटे।
सब काना फूसी करते है, क्यों मैं बैठा हूं पैताने। वह भोला
४—क्यों घरसे निकलना मुश्किलहै। गलियोंमें टहलना मुश्किलहै
क्यों प्रेम नगर में है 'कर,फ्यू' क्यों प्रेमी जाते हैं थाने। वह
५—हिन्दू. मुस्लिम, सिख, ईसाई। हैं दूध, दही, घी बालाई।
क्यों एक दूसरे का सूरत से, आज हैं लगते भिन्नाने। वह
६—क्यों देश के टुकड़े होते हैं। क्यों धर्म के झगड़े होते हैं।
क्यों हिन्दू हिन्दू का बैरी, क्यों मुस्लिम भी हैं खिसियाने। व
७—कोई दाना घास नहीं देता। कोई उनमें नहीं देखा लेता।
हट्टे कट्टे मोटे तगड़े, क्यों सांड है फिरते मस्ताने वह भोला

गीतः—सजनि ! मैं मेले की दीवानी।
यदि मेले में जा न सकूं, तो आजाती हैं भवानी।
१—चित्रकूट के घाट पे श्री तुलसी ने दर्शन पाए।
भक्त हेतु नारायण भी, आए, मेले मे आए।
मेले से जो मुंह मोड़े है महामूढ़ अभिमानी-सजनि
२—मेले में देवता पधारें धर,धर नाना रूप।
दिव्य देह कांधे पर लाठी, बांधे चलनी सूप।
शिवजी की बारात से मानो लौटे कर मेहमानी। सजनि
३—छैल छबीले, मोंछे ऐंठे, ज्यों फाटक पर बेल।
मुंह में पान आंख में सुरमा, सर में कडुआतेल।
घाम लगे जो मुंह पर बरसे, ज्यों छप्पर से पानी। सज
४—शहरी मेले तो हैं, रासलीला का दृश्य दिखाते।
नाज़ नज़ाकत में जवान लड़के, हमसे बढ़ जाते।
यहां मोछ बूढ़े ब्रह्मा की बता रही नादानी। सजनि
५— अगर नहाओ जाड़े में भी पहिनो पतली साड़ी।
पुण्य से फिर फूलोगी, जैसे सावन में फुलवाड़ी।
देख तपस्या ऋषिमुनि डोलें, ज्ञानी पानी पानी। सजनि
६— वहां नहाना एक बहाना, असली मेल मिलाप।
भीड़ से डरने वाली युवती, को होता है पाप।
मैंने तो निज पराक्रम ही से, यह सब माया जानी। स
७—मेले में दब कर मर जाएँ, देव लोक को जाएँ।
हैज़े और डूबने से भी मानव-मुक्ती पाएँ।
भक्ति मार्ग अति ही दुस्तर है, क्या समझेगा ज्ञानी।
सजनि ! मैं मेले की दीवानी॥

## विरह (व्यंग)

देवि मैं तुमको रहा पुकार।
१—यूनिवर्सिटी में पढ़ पढ़ के सारी उम्र गवाँई

छुट्टी में अब घर आया था 'चरण कमल चित लाई'
तुम बिन अपना कौन जगत में ढूंढ़ूं आँख पसार।
-सूना कमरा सूना घर है, सूना है संसार।
सन्ध्या तक तुम चली न आईं तो दे दूंगा तार।
क्षण क्षण का कटना पहाड़ है, रस्ता रहा निहार॥
-मात, पिता भ्राता, भगनी, सब हैं मतलब के साथी।
ग्राह रूप है ध्यान तुम्हारा, मैं ज्यों बूढ़ा हाथी
प्रेम सिन्धु की थाह नहीं है, अब लीजिए उबार
देवि मैं तुमको रहा पुकार॥
भागो सब दुम दबाय §।
-स्टेशन दनदनाय। पहुँचा अंग्रेज जाय।
बैरे से कहा "ब्वाय! अंडे कटलेट व चाय"
बोला वह सिटपिटाय, 'शर्मा सब गये खाय!' भाग
-' घर में आया सियार। नौकर को लो पुकार।
बाबा हम बाबू लोग, जानवर से करें रार।
लोटा क्या हुआ हाय, पेट रहा गड़गड़ाय॥" भाग
-बीबी करके शृङ्गार। चूड़ी बिछुआ उतार।
सेन्दुर होठों से चाट, बाली उनसे पुकार।
"सिनिमा हम रहा जाय, शोफर लाओ बुलाय!"
-"हम हैं साधू महन्त। चेले हैं दिग दिगन्त।
तुम सब मेहतर चमार, कलियुग में बनके सन्त।
मेरे मन्दिर समीप, आए सरयू नहाय?" भागो
-ताँगा है मेरे पास। घोड़ा है कलाँ रास।
जाता हो राह राह, देखे घोड़ी पे घास।
उछले और हिनहिनाय, सत्याग्रह दे मचाय॥ भाग
-दाढ़ी मूछें हैं झाड़। उन्नति पथ में पहाड़।

§ ष्१रवी रच है, कर ग्रोर के फे अगह

हिन्दू मुस्लिम व सिक्ख, बलवे में लें उखाड़।
चटियल मैदाँ कराय, दीजे झगड़ा मिटाय ॥ भागो सब
७—निकला जब करके ठाठ। बोली वह मुझको डाँट।
'घर में भी है छेदाम ?, जाते हो बन के लाट।
बोला मैं गिड़गिड़ाय, कविता आऊँ सुनाय ॥ भागो स

## ( जीवन )

क्या तू रहा घसीट, घसीटे ! क्या तू रहा घसीट ?
१—यह जीवन है कूड़ा गाड़ी। राह में है काँटों की झाड़ी।
तू बैठा है पी कर ताड़ी।
आँख खोल के जब देखेगा, तो लेगा मुँह पीट ॥घसीटे
२—जीवन की बीना फूटी है। तेरी प्रेक्टिस भी छूटी है।
कसने की खूंटी टूटी है।
लौकी से सर फोड़ न बौड़म, क्यों बनता है ढीट ? घसी
३—जीवन है एक गंदा नाला। मक्खी को मकड़ी का जाला
तुझे पड़ा है इससे पाला।
प्रेम सुरा पी इसे फाँद जा, छोड़ दे बाक़ी कीट ॥ घसीटे

## पैरोडी।

(नाचो नाचो मेरे मन के मोर-फ़िल्म)

फूलो, फूलो मेरे भूखे पेट, फूलो, फूलो।
आज मेरे जीवन का है पित्र पक्ष। फूलो २
चारों दिशाओं में भूखोंका राज। पंडित महराज, तोंदोंमें आज
घर घर जो पाते हैं, लेते समेट ॥ फूलो २
आज मैं हूँ मगन, मेरा तन मन मगन, सारा जीवन है
भोजन की भेंट खा पी के जाऊँगा लेट। फूलो २
पूड़ी कचौड़ी व लड्डू खिलाने। नींद भरे मेरे सपने जगाने
आँगन में आये निमन्त्रण को सेठ। फूलो, फूलो
आज मेरे जीवन का है पित्र पक्ष

## प्रार्थना पत्र

हे प्रभो श्री प्रिंसपल जी Leave दीजे 'कैजुअल !'
Ultimatum मिल गया घर में नहीं सकता निकल ॥
Move-Strategic है मेरा मैं भी हिल सकता नहीं।
यह तो है स्पष्ट भोजन आज मिल सकता नहीं ॥
बाल बच्चों के Division को न यदि Ration मिले।
Fifth column का असर वह हो कि इन्द्रासन हिले ॥
फिर तो With honour कभी Retreat भी होगी नहीं
क्योंकि Enemy भी तो है तगड़ा कोई रोगी नहीं ॥
उसके कटुवचनों की बमवर्षा से बचने के लिए।
कुछ अभी shelter खुशामद के हैं रचने के लिए ॥
झूठी तारीफों की भी Mine बनानी हैं अभी।
उसके करुणा के उदधि में फिर बिछानी हैं अभी ॥
क्रोध का जलयान जिनसे आके जब टकरायगा।
मुझको आशा है जहां होगा वहीं रह जायगा ॥
Fighter कुछ छेड़खानी के जो करते Raid हैं।
तो समझ लीजे मुहर्रिर हैं मगर unpaid हैं ॥
डिप्लोमेसी ( Diplomacy ) से मेरी सब नौकरों में P
आज Enemy को Surrender कर गए यह Fact
War का क्या aim है मैं खुद समझ पाया नहीं।
हां मगर Enemy ने शायद रात से खाया नहीं ॥
Victory मेरी ही होगी यह मुझे विश्वास है।
Peace तो अनिवार्य है जीवित अभी तक सांस है ॥

पैरोडी:— हमारे प्रभु ! अवगुण चित न धरो।
इक अष्टम एडवर्ड कहावें, इक सिमसन की पत्नी !
दोनों मिल जब एक बरण भए, सुख की चाटें चटनी।
जाति, जेल जूते का भय प्रभु ! हिय से दूर करे इ

घर मैं हैं सोने की चिड़िया, ये हैं बिल्कुल उल्लू।
वह हैं शैम्पेन की बोतल, ये ताड़ी का चुल्लू।
लोक लाज से 'पति परमेश्वर' इनको ही नाम परो॥ हमारे
चौक में तांगे घर था उनका सर पर्दे के बाहर।
घाट पे जैसे कछुए दर्शन देते लाई पा कर।
मैंने कहा खैर ! घर ही में मुंह ढक लिया करो॥ हमारे।
मैंने पराक्रम से पढ़ लिख कर सर्विस पाई पक्की।
घर में सास ससुर की सेवा की चलती है चक्की।
'यदि बूढ़े जी गए' 'द्वयेक दिन' मैं बिन मौत मरो"॥ हमा
वह तो एम० ए पास टीचर हैं, मैं वकील बातूनी।
धेला नहीं कमा सकता हूं, बातें सब क़ानूनी।
'घर क्या है बस बिचकचहरी,सुबह शाम झगरो'॥ हमारे प्रभु

## साधू (व्यंग)

मैं होने वाला हूं साधू-मैं साधू होने वाला हूं।
बेफ़ैशन चलता काम नहीं। बहुधा आता हज्जाम नहीं।
सब बाल हुए सन से सुफ़ेद, काले बालों का नाम नहीं।
मै यौवन की मधुशाला से, मक्खी सा गया निकाला हूं॥ मैं
घर में मुझको समझती हैं। सब ऊंच नीच दिखलाती हैं॥
'घर के न घाट ही के होंगे' कह कर मुझको डरवाती हैं॥
वह भोली भाली क्या जानें, मैं भी इक रसिक निराला हूं॥
दुनिया का कष्ट उठाता हूं। कुढ़ता हूं रोता गाता हूं।
जीवन गृहस्थ का ठीक नहीं, इसमें फँस कर पछताता हूं।
मै इस आधुनिक लड़ाई में, घोड़ों का एक रिसाला हूं। मैं०
क़र्ज़े से बीड़ी पान लिए। चावल औ' दाल पिसान लिए।
मै डर के मारे बैठा हूं, कोने में अपनी जान लिए।
पर कब तक खैर मनाऊंगा, आगा का एक निवाला हूं। मैं०
अब तुमसे झूठ न बोलूंगा। मैं सब की जेब टटोलूंगा॥

मै देश, प्रेम या सेवा का, दफ्तर न कदाचित खोलूंगा।
यह भोली दुनिया फंस जाए, मैं वह मक्ड़ी का जाला हूं ॥
क़र्जे से भी बच जाऊँगा। लड्डू बालाई खाऊंगा।
फिर माला औ' कोपीन धार जब तन पर भस्म लगाऊंगा
कोई युवती क्या जानेगी ? मै गोरा हूं या काला हूं। मैं०
जब तक झगड़ा और जंग रहे। मेरी मदिरा और भंग रहे
मैं ऐसा बाबा बन जाऊं, दुनियां देखे औ दंगरहे।
फिर क्या होगा क्या बतलाऊँ मै भी तो आखिर लाला हूँ

गीत :—सखि ! सुहालमटरी आई।

थाली में सब सामान लिये। अच्छी खासी दूकान लिए
जुगनू सी आखें चमकदार। लम्बे लम्बे से कान लिए।
बुढ़िया चिल्लाती लाई ॥ सखि।
बुढ़िया में है वह चमत्कार। इक 'बंधन' है उसकी 'पुकार'
उसको सोहाल मटरी ऐसी, जिसके आगे सब गए हार।
दुनियाँ भर के हलवाई ॥ सखि
मटरी में ऐसा पड़ा तेल। जो खाय न होगा कभी फेल।
हैजा बोखार फटके न पास, सत्याग्रह में जाए न जेल।
है गर्मी में ठंडाई ॥ सखि
इसके सोहाल हैं मजेदार। खाते हैं पन्डित औ' चमार।
जिनकी जेबें हैं मुँह बाये, वह खाते हैं लेकर उधार।
कह कह के नानी ताई ॥ सखि
"थोड़ी सी खालो बुलवाऊं। बोलो तो इसको रुकवाऊँ।
"सखि आज मुझे तो क्षमा करो, मैं कल से खाए बैठी हूँ
होम्यो पैथिक की दवाई ॥" सखि !

व्यंग

पपीहे !, क्यों करता है शोर ?
'पिया' 'पिया' तू क्या बकता है ऐ उल्लू के पट्ठे

हाला बाला के बारे में उचित नहीं ये ठट्ठे ।
घर में सुन पायेंगी तो फिर लेंगी शहर बटोर ॥ पपीहे
शुबहे पर पकड़े जाते हैं लाखों ही निर्दोष ।
क़ुरैशी अपराध करें, मुजरिम हैं मिस्टर घोष ।
सी. आई. डी. ने सर मारा, मिला न चट्टी चोर ॥ पपी.
बड़े परिश्रम से कालेज में भर्ती उसे कराया ।
वहाँ पहुँच कर मुनुआँ ने फिर अपना धैर्य दिखाया ।
चार वर्ष से चौथे में हैं फिर भी हैं कमजोर ॥ पपीहे
पानी बरसा, मेंढक बोले, रात अँधेरी काली ।
दामिनि दमक रही थी जैसें सुन्दर हँस मुख साली ।
वह सिनिमा में था, घर पर मुन्ना ने कर दिया भोर ॥ प
पहिले जिसे अछूत समझ कर, रखते दूर हटाये ।
उस मिस सर्विस ने अब लोगों को वह कुएँ झँकाये ।
चाह में उसकी दर दर फिरते लेकर लोटा डोर ॥ पपीहे
यदि घर में हो शान्ति, तुम्हारी बोली है मधुप्याली ।
अभी चुप रहो घर लुटता है बंटते लोटा थाली ।
आयेगा वह वक्त भी जब सब होंगे प्रेम विभोर ॥
पपीहे क्यों करता है शोर ?

गीत

मै जेन्टिलमैन और फक्कड़ दोनो साथ साथ ।
घर वालों की स्वतंत्रता पर मैं लाठी ताने रहता हूँ ।
एक आँख से जो सबको देखे मैं उसको Wavel कहता
मैं चर्चिल लाल बुझक्कड़ दोनों साथ-साथ ॥ मैं०
मैं कवि हूँ मिस मेओ समान, आँखों को सुख पहुँचाता हूँ
कविता के कुत्सित भावों से मैं दिल को ठेस लगाता हूँ ।
मैं पुरस्कार औ' थप्पड़ दोनों साथ साथ ॥ मैं०
मैं चेयरमैन हूँ औ मुझसे मैंसा मार्की थर्राती है

अंग्रेज का फोटो भी देखूं नानी मेरी मर जाती है।
मैं अति मरियल और तगड़ दोनों साथ साथ ॥ मैं०
'हीरो, हीरोइन' हुए वृद्ध दो दर्जन लड़के वाले हैं।
अब यौवन की मधुशाला से मुँह बाये गये निकाले हैं।
इक दम कुल्हिया और कुल्हड़, दोनों साथ साथ ॥ मैं०
मैं महाजनों की गाली भी सुनता हूँ जैसे सक्ति ग्रन्थ।
जब नौकर वेतन माँगे तो है दृश्य निराला और पन्थ।
मैं पूर्ण शान्ति और झगड़ दोनों साथ साथ ॥ मैं०
वह मुझको चक्कर देती है मैं रहता हूँ सर पर सवार।
यदि उन्हें बाल में जाना है मैं गोल हूँ और हर दम तयार।
मैं इवनिंग हैट और पगड़ दोनों साथ साथ ॥ मैं जेन्टिलमैन

(Parody १६ वर्ष का पुराना जूता खोने पर विरह वर्णन

मेरे पुराने साथी तेरी याद सतावे।

इस सम्मेलन में क्यों आया। लोगों ने तुझको 'टहलाया'।
ए काकी कसे घर जाऊँ, विरह सतावे। मेरे पुराने जूते
मेरे लिए अभी था 'टांठा'। 'किस चमार ने तुझको 'गाँठा'।
'कुत्ता है जो भरी सभा में, दांत लगावे' ॥ मेरे
किसी की तुझपर 'आँख गड़ी' थी। और मेरी क़िस्मतही सड़ी
नहीं तो किसमे यह दम था जो तुझको 'उड़ावे' ॥ मेरे०
जहाँ जहाँ पर 'तुम चलते थे'। बैरी देख देख जलते थे।
कौन खोपड़ी पर अब उनकी, धूम मचावे' ॥ मेरे०
विधि ने तुझको मुझसे छीना। हुआ असम्भव मेरा जीना।
तुझ बिन कौन यहाँ जो नित नव, 'चाल सिखावे' ॥ मेरे०
संभव है तू 'बदल गया हो'। औ' 'पंजे से निकल गया हो'।
क्षमा दृष्टि कर प्यारे, तेरा दास मनावे ॥ मेरे०
यद्यपि अब स्वच्छन्द हुआ हूँ। छायावादी छन्द हुआ हूँ।
शूल भरे इस जीवन पथ पर कौन चलावे मेरे पुराने सा

Parody ( कोकिल—मैं केवल चरणों की दासी )

मैं केवल कल्लू चपरासी

भाई मेरा गाँव का मुखिया। औ' मेरी भाभी है 'सुखिया'
डिस्ट्रिक्टबोर्ड की वह मेम्बर है, देखें उसको लोग कनखिया
बीवी के बल भाई साहेब। हुए बड़े लोगों के मुसाहेब।
बाबू छेदी लाल बन गए जो पहले थे छेदा पासी ॥ मैं०
'बुदुआ' मेरा एक पड़ोसी। जाति पवित्र दूध सी, घोसी।
अब वह 'खुदा ब.ख्श' बन बैठा, ट्रेनिङ्ग पाता है चन्दोसी।
घर टूटा सा भैंस पुरानी। बुढ़िया अब तक देती पानी।
पति पत्नी नित प्रात पूर्ववत, करते हैं संग्राम पलासी !! मैं०
मेरा हृदय सदा गदगद है। माना वह घर में भदभद है।
उसको सैन्डिल भी पहिना दूं, सड़कों पर गिरती लदलद है
चेहरा उसका अच्छा खासा। पर कुछ लोगों को दुर्वासा।
मुझे खिलाके ताजी रोटी, पगली खुदखाती है बासी। मैं०
बड़ों बड़ों के संग खेला हूं। वह गिन्नी है मैं धेला हूँ।
फिर भी सदा मगन रहता हूँ, मैं गांधी जी का चेला हूँ।
सेवा करूँ पेट भरता हूं अपनी पत्नी का 'भरता' हूँ।
यानी मैं हूं पुरुष पुरातन, औ वह है मेरी माया सी !

मैं केवल कल्लू चपरासी-

## भक्ति मार्ग

छिपोगे कब तक चोरों के सरदार ?
तुम्हें ढूंढ़ने के कारण हूँ बैठा खाए उधार। छिपोगे कब
माखन चोर तुम्हें कहते हैं भक्ति मार्ग के चन्ट।
मैं चित चोर तुम्हें कहता हूँ रखता हूँ वारन्ट।
किस रस्ते में घेरूं तुमको बस यह रहा विचार ॥ छिपोगे
गोकुल नगरी बृन्दावन में करते थे छल छन्द।
मन की स्याह कोठरी में अब तुम्हें करूंगा बन्द

प्रेम डोर लेकर फिरता हूँ मैं बिल्कुल तैयार ॥ छिपोगे
बड़े ज्ञान देने वाले बनते थे, चुप क्यों साधी ?
मत शर्मांओ फिर आजाओ, हमीं सही अपराधी।
दुनियां मोहन भोग समझ कर है खा रही अचार ॥ छिपोगे
आठों पहर ब्लैक आउट है मन मन्दिर के बीच ।
अन्दर आओ तो, देखो मैं आँख रहा हूं मींच ।
वरना अल्टी मेटम समझो, छिड़जाएगी 'वार॥' छिपोगे ।

## बेइमान देखे ?

मुझे मिले एक महानुभाव, बोले 'अजी मिस्टर तो बताव ।
कहीं बुकिंगआफिस याकि चौकमें, कभी किसी ने बेइमान देखे ?
मैंने कहा बदले वह बजाजे, सूने पड़े हैं बिल्कुल सराफे।
सोना तो भारत ही में नहीं है, कहां किसी ने बेइमान देखे ?
स्टेशनों पर रहती पुलिस है, हर काम होता है दिन दहाड़े ।
चोर और उचक्के तक जब नही हैं, कोई कहां फिर बेइमान देखे
अब वह कचहरीमें भी न जाते, अमलों वकीलों मे भी न आते
सूरत गवाहों में कम दिखाते, कैसे कोई फिर बेइमान देखे ?
वह तो बसें नामी मन्दिरों में, ऊंचे महंतों ही के घरों में ।
भगवान के भक्तों अनुचरों में कुछ कुछ झलकते बेइमान देखे ॥
दुर्गों में या महलों में बिराजे, 'डयोढ़ी पे जिनके बजते नगाड़े॥
दु:खित जनों से आंखे चुराए, टांगें पसारे बेइमान देखे ॥
संसार भर में यों तो हैं छाए, पैसे के प्यासे दिल में समाए।
पश्चिम में अब हैं अड्डे जमाए, सोलह कला के बेइमान देखे।

## ( हिमालय )

श्री शंकर जहां निवास करें। नन्दी जी जहां पे घास चरें॥
औ' गणेश जी मूसक सवार, टहलें मानव का त्रास हरें ॥
है यही हिमालय पुण्य भूमि मुदित मन चरण चूमि ।

Some say it may be that place-
Where originated our raced.
Adam & Eve had good time.
No court nor control case.
But old days had old tales
This world was poorer far Jails.

सम से इट में बी दैट प्लेस, ह्वेर ओरीजीनेटेड आवर रेस
ऐडम ऐन्ड ईव हैड गुड टाइम, नो कोर्ट, नार कंट्रोल केस,
बट ओल्ड डेज़ हैड ओल्ड टेल्स,
दिस वर्ल्ड वाज़ पुअरर फार जेलस् ॥
हिम की पगड़ी सिर बांधे है। शीतल समीर शर सांधे है
सविता की आँखे हैं नीची, पृथ्वी का भार इक कांधे है।
इसकी महिमा किसने जानी, देखे से मरती है नानी ॥
गंगा यमुना को लिए गोद। देता ऋषि मुनियों को प्रमोद।
भारत वालों को अनायास, देता था सोना खोद खोद।
पशु पक्षी करते थे किलोल, हम सैठ बने गए ढोल पोल।
इसको हम प्रहरी कहते थे बे खौफ़ मज़े से रहते थे।
कर आंख बन्द अंटा गफ़ील, सुख की नदी में बहते थे।
थे किसके बाबा के गुलाम। दास्ता और हम ? राम राम
ओ वीर हिमालय वज्र वक्ष। रिपुदल संहारक दुष्ट भक्ष।
क्रीड़ाथल गौरी महादेव जिस पर करते थे गर्व दक्ष।
क्यों तूने चढ़ाई ऐसी भंग। हम सबका है काफ़िया तंग ॥
हम तुझसे रखते थे यह आस। आएगा न कोई आस पा-
थी तुझ पर कुछ पीनक सवार, या था शायद खा गया बा-
लंगड़े लूले तक घुस आए, तू खड़ा रहा बस मुंह बाए ॥
अब सुनकर दुखियों का प्रलाप क्रोधाग्नि जला वह उठा ग-

जो खाला का घर समझे हैं; उनकी गर्दन दे अभी नाप।
वैरी जो बजाते फिरें गाल। तू उनका दे भुरकुस निकाल॥

## मैं कवि

कविता कहने की है ठानी, लिखता हूं अपनी मनमानी।
दुनिया में कोई नहीं सानी, ऐसा हूं कविवर जापानी॥
कविता ठर्रा का मतवाला, पीता हूँ प्याला पर प्याला।
लिखता हूँ तो ऐसी आला, धाराप्रवाह ज्यों पर नाला॥
मैं उल्टी सीधी बकता हू, जीता हूं मर भी सकता हूँ।
साधना से मगर झिझकता हू, छेड़ो तो अभी खिसकता हू॥
जब बनता हूँ छायावादी, कविता लिखता हूँ फौलादी।
जनता के घर में पहुँचा दी, जो लादी है मैंने खादी॥
जब प्रगति शील बन जाता हूँ, नाली से इत्र बनाता हूँ।
भाड़ों को शर्म दिलाता हू। मैं ऐसा नाच दिखाता हूँ॥
आकाश में है तारों की भड़क, है बादलमें बिजुली की कड़क।
रह रह तबियत उठती है फड़क, बियना की सड़क, बियनार
कविता में कुछ उत्पात भी है, नायका भेद की बात भी है।
मुग्धा भी है अज्ञात भी है, हां किश्त भी है और मात भी है॥
मेराघर है न कोई बंगला, लिखता हूँ संस्कृत या बंगला।
ठुमरी तिल्लाना या जंगला, परहिन्दी में पूरा कंगला॥
मेरे दिल में कुछ खोट नहीं तुमसे कुछ लेता ओट नहीं।
सच्ची बतें हैं चोट नहीं, भैया हर कागज नोट नहीं॥
कविता में मीठे बोल लिखो, शिक्षा मिश्री में घोल लिखो।
दुखियोंका हृदय टटोल लिखो, यह नहीं कि बिल्कुल भोल लिखो

## श्री तुलसी दास

कहां हो बाबा तुलसी दास ?
इस युग के कवियों को देखो सब खा गए हैं घास कहा

तुमने भक्ति प्रचार काव्य से किया जगत मतवाला।
ये कवि भी हैं मस्त आपही पीकर हाला प्याला।
तुमने तो संसार हेतु इक अमृत नदी बहाई।
इन लोगों ने भी तप बल से खोदा गंदा नाला।
जिससे सीधा मार्ग रुका है आती है वह बास॥ कहां
निष्कलंक, निष्काम काम कर जीवन तरी बहाई।
भवसागर में भक्तजनों को कलि में राह दिखाई।
काव्य, कला, रस, छन्द आदि भाषा को सफल बनाया
इन सबने वह छन्द रंद कर अपनी टांग अड़ाई।
भक्ति, कर्म औ' ज्ञान धर्म सब हैं ले रहे उसास। कहां
सभी ओर गड़बड़ झाला है, कोई गोरा कोई काला।
चूरन कोई बेच रहा है, कोई गरम मसाला।
प्रगति शील, छायावादी, जाने कितने बक वादी।
कविता को समझे बैठे हैं मुंह का एक निवाला।
काग़ज का मुंह काला करते हैं लिखते बकवास॥ कहां
छायावाद नाद करने वालों को स्वाद चखाओ।
गधे बनें बछड़े उनको निज मानस में नहलाओ।
कविता कृषी लहलहा उट्ठे, नष्ट न होने पाये।
कलिमल दहनि शान्ति सुख दाइनि फिर से लहर बहाओ
जिससे हिन्द और हिन्दी की पूर्ण हो सके आस। कहां

## "हम" ( Satire )

हम सरयूजी के पन्डे हैं। हट्टे कट्टे मुस्तंडे हैं॥
साकेत पुरी है धर्म ध्वजा, औ हम सब उसके डंडे हैं॥
हम भ्रष्ट नहीं होने देंगे। हम नष्ट नहीं होने देंगे।
है धर्म के ऊपर यह शरीर, हम कष्ट नहीं होने देंगे॥
क्या साथ अछूत भी खाएंगे। हम कहते हैं चिल्लाएंगे।
श्रीराम चन्द्र की मर्यादा, मिट्टी में नहीं मिलाएंगे॥

यह धर्म है खाने पीने में। है प्रेम इसी का सीने में।
यदि भोजनही हो गया भ्रष्ट क्या मजा रहा फिर जीनेमें॥
यदि छुआछूत मिट जायेगी। तो जाति कहां रह जायेगी॥
औ' शुद्ध सात्विक प्रिय भोजन, हम सबको कौन खिलायेग
हम परम हंस कहलाते हैं, स्वादार्थ नहीं कुछ खाते हैं।
मद मांस अगर चेले देवें, हम भेद नहो 'कर' पाते हैं॥
घरबार को हमने छोड़ा है, जो कुछ न करें हम थोड़ा है।
हम भ्रमण नहीं करते फिरभी, हर रान के नीचे घोड़ा है
हम झूठे धर्म न मानेगें, औ, युद्ध सदा ही ठानेंगे।
क्यों विधर्मियों से करें प्रेम,उन पर डन्डा ही तनेंगे॥
हम सावरकर के भाई हैं, वह कुआं है औ हम खाई हैं।
वह हिन्दू धर्म के हैं पंडित, हम उनके साथ के नाई हैं॥
गांधी जी मरें तो मरने दो, हरताल करो औ' धरने दो।
हिन्दुओ भलाई इसी में है, हम को मन मानी करने दो॥
हम गांधीवाद मिटायेंगे, उनको दोषी ठहरायेंगे।
वे मार भी डाले गए अगर, अर्थी के साथ न जायेंगे॥
सब हिन्दू धर्म की जैं बोलो, सब बंधे हुए झगड़े खोलो।
हो शान्ति भंग ए "यशस्वियो" जनता में ऐसा विष घोलो॥

## Satire

करूंगा आज भूख हड़ताल।

सीधा ग़ायब लकड़ी गीली, है दफ्तर का वक्त।
महरी कहां मर गई, अबतो खौल रहा है रक्त।
सीधे नहीं बोलता कोई, फूल रहे हैं गाल॥ करूंगा
जमुनापारी बकरी मेरी, उठी भ्रमण की मौज।
सन्ध्या हुई न आई अब तक, क्या करती है फौज।
अपने नेता हैं स्वराज्य है औ खोजाए माल॥ करूंगा
चोर बजारी सहल नहीं है, सदा जेल में टांग।

पब्लिक, पुलिस, राशनिंग वालों की है नित नव मांग।
ए मुनीम ! चन्दे वालों को दे कोठी से निकाल ॥ करूँगा
विद्यार्थियों ने ही मिलकर स्वतन्त्रता दिखलाई।
अब मैं पढ़ू परीक्षा भी दू फिर भी फ़ीस बढ़ाई।
सिनेमा, होली, दीवाली में खुल खेलना मुहाल ॥ करूंगा
चुंगी, टैक्स, लगान, किराया और रेल का भाड़ा।
आज भी देना ही पड़ता है तब क्या शेर पछाड़ा।
पंडे, पूंजी पति चौपट हैं, कूद रहे कंगाल ॥ करूँगा
हम हिन्दू मुस्तंड और भारत अखंड है अपना,
मुस्लिम, सिक्ख ईसाई जैनी देख रहे क्या सपना ?
अब अछूत मुंह चाट रहे हैं, खिंचवा लूंगा खाल ॥ करूंगा
जिसमें मानवता हो प्यारे वह यों पैर पसारे।
मोहन की जो नक़ल करे, वह भस्मासुर हो, हारे।
निज सुख स्वार्थ हेतु जनता को मत कीजिए हलाल ॥ करूंग

---

### ( व्यंग, बन्दर पर )

चचा जी अब न करूंगा माफ़।

मैं केवल नर तुम बानर हो। भक्ति मार्ग में अति कट्टर हो।
मैंने तुमको अपना समझा, जिन्ना हो या सावरकर हो।
फिर क्यों नोच खसोटमचाई, तुम्हीं करो इन्साफ़। चचा ज
बहुत कड़ाके का है जाड़ा। दांत स्वयं पढ़ रहे पहाड़ा।
तुम ने अपनी प्रकृति न छोड़ी, मेरा सारा खेल बिगाड़ा।
संचित पुण्य अनेकों 'क्यू' का फाड़ा तुमने लिहाफ़। चचा जी
अगर डार्विन कुछ कहता है। वह सच भी तो हो सकता है।
तुम सम्बन्ध पुरातन भूले, यह भी कैसी मादकता है।
मैंने रस्सी लम्बी दी औ, तुम हो गए खिलाफ़। चचा जी।
आओ मिलकर पैक्ट बनाएं, फिरस्तान को भी फ़्रैक्ट बनाए।

हम बस्ती में तुम जंगल में, रहो चैन से ऐश्ट बनाएं ।
'यू' एन, ओ' में अब न आऊँगा, कहता हूँ मैं साफ़ । बचा र्ज

---

( क्षेपक )

उल्लू ! अब तो आंखे खोल ।

वैरी दिनकर बनकर आया । माया सा प्रकाश फैलाया ।
बुलबुल कोकिल कौए मुर्गे, सब ने मिलकर गान सुनाया ॥
स्वर्ण रश्मियों ने कुछ क्षण में, ऐसा इन्द्रजाल बुन डाला ।
द्वेष,, भेद,कुविचार कुलक्षों को सब ने बढ़कर अपनाया ॥
वैमनस्य के आगे भागो पारस्परिक प्रेम सुख आदर ।
स्वार्थ हुआ संतुष्ट सभी ने हर्षित निजनिज नीड़ बनाया ॥
फंदे कसे लड़ गई चोंचें, एक दूसरे से मुंह फेरा,
हुआ यही परिणाम अन्त में दो कुन्डो का 'नास घराया' ॥
संध्या हुई हट गया जादू साफ खुल गई पोल—उल्लू अबतो
नव प्रभात है तेरा, फिर से नभ में स्वर्णिम लाली छाई ॥
अष्ट सिद्धियों नौ निधियों ने आंख खोलकर ली अंगड़ाई ॥
विहंग अब स्वच्छन्द गा उठे प्रेम भरे नव गीत सुहाने ।
गर्दभ चरते खेत पुष्प पर मधुमक्खी ने बीन बजाई ॥
नंदन कानन पर हंसता है यह उद्यान मनोरम सुन्दर ।
सुख समीर बह रहा किसी की हरी भरी खेती लहराई ॥
अब निर्भय हो दो दाने भी पाकर सब कलरव करते हैं ।
है परिवर्तन शील प्रकृति भी शिकरे खाते दूध मलाई ॥
जलद नाचते हैं अम्बर में बजाबजाकर ढोल । उल्लू खोल
रात दिवस है तेरा इसमें कर्म भोग के पाठ पढ़ायें ।
सत्य अहिंसा पर डटकर फिर वैरी को भी मित्र बनायें ॥
तू कर्तव्य परायण होगा कमला तेरा मुंह देखेगी ।

सद्‌गुण देखें तो विभूतियां तेरे आगे पूँछ हिलायें ॥
हैं सबके भगवान, धर्म को फिर संकीर्ण न होने देना
सुख में आलस नींद, परस्पर कलह न फिरसे आने पाये
भूमि बनेगी स्वर्ग एकदिन बापू का वरदान यही है ।
जिसने किया स्वतन्त्र आज हम सबमिलकर उसका यश
ज्ञान भक्ति की शक्ति यही है मीठी वाणी बोल । उल्लू

## पैरोडी (तुम्हारे रूप के बादल)

तुम्हारे रोष के बादल ।
मेरी दुलिया बिगाड़े हैं, तुम्हारे रोष के बादल ।
तनिक सी बात से उट्ठे, घड़ी भर रात से उट्ठे ।
नया तूफ़ान बनने को, नये उत्पात से उट्ठे ।
अनोखी शान झाड़े हैं ॥ तुम्हारे रोष के बादल, मेरी दु॰
मुझे सोने नहीं देते, अलग रोने नहीं देते ।
सड़ी तक़दीर के धब्बे, मुझे धोने नहीं देते ।
ये नाहक़ कान फाड़े हैं ॥ तुम्हारे रोष के बादल, मेरी॰
खड़ा हूँ हाँपता हूं मैं, गरज से काँपता हूं मैं ।
किसी ढब भोर होजाये तो रास्ता नापता हूं मैं ।
अभी औंधे नगाड़े हैं ॥ तुम्हारे रोष के बादल, मेरी॰
क्षमा कीजे क्षमा कीजे, अधिक मत हमहमा कीजे ।
न यदि संतुष्ट हो मुझसे, तो इक दिन मुकदमा कीजे ।
खुले सन्मुख अखाड़े हैं ॥ तुम्हारे रोष के बादल, मेरी॰
मुझे तुम लोमड़ी समझो, इक औंधी खोपड़ी समझो ।
तुम अपने ज्ञान के आगे, मेरी बातें सड़ी समझो ।
मुझे जीता ही गाड़े हैं ॥ तुम्हारे रोष के बादल, मेरी॰
पवन सुत आज मंगल है, ये कैसा घर में दंगल है ।
कहां मैं छिप के जा बैठूं, न झाड़ी है न जंगल है ।
सितम ये दिन दहाड़े हैं तुम्हारे रोष के बादल, मेरी दु

गीत—(घर घर में दिवाली है मेरे घर में अँधेरा-का उल्टा)

ए दुनियाँ बता कैसी है ये चाल निराली ।
घर घर में अँधेरा है मेरे घर में दिवाली ॥
सब "सज्जनो देवी" तो फिरें दाने को मुहताज ।
पर मेरे यहाँ कोठी में खत्ती में भरा नाज ॥
है गुड़गुड़ी हाथों में मेरे मुँह में निगाली । घर घ
वे कड़वे बचन कहते हैं शक्कर नहीं मिलती ।
औ' मेरी ये हालत है कि गर्दन नही हिलती॥
खाता हूं तो दिखलाई नहीं पड़ती है थाली ॥ घरघ
हो देश भी संकट में तो परवाह नहीं है ।
सब सुख से रहें इसकी मुझे चाह नहीं है ॥
आजाद हूं सरकार को भी देता हूं गाली ॥ घरघर
मैं 'ख़ाजासरा' हूं मेरे घर पुत्र हुआ है ।
कंट्रोल की माया है ये ऐटम की हवा है ॥
सब झूठ है इक हाथ से बजती नहीं ताली ॥ घरघर

## मोटर

प्यारा मोटर, प्यारा मोटर ।
ये कैसा है फ़र फ़र सर सर, क्या उड़ता आता है वे पर ॥
उड़े कंकड़ भागे पत्थर, क्या कोई आता है अ.फ्सर ॥
वह लो देखो आया मोटर !
दुनियाँ में हैं बहुत सवारी, इक्का ताँगा भैंसा गाड़ी ॥
कोई हल्की कोई भारी, कोई चोक़न्दर, कोई सुपारी ॥
लेकिन मोटर सब से बढ़ कर ।
हाथी, घोड़े लेते सेवा, उस पर उनका कठिन कलेवा ॥
वायुयान है जान का लेवा, लेकिन मोटर मीठा मेवा ॥
वे सिरका यह 'जानी वाकर ।

यह बिजुली है गर्म नहीं है, लोच बहुत है नर्म नहीं है ॥
फूला सा है वर्म नहीं है, नंगे बैठो शर्म नहीं है ॥
रेशम पहनो चाहे खद्दर ।
बड़े बड़ों से 'लड़ जाता है', मालिक से भी 'बिगड़ जाता है' ॥
रस्ते में चो अकड़ जाता है, अङ्गद पद सा गड़ जाता है ॥
और नहीं हटता है तिल भर ।
दूरी भी नजदीक बहुत है, सड़क न हो तो लीक बहुत है ॥
सीठा है पर हीक बहुत है, पैसा हो तो ठीक बहुत है ॥
वरना फाग लंगोटी अन्दर ।
हवा से ये बातें करता है, पानी पी पी कर रहता है ॥
दावानल सा जब बढ़ता है, पाँव न पृथ्वीपर रखता है ॥
व्योम को आ जाता है चक्कर ।
उनका हो कि हमारा मोटर, नया अगर है प्यारा मोटर ॥
सम्पति नभ में तारा मोटर, लंगड़ों का है सहारा मोटर ॥
आशा है अब होगा घर घर ।
जीवन पथ है ऊबड़ खाबड़, जिसमें यौवन सब से अड़बड़ ॥
यहाँ न होने पाये हड़बड़, वरना हो जायेगा गड़बड़ ॥
मन मोटर है मंजिल ईश्वर ।

हज़ल ( 'ये किसने पुकारा' पकंज )

अबे छींक मारा सवेरे सवेरे । कि तूने खंखारा सवेरे सवेरे ?
गये तार वीणा के जबटूट, उसने । बजाया चिकारा सवेरे २ ॥
मची प्रेम की पेट में खलबली जब, तो जंगल सिधारा सवेरे २
गिरा खानसामां भी चित चाय लेकर, जो उसने डकारा सवेरे २
उड़ा मैं उन्होंने जो नौकर से पूछा, अबे किसने मारा सवेरे २

२

( दिलही तो है इत्यादि-ग़ालिब )

पेट ही तो है न नादो ईंट, भरके न गड़गड़ाये क्यों ?

खायेंगे हम हजार बार, कोई हमें खिलाय क्यों ?
कोठी नहीं मकां नहीं हलवाई की दुकां नहीं ।
बैठे हैं पार्टी में हम कोई हमें उठाय क्यों ?
सुनते ही ख़्वतों का नाम, मचती है दिलमें धूम धा
पेट भरे न राम राम, कोई हमें बुलाय क्यों
'शीन है' और 'क़ाफ़' है गद्दा भी है लिहाफ़ है ।
जाड़े में सब मुआफ़ है फिर कोई बड़बड़ाय क्यों ?
पानी हो दाना घास हो और अगर वह पास हो ।
भूख हो और प्यास हो, फिर न वह हिनहिनाय क्यों

३

आशिक हैं या जमा हैं पंडे तुम्हारे घर पर ।
हरदम चला रहे हैं डंडे तुम्हारे घर पर ॥
दीदार भी न होगा तब क्यों पड़े हुए हैं ।
क्या दे रहे हैं यह सब अन्डे तुम्हारे घर पर ॥
नीचा न देखें आशिक और अपने को सभालें ।
दो दो लगे हुए हैं हन्डे तुम्हारे घर पर ॥
इस चाह का भला हो जल जल के जिसमें आशिक
होते हैं रोज़ लाखों ठन्डे तुम्हारे घर पर ।
है दिल जलों का जमघट, सब पी रहे हैं सिगरेट ।
या यह सुलग रहे हैं, कंडे तुम्हारे घर पर ॥
घर बार बेच खाया, आशिक हुए उठल्लू ।
ले ले के बैठते हैं, बंडे तुम्हारे घर पर ॥

( ४ )

उधर व,ज़्म में है नदामत किसी की ।
इधर बन रही है हजामत किसी की ॥
फटी जूतियों को निकलवा रहे हैं ।
हुआ चाहती है मरम्मत किसी की ॥

नहीं गालियों से भरा पेट तेरा।
खिलायेगी बाटा* मोहब्बत किसी की॥
कसौली के जाने से डरता नहीं हूं।
कोई जानले यह न आदत किसी की॥
कहा मैंने यह कोतवाली के अन्दर।
तेरे बाप की है मोहब्बत किसी की॥

( ५ )

है सौन्दर्य लेकिन जवानी नहीं है।
तो है पायजामा मियानी नहीं है॥
बहुत खोदने पर भी मुंह से न बोला।
जो देखा तो हुक्के में पानी नहीं है॥
लड़े जिसपे हिन्दू मुसलमां परस्पर।
वह माशूक हिन्दोस्तानी नहीं है॥
अगर हाथ धोए तो अंधेर होगा।
अरे तेल है तेल, पानी नहीं है॥
है कंट्रोल का एक कौतुक यहां भी।
हैं नायाब चीजें गरानी नहीं है॥

( ६ )

हमारे घर में कोई और बस नहीं सकते
ये पैर अब किसी दल दल में धंस नहीं सक
वसुंधरा ने अगर खोपड़ी नहीं मूंडी।
तो आसमां से भी ओले बरस नहीं सकते॥
हमें ये झेंप है किस मुंह से उनसे मांगे औ
उन्हें यह चिढ़ कि दुबारा परस नहीं सक
न चैन की घड़ी जीवन में दे सकी दुनियां;
जो चूल हो गई ढीली वो कस नहीं सकते॥

* बाटी ( एक प्रकार की रोटी ) का शर्त में

हम उनकी एक भी मुस्कान पर-न मर पाए।
मुहर्रमी हैं वो ऐसे कि हंस नहीं सकते ॥

( ७ )

न पूछा कि इस वक्त आये कहां से।
कहा छूटते ही निकालो यहां से॥
गली में भी उसकी जो बीमार खांसे।
शिकायत वो करता है झट अपनी मां से॥
जमाने को कटहल भी प्रिय हो गया है।
जो चेहरे पे उनके हैं निकले मुहांसे।
अदाओं पे कंट्रोल लग तो गया है।
मगर दे रहे हैं खुले आम झांसे॥
थी आवाज बुलबुल की, जब जाल फेंका।
तो बस एक कौआ उड़ा आशियां से॥

८

१–एक मुद्रा जेब में था वह अधन्ना हो गया।
काल से मुद्रा घिसे, दाढ़ी का छुन्ना हो गया
२–भेद भाषा में नहीं है, शब्द उच्चारण प्रथक।
खान था उर्दू में वह हिन्दी में खन्ना हो गया
३–प्रेम वह पीयूष है मीठी हुई हर एक वस्तु।
मुंह पे जो डंडा जमाया उसने, गन्ना हो गया
४–मिट चला संघर्ष से छोटे बड़े का भेद भाव।
युद्ध से पतलून का, ढीला सुथन्ना हो गया
५–प्रेम ही निर्वाण पथ है, सूक्ष्म हो जाता शरीर।
प्रेम में मजनूं समान, पोथी से पन्ना हो गया

९ पैरोडी (चाह बरबाद करेगी)

१ चाय बरबाद करेगी हमें मालूम न था।
इस में शक्कर भी पड़ेगी हमें मालूम न था॥

२ बर्फ़ गर्मी में अंगेठी है यही जाड़े में।
†सुन्न दो चार करेगी हमें मालूम न था॥
कान उसने जो उमेठे तो हृदय फूल गया।
सैंडिल सर पे पड़ेगी हमें मालूम न था॥
लम्बे चौड़े हैं बहुत घर में हैं भीगी बिल्ली।
इनसे चुहिया न मरेगी हमें मालूम न था॥
बोर्ड से ख़ुश थे मुहल्ले में बनाई नाली।
रात दिन यह भी सड़ेगी हमें मालूम न था॥

१०

है दिल के बक्स में प्रेम भरा तो इसका दिखावा कौन करे
वह बक्स चुराये बैठे हैं चोरी का दावा कौन करे।
माना कि निकट सम्बंधी हैं शुभ काम भी है अपने घर में
राशन के जमाने में लेकिन घर भर का बुलावा कौन करे।
सौन्दर्य,जगत में आया है इन्कार का ऐटम बम लेकर।
अभिलाषाएं जापानी हैं फिर उस पर धावा कौन करे॥
ऐ हुस्नो मुहब्बत क्या कहना ? ऐ भूख व रोटी सत्य वचन
जब पेट म होता हो बलवा, तो दिल बहलावा कौन करे ?।
सरकार को गाली देता हूँ, नेता बनने में देर नहीं।
हां यह कहिये अद्दर खद्दर भद्दड़ पहनावा कौन करे ?॥
मीठी वाणी के फंदे में मनमीन स्वयम् फंस जाते हैं।
झकमार रहा हूँ घर बैठे यह मेरे अलावा कौन करे ?॥

११

सीने हैं अगर कीने से भरे तब हाथ मिलाकर क्या होगा ?।
जब युद्ध की भेंट हुई टांगें पतलून सिलाकर क्या होगा॥
जिन चूहों ने कपड़े कतरे औ' राशन को भी साफ़ किया।
बिल्ली के डरसे मरही गए तो उनको जिलाकर क्या होगा॥

† चार सौ बीस भी

३ हो गाय दुधार अगर, उसकी सब लोग दुलत्ती सह लेंगे।
जो भैंस न दे गोबरके सिवा गुड़ उसको खिलाकर क्या होगा॥
४ यह सत्य अहिंसा को मानें वह मक्रो सितम के दीवाने।
जो खून का प्यासा हो उसको पीयूष पिलाकर क्या होगा॥
५ कुतिया के भय से भाग चला सेना को लेकर भिल्ल प्रबल।
खम्भे पे चढ़ा है एकाकी अब इसको हिलाकर क्या होगा॥
६ हर बात पे वह धमकाते हैं 'परिणाम नहीं अच्छा होगा।'
दिलके दो टुकड़े होही चुके अब हुमको हिलाकर क्या होगा॥
७ भयभीत हैं बाबू बन्दर से और घरसे निकलना मुश्किल है।
कश्मीर चलेंगे कम्बख्त हैं 'किट'इनको हिलाकर क्या होगा॥

१२

वह साहब बनकर जो चल पड़ा कोई यहां गिरा कोई वहां गिरा।
जब लकड़बघा सा निकल पड़ा, कोई यहाँ गिरा कोई वहाँगिरा।
घर ही में रहो ए दिल वालो, यह दिल है बड़ा पाजी लौंडा।
अब सिनेमा घर में मचल पड़ा कोई यहाँ गिरा कोई वहाँगिरा।
मैं उनकी अदाओं का भरता, तुम उनकी मोहब्बत में भूसा।
कोई भूक से घर में बिकल पड़ा कोई वहाँ गिरा कोई वहाँगिरा।
चट्टान है चिकनी सुन्दरता, यों स्नेह लगाना ठीक नहीं।
जो उधर गया वो फिसल पड़ा कोई यहाँ गिरा कोई वहाँ गिरा।
तुम लड़ते हो अपनी बेगम से मैं भिड़ता हूँ अपने साहब से।
हर जगह वीररस उबल पड़ा कोई यहाँ गिरा कोई वहाँ गिरा।
साहित्य सुरा का वक्त नहीं होली में मजा है ठर्रे का।
पीने वालों को सरल पड़ा, कोई यहां गिरा कोई वहां गिरा॥

१३

१ ये अभिशाप निकले हैं वरदान बनकर।
क़लम खा गए हैं क़लमदान बनकर॥

करोगे जो अभिमान बलवान बनकर।
तो फिर नाक रगड़ोगे जापान बनकर॥
है ससुराल सेन्टर सुखद संगठन का।
मेरे घर को घेरे हैं मेहमान बनकर॥
बुढ़ापे में शृङ्गार रस के मजे हैं।
मोहब्बत चढ़ी है पहलवान बनकर॥
रमारूप—रिश्वत ने उल्लू फंसाए।
कभी पान बनकर कभी दान बनकर॥
ये किसकी तपस्या व सेवा का फल है।
कि बन्दर हैं पुजते हनूमान बनकर॥

१४

१ न हम कोई पेटम न बम देखते हैं।
धरी गुड़गुड़ी पर चिलम देखते हैं॥
२ बताएं जो सिनेमा में हम देखते हैं।
मोहब्बत का 'किरिया करम' देखते हैं॥
३ हर इक माल गर्मा गरम देखते हैं।
गया आज अपना 'धरम' देखते हैं॥
४ हमारी भी गरदन कड़ी हो गई है।
जो अफ़सर हैं नीचे वो कम देखते हैं॥
५ है चल चित्र—साहित्य हिन्दोस्तानी।
सनम की बग़ल में बलम देखते हैं।
६ जो नाली में लेटे हैं प्रेमी पुराने।
वो ठर्रा न ह्विस्की न रम देखते हैं

बस, आगे फिर देखियेगा।

जय हिन्द॥

# शब्द कोष

## चौथा फाटक

खुल्द-बहिश्त, बैकुन्ठ; बज़्म-सभा; सितमज़रीफ़-ज़ालिम, प्रियतम; हैदर-हज़रत अली; कीचर-आंख का मैल; पीयूष-अमृत

## पाँचवा फाटक

जे हाल मिस्कीं...ग़रीबों के हालपर निर्दय न बन; किताबे क्यों कि मुझमें जुदाई की शक्ति नहीं। शबाने-जुदाई की रात बहुत लम्बी और मिलन की घड़ी बहुत छोटी होती है।

## सातवां फाटक

जीभा—ज़बान; लेंहड़े-कुनबा, झुंड; जमात गरोह; बकसत—देतेहैं; रमैय्या की दुल्हिन—माया, माहीयत; सिंगी और परासर बड़ेमहात्मा थे: कनफूंका-आजकल के गुरू; बलैय्या—बलाय; बल—बलदाऊजी; खिजावत—चिढ़ाते हैं। धिरयो—शान्तकिया; बावरो-भोला, सीधा; रावरो-आपका; नाह-पति; रंक-ग़रीब; गौतम तीय: अहिल्या; उदासी-त्यागी: कानन छुवाय हाथ-तौबा करना, इन्कार करना; बाद्-बाजा साज; अनु-ऐटम; बाजी—घोड़ा; सुतुर-ऊंट; बरदऊ-बैल; मीच-मौत; सकरी-तंग; पौला-मोटेखड़ाऊ; शदीद-ज्यादा; खुरशीद-सूर्य; बर्ग; पत्ते; ताक-अंगूर; सखुन-बात; जा-जगह; राकिब-सवार; अख़्तर-सितारे: सुम-नाखून; बाद-हवा उस्तवार-पुष्ट; उस्तखां—हड्डी; जबस्कि—बेहद; मजरूह—ज़ख्मी रेगेबियाबां-मशान की बालू; औज- उन्नति; सूरेइसराफ़ील यमराज की भेरी; आलम-संसार; गुलदुमां; बुलबुलों-बुनेमू-बाल की जड़; सौदाई-सौदावाले और पागल भी,! बागइरम—नन्दन—कानन; हुमा—एक माना हुआ शुभ पक्षी जिस की छाया से आदमी बादशाह होजाता है अदू-बैरी, ख़ू आदत,

## आधुनिक काल-पद्य

अकबर आदि । फ़लक-आस्मान, बैरी; बज्द-मस्ती; ख़ात्माबख़ैर-शुभअन्त;ख़ातूनेख़ाना-गृहलक्ष्मी;हिजाब-पर्दा,शर्म; जुस्तजू-खोज; अबस-बेकार; ज़ाहिद-पुजारी जी; पुरसिश-पूछताछ; मुन्तशर-बिखरे हुए; इबादत-पूजा; तिफ़्लेमकतब-विद्यार्थी; ज़न-स्त्री; चश्म-आँख;बाल-अंग्रेज़ी नाच; बख्शदे-क्षमाकरदे; ग़ैरत-शर्म मज़ार-क़ब्र; अजो-अंग; नदारद-ग़ायब; दहन-मुंह; शिद्दत-ज़ोर, बिलयक़ीं-अवश्य, ॥

श्री प्रतापनारायण मिश्र आदि । नकन्याय-बहुत परेशान; खन-समय, क्षण; याक-एक;मृणाल-कमल कमल की जड़;करी-हाथी; सैल-पहाड़; रेणु-धूल; सविता-सूरज; हेरन-ढूंढने, देखने; उफ़्ताद-मुसीबत; महरम-चोली; वज़ा-ढग; अदब-शिष्टाचार और साहित्य भी; हुरमत-इज़्ज़त; मादर-माता; आज़ाद-मौलाना मुहम्मद हुसेन आज़ाद, लेखक आबेहयात; दूबदू-सम्मुख; भस्म-राख और जलाना; संसृति-दुनियाँ; युक्ति-तरकीब, यत्न; निपट अपंग-बिल्कुल लुंज; पुजीशन- पदवी;

बेढब आदि; निहां-छिपाना; विज़ी-व्यस्त; लवका सेट-टेनिस में खेल की गिन्ती, और प्रेमका खेल भी; रश्क-इच्छा, वैमनस्य के कारण; इंकम-आय; जफ़ा-जुल्म, निर्दयता; चेंज-परिवर्तन; सरीखी-जैसी; क्षुधात्रास-भूख के कष्ट से; प्रपात-झरना; अस्त्र अमोघ-अचूक हथियार; हज़रात-महाशय; ॥

## परिशिष्ट

रुबाई :—उदधि-समुद्र ; तमन्ना-इच्छा ; त्रुटि-कमी, गल्ती । विद्रोह-बग़ावत ; हंगामा-हुल्लड़, भीड़ ; मूसा—एक पैग़म्बर थे जो ईश्वर दर्शन से बेहोश होकर गिर पड़े थे । कारावास-जेलख़ाना ; शकररंजी-मनमोटाव ; धृतराष्ट्र—दुर्योधन के पिता , सजय जिसने महा भारत के सब दृश्यों का

वर्णन धृतराष्ट्र से किया था, दिव्य दृष्टि से वहीं बैठे बैठे। अमरी कंजा पानी न होगा-अमरीकन जापानी न होगा।

गीत। रोटी करना-भोजन बनाना, रोटी से डरना-दावत देने की सजा से डरना; रोटी-रोजी, पैसा कमाना। गोल हो जाना-टालना या उदासीन हो जाना; नाक रगड़ना व माथा रगड़ना-खुशामद करना व पूजा करना; झोल-बेकार असत्य; निर्वान-मुक्ति; काल चक्र-समय बदलने से; भुआली में रोगी जाते हैं, पुराने बुखार के; सौरभ--सुगन्ध व्योम-आस्मान; कबीर-होली में हंसी के गीत समझिये। शेर और भालू-अंग्रेज तथा रूसी; मिस-कुवाँरी लड़की तथा छूट जाना; चटियल मैदान-सफाचट; दशहरा की छुट्टी कार्तिक के पहिले पड़ती है; मैना अपने घर में गाकर प्रसन्न हो रही है। निष्काम-फल की इच्छा न रखकर काम करना; सोल-तला किनारा-अलग होना अथवा धोती का किनारा; दिस...---यह फिल्म बहुत सुन्दर है, ईश्वरीय देन समझिए; डारलिंग अथवा डियर संबोधन के शब्द हैं; पोप-पाखण्डी; पित्र पक्ष-क्वार में श्राद्ध के पन्द्रह दिवस; उधार व्यवहार-दुश्चरित्र; धर्मच्युति-विधर्मी हो जाना; दाना पानी-रोजी कमाना; बिलौटा-बिल्ली का शौहर; करन्ट-बिगड़ा हुआ; मुंह में नहीं लगाम--बकझक करना; बच्चे मेरे-सेवा के लिए, वाहन-सवारी, गदर्भ जी; काम दुनियाँ के बन्द न होंगे--संसार की आबादी बढ़ती ही जायेगी; चिकारा-बाजा; अमृत धारा-दवा; रजिया बेगम इतिहास वाली। फैन-शौक़ीन। गैर-बैरी, तथा दूसरे लोग। शबनम-ओस, कवि लोग रोना लिखते हैं। नाई-न्याय करने वाला या हजामत बनाने वाला बृटिश साम्राज्य। भवानी आती हैं-कुछ स्त्रियों पर खेलती हैं देवीजी। सावन में फुलवारी पुष्पों से भर जाती है-रूपक और उपमायें बहुत मिलती माह और

गज की कहानी प्रसिद्ध है। हालाबाला-मद्य शराब। मुर्गे ने चिल्ला चिल्लाकर आफ़त मचा दी। चाह-कुवां तथा प्रेम, खोज; Wavel के कहते हैं एक ही आंख थी-सबको बराबर मानना, निर्पक्ष होना। मिसमेयो ने 'मदर इंडिया' नामक पुस्तक लिख कर भारत की एक प्रकार से खिल्ली उड़ाई थी, इसके जवाब में 'फादर इंडिया' आदि कई पुस्तकें निकली थीं। हीरो हीरोइन-मुख्य पात्र, पुरुष और स्त्री के। दृश्य निराला और पंथ को दो बार अलग अलग पढ़िये। पुराना साथी १६ वर्षीय जूता भी हो सकता है और साथी संगी भी। टहलाना-घुमाना तथा चुराना टांठा-नया, तगड़ा। गांठा-मरम्मत करना तथा फंसा लेना या और कुछ। दांत लगाना-पीछे पड़ जाना तथा नोचना। उड़ावे-चुराए, भगाए आदि। पंजे से निकलना-अधिकार में न रहना। कनखिया देखना-आंख के कोने से देखना, चुराकर देखना। बल-ज़ोर से, ज़रिये से। छेदा पासी लखनऊ का एक मशहूर डाकू भी था। पानी देना-दूध में पानी मिला कर देना आदि। दुर्वासा-एक ऋषि थे जो बात बात में बिगड़ते थे और शाप दे देते थे इस कारण ऐटम बम की तरह भयानक माने जाते थे। भरता-पति तथा पीटा हुआ, कचूमड़ निकाला हुआ; समसे-कुछ लोग यह कहते हैं कि यह वही स्थान है जहां से हमारी जाति फैली, आदि पुरुष तथा उनकी स्त्री मजे में होंगे क्योंकि न तो कचहरी ही थी और न 'कन्ट्रोल' का ही प्रश्न था। परन्तु प्राचीन काल की बात ही और थी। उस समय जेल भी तो नहीं थे। प्रहरी-पासवान, चौकीदार; अंटागफ़ील-घोड़े बेच कर सोना बेफ़िक्री से सोना; वज्रवक्ष-पत्थर की छातीवाला, वीर; रिपुदलसंहारक-बैरी की फ़ौज को नाश करने वाला; क्रीड़ा-थल-बाज़ीगाह, खेल की जगह; दक्ष-प्रजापति-दक्ष जो शिवजी के ससुर भी थे क़ाफ़िया तंग होना-परेशान होना, पीनक

सवार-नशा होना ; घास खा जाना-बौखला जाना ; लंगडे लूले तमरलंग आदि, मुंहबाए खड़ा रहना-असहाय दशा में आश्चर्य चकित खड़े रहना, यहां दर्रा भी हो सकता था। ख़ाला काघर-जहां कोई तकल्लुफ़ न हो जैसे अपने बाप का ; गर्दन नापना-सज़ा देना, पटख़नी देना ; गाल बजाना-अपनी तारीफ़ करना, हंसी मज़ाक़करना ; भुरकुस निकालना-चटनी कर देना ; सानी-दूसरा, जोड़। आला-उत्तम, ऊँची ; फ़ौलादी-कठिन, कड़ी ; लादी-लादना, तथा धोबी के कपड़ों का बोझ ; मानस-रामचरित्र मानस, कलि मल दहन शान्तिसुख दायनि-कलियुग की गंदगी को साफ करने वाली तथा आनन्द प्रदान करने वाली, सुख देने वाली। साकेत पुरी-अयोध्या जी ; मर्यादा-इज्ज़त, श्री राम चन्द्र जी मर्यादा पुरुषोतम कहे जाते हैं । रक्त-खौलना-गुस्सा आना , गाल फूलना-अप्रसन्न होना , कूद रहे हैं-प्रसन्न हो रहे हैं , भस्मासुर-एक असुर जो शिव जी के वर-दान से उन्हीं को भस्म करने चला तो भगवान विष्णु ने मोहनी के रूप से उसको मुग्ध किया और उसको सर पर हाथ रख कर नाचने के लिए राज़ी किया, वह नाचते ही भस्म हो गया था । 'क्यू'-आगे पीछे नियम से खड़े होकर बनाना , डार्विन-विज्ञान का धुरंधर विद्वान जिसने कहा कि मनुष्य की उत्पत्ति लंगूर का उन्नत रूप है । रस्सी लम्बी देना-स्वतंत्रता देना, भूल को सहन करना , पैक्ट-संघ मित्रता का सम्बंध , फ़िक्शन और फ़ैक्ट-गप और सत्य , ऐक्ट-क़ानून , यू. एन. ओ.-मित्रराष्ट्र-संघ , दिनकर-सूर्य , रश्मियों-किरणों , इन्द्रजाल-जादू तथा जाल , द्वेश-हसद , भेद-निफ़ाक़ , कुतर्क-अशुद्ध विचार , पारस्परिक-बाहमी , नीरा-घोसाला खाता , चोंचे लड़ना-झगड़ा होना , नाम धराया-नाम रक्खा, अथवा बदनाम हुये । अष्ट सिद्धियां और नौ निधियां-हर प्रकार की नेअमत और

दौलत । गदर्भ—गधे यानी बेवक़ूफ़ लोग लूट लूट कर देश को हानि भी पहुँचा रहे हैं, मधुमक्खी—शहद की मक्खी यानी परिश्रमी लोग देश के हित के लिए काम पर जमे हुये हैं । किसी की—महात्मा जी की ओर संकेत है ; जलद-बादल ; अम्बर—आस्मान ; कमला-लक्ष्मी जी जिनकी सवारी उल्लू है ; रोष—गुस्सा ; पवन सुत-हनुमान जी, कलेवा-भोजन ; जानी वाकर-एक प्रकार की शराब, व्योम-आकाश नभ । हड़ बड़-जल्दी, उजलत ।

हज़लें—शीन और क़ाफ़—पुराने मुंशी लोग शराब और गोश्त ( कलिया ) के लिये प्रयोग करते थे और हैं । ठंडा होना-आराम पाना या मर जाना, नदामत-शर्म, हजामत बनना-मुंड जाना, लुट जाना, कसौली में कुत्ते काटने के इलाज के लिए जाते हैं। खोदने-छेड़छाड़। नायाब-उम्दा और ग़ायब । वसुंधरा-पृथ्वी । 'मूड़मुड़ाते ही ओले पड़े' एक लोकोक्ति है, छूटते ही फ़ौरन, संघर्ष-तसादुम, रगड़ । झक-मछली, मीन-मछली झकमारना-बेकार का काम करना । हाथ मिलाना-मित्रता सूचक है ; मक्र व सितम-धोखा व जुल्म । खून का प्यासा-वैरी, कमबल-कम्बल भी, किट-सिपाही का कपड़ा आदि, स्नेह—प्रेम तथा चिकनाहट, रमा-लक्ष्मी जी, चलचित्र-सिनेमा ॥

